क्या ?   कहाँ ?   किसका ?

लेख

कविता

कहानी

●●

सम्पादकीय

आहार में अहिंसा-दृष्टि

भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर भगवान महावीर के प्रति श्रद्धाजली अर्पण करने की भावना प्रत्येक जैन मे होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से हमारे हृदय मे भी उस भावना को लेकर कुछ करने की इच्छा थी जिसे ठीक योजना का रूप दिया जा सके। उस विषय मे हमने पूज्य विनोवाजी तथा पूज्य काका साहब के साथ चर्चा की। प्रत्येक महापुरुष का जीवन-मिशन होता है। वे स्वय तो अपने मिशन की पूर्ति के लिये कार्य करते ही है, परन्तु उनके मिशन की पूर्ति के लिए उनके वाद भी वह काम चलता रहता है। उनके श्रद्धालु अपना आदर प्रकट करने के लिए उस मिशन को आगे वढाते है। महापुरुषो के प्रति श्रद्धाजली अर्पण करने का सर्वोत्तम तरीका उनके जीवन तथा उपदेशो का अनुसरण करना है।

विनोवाजी भगवान महावीर की संसार को सर्वोत्तम देन अनेकान्त या समन्वयदृष्टि मानते हैं। काका साहब अनेकान्त के साथ अहिसा को भी जोडते हैं। और इस दृष्टि से उनका सुझाव है कि हम उनके अनेकान्त व अहिसा इन दो तत्वो के प्रसार का प्रवल प्रयत्न करे। इस दृष्टि से जैनजगत ने अपने तीन वर्ष का कार्यक्रम वनाया। प्रथम वर्ष मे 'समन्वय-अक' के द्वारा देश के विशिष्ट

चिन्तको का चिन्तन विशेपाक के रूप मे दिया। जिसका जैनियो ने ही नही, परन्तु भारतीय साहित्य मे अच्छा स्वागत हुआ। काका साहव ने कहा था कि अहिंसा के दो रूप हैं एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। ससार को दोनो तरह की अहिंसा की आज सख्त जरूरत है। क्योकि सूक्ष्म अहिंसा के विना ससार मे जो आज भयानक अशान्ति और असन्तोप है वह दूर नही होगा पर स्थूल अहिंसा की भी अत्यन्त आवश्यकता है। हिंसा का दृश्य स्वरूप दूसरे प्राणी की हिंसा करना है। उसमे आहार के लिए प्राणी का वध प्रमुख रूप है। इस हिंसा से वचाने का प्रयत्न भी इस महान अवसर को लेकर करना चाहिए और उस दृष्टि से 'आहार-अक' की योजना हमने वनाई।

जैनियो की इस विषय मे विशेप दिलचस्पी होना स्वाभाविक है क्योकि उनके आहार मे मासाहार वर्जित है और परम्परा से वे निरामिष भोजी हैं। किन्तु पिछले कुछ वर्पो से कट्टर निरामिषभोजी जैनियो के पढे-लिखे युवको मे उतनी प्रतिकूलता नही रही। कही-कही मासाहार भी होने लगा है जो जैन समाज के लिए चिन्ता का विपय वन गया है।

मासाहार को पिछले कुछ वर्पों मे अनाज तथा पोपण की कमी के कारण सरकार की ओर से उत्तेजन भी मिला है। मत्स्य और अण्डे के उत्पादन वढाने के लिए करोडो रुपया अनुदान देकर योजनाए भी वनी है। प्राणी-वध को भी उत्तेजन देकर वडे-वडे वैज्ञानिक ढग के कसाईखाने बन रहे हैं। मास, चमडा आदि के निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित करते हेतु विशेषज्ञो द्वारा वडी-वडी योजनाए वन रही हैं। उसका वीच-वीच मे जैन समाज तथा अहिंसाप्रेमियो के द्वारा विरोध होता है, आन्दोलन चलते हैं। टेलिग्रामो, पत्रो मे लाखो रुपया खर्च होकर भी परिणाम विपरीत ही दिखाई पडता है। माँसाहार वढता रहे तो कसाईखाने तथा प्राणी-वध कम होने की सम्भावना नही लगती। प्राणी-वध का रुकना मासाहार कम हुए विना सम्भव नही है। कुछ लोग आज मासाहार को समाज के धारण-पोपण के लिए आवश्यक मानते हैं। क्या उनका यह कथन ठीक है? यदि नही है तो हमे यह सिद्ध करना होगा कि मासाहार आर्थिक, नैतिक, स्वास्थ्य तथा स्वाद की दृष्टि से निरामिपाहार से घटिया है।

परन्तु यह वात केवल भावावेश या धार्मिक श्रद्धा के वल पर आज के वैज्ञानिक युग मे कहने या व्रत दिलाने से सम्भव नही है। हमे इस विपय के विशेपज्ञो, आहारशास्त्रियो, अर्थशास्त्रियो, चिन्तको, विद्वानो आदि से गहन विचार और अनुभव एकत्र करके जनता के समक्ष निरामिप आहार के विपय मे उपयुक्त साहित्य देना होगा। यह कार्य आसान नही था। जैन या भारतीय

संस्कृति मे मासाहार को हीन दृष्टि से देखा जाता हो और निरामिषाहार के वहुत गुणगान भी किए जाते हो पर आहारशास्त्र पर वैज्ञानिक और शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन वहुत कम हुआ है। पिछले कई वर्षो से अग्रेजी मे तो साहित्य तैयार हुआ है किन्तु हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओ मे तो नगण्य ही है, किसी चीज की प्रशसा कर देना अलग वात है और उसे गुणो की दृष्टि से उच्च सिद्ध करना भिन्न वात है। भले ही मासाहार को वहुत कोसा गया हो या निरामिष भोजन के वहुत गुणगान किये गये हो, किन्तु नई पीढी के पढे-लिखे वुद्धिवादियो के चिन्तन को प्रभावित करे ऐसी भाषा और पद्धति मे इस विषय पर वहुत कम प्रकाश डाला गया है। इस दृष्टि से 'जैनजगत' ने इस अवसर पर अध्ययनपूर्ण सामग्री देने का चिन्तन किया। यह कार्य वड़ा खर्चीला तथा कठिन था। देश-विदेश के विशेषज्ञो से हमने पत्र-व्यवहार किया। फलस्वरूप हम कुछ सामग्री एकत्र कर पाये जिसमे आहारशास्त्र के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश पडे। इस प्रयत्न मे हमारी सफलता-असफलता हमारे पाठको की प्रतिक्रिया से ही जानी जा सकेगी। परन्तु हमारा प्रयास रहा है कि हम उपयोगी सामग्री देकर 'जैनजगत' को सग्रहणीय वनावे।

यह विषय वहुत व्यापक है। इसके विभिन्न पहलुओ पर वहुत कुछ लिखा जा सकता है। 'जैनजगत' ने दिशा-निर्देश की दृष्टि से इस विषय को लिया है। इस विषय मे दिलचस्पी रखनेवाले आगे भी अधिक प्रकाश डालेंगे जिससे आहार-विषयक भ्रान्तिया दूर हो और शाकाहार पर अधिक उपयोगी साहित्य उपलब्ध किया जा सके।

वढती हुई जनसख्या ने इस समस्या की जटिलता अत्यधिक वढादी है। अन्न की कमी मासाहार द्वारा पूरी करने की वात कही जाने लगी है। सतही दृष्टि से यह वात ठीक भी लग सकती है। परन्तु गहरी दृष्टि हो तो खाद्य-पूर्ति के दूसरे उपाय भी सहज मे सूझ सकते हैं। विज्ञान-युग मे यह शोध कठिन नही है कि प्राणी-वध किये विना मनुष्य खाद्य-पूर्ति कर सके। जो वातें कुछ वर्ष पूर्व असम्भव मानी जाती थी वे सम्भव वन गई हैं। कपडो तथा दैनिक उपयोग के लिए सिन्थेटिक व केमिकल प्रचलित वस्तुओ का स्थान लेते जा रहा है। खाद्य तथा पोषण के क्षेत्र मे भी सिन्थेटिक व केमिकल वस्तुए स्थान ले यह कोई आश्चर्य की वात नही मानी जानी चाहिए। सम्भव है पाच साल पहले हमने यह सुझाव दिया होता तो हमारी वात अव्यावहारिक मानी जाती किन्तु पिछले ३-४ वर्षो मे सिन्थेटिक दूध, मलाई, मक्खन तथा मास वहुत वडे पैमाने पर वन रहा है और उसमे प्राणी-वध न होकर भी लोग पोषण

और स्वाद पाने लगे हैं। अपने खाद्य के लिए दूसरे का वध करना मानवता को शोभा नही देता, तव विना वध किये पोपण पाने का मार्ग निसन्देह स्वागत के योग्य माना जाना चाहिए।

प्रत्येक धर्म मे कुछ दिन ऐसे माने जाते हैं कि उस दिन मासाहार नही किया जाता। प्राणी-वध वर्जित करने की दिशा मे जैसे वैज्ञानिक शोध करना उपयुक्त है, वैसे ही सामिष भोजन के एवज मे निरामिप स्वादिष्ट वस्तुए वनाने के उपयुक्त सुझाव भी रचनात्मक कार्य हैं। इस विपय मे दिलचस्पी रखनेवालो को इस दिशा मे भी वहुत कुछ करने योग्य कार्य है। स्वादिष्ट व्यजन वनाकर वेचना, शाकाहारी होटले चलाना यह वहुत वडा उपयोगी कार्य हो सकता है।

शाकाहारी होटलो का उद्योग वडा विधायक कार्य है और जैन समाज को इस क्षेत्र मे कदम आगे वढाना चाहिए जिससे आर्थिक लाभ के साथ-साथ उपयोगी सेवा भी है।

हमने अनुभव किया है कि निरामिप चीजे भी वहुत स्वादिष्ट व स्वास्थ्यप्रद वनाई जा सकती है और ऐसी चीजे देश-विदेश मे लोकप्रिय वनाई जा सकती है। परन्तु देश मे खुलनेवाले कसाईखानो के खिलाफ भापण देकर जो लोकप्रियता कार्यकर्ता को प्राप्त हो सकती है ऐसे रचनात्मक कार्य उपयोगी तथा आवश्यक होने पर भी इन कामो मे समाज का सहयोग पाना अत्यधिक श्रम करके भी सम्भव नही होता। वैसे सिर्फ तार और चिट्ठियो मे लाखो रुपया खर्च करके उसका विशेप उपयोग नही होता फिर भी रचनात्मक कार्यों मे समाज का सहयोग प्राप्त करना कितना कठिन होता है इस वात का अनुभव 'आहार-अक' के लिए सहयोग प्राप्त करने मे मिला। इस कार्य मे करीव ४० हजार से पचास हजार रुपया खर्च होने का अनुमान था, जिसे विज्ञापन तथा दान से प्राप्त करना था। हमने सोचा कि ऐसे उपयोगी कार्य के लिए समाज से सहज मे सहयोग मिलेगा पर हम अपने लक्ष्य से आधेतक भी नही पहुँच सके। समाज को दोप देने की न तो वृत्ति है और नही इस वात को उचित ही मानता हू। यही कहना होगा कि हममे अपनी वात ठीक से समझाने की शक्ति नही है। अपनी इस कमी के कारण ही उचित सहयोग प्राप्त नही हो सका। फिर भी कई मित्रों ने सहयोग दिया जिसके लिये हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

भारत जैन महामण्डल के अधिकारी वर्ग को हम धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने अर्थ के दायित्व का भान होते हुए भी इस उपयोगी कार्य के लिए स्वीकृति दी। 'विशेपाक' को अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं का सहयोग देनेवाले

लेखको, दाताओ एव विज्ञापनदाताओ के हम हृदय से आभारी है। उनके सहयोग से ही विशेषाक वन सका है।

हम अपने साथी सर्वश्री चन्दनमल 'चांद', धीरेन्द्र दोशी राजेन्द्र नगावत, दीनदयाल कुन्दन आदि को नही भूल सकते। सामगी मकलन, राम्पादन तथा टकन आदि कार्यों मे इन साथियो का महत्वपूर्ण योगदान है। मुद्रण, प्रकाशन के लिए साथी श्री श्रीचन्दजी 'सरस' का सहयोग स्मरणीय है।

इस विशेपाक की समस्त विशेपताए और अच्छाईया मेरे साथियो की मानते हुए कमियो एव त्रुटियो के लिए स्वय को जिम्मेवार मानता हू क्योकि मैं इस कार्य मे अपेक्षित समय इच्छा रहते हुए भी नही दे पाया।

विद्वानो, शाकाहार-प्रेमी पाठको को यह विशेपाक पसन्द आया और शाकाहार की लोकप्रियता वढाकर मासाहार के प्रभाव को कम करने मे किंचित् मात्र भी इसका उपयोग हो सका तो हमे अपने श्रम का सन्तोष होगा।

—रिषभदास राका

रक्त के छींटे

जे रत्त लगे कपड़े,
जामा होवे पलीत।
जो रत्त पीवे मानुषा,
तिन क्यो निर्मल चित्त॥

—कपडे पर खून लगने से कपडा गदा हो जाता है। वही घृणित खून जव मनुष्य पीवेगा तव उसकी चित्तवृत्तिया अवश्य ही दूषित हो जावेगी। वह भला निर्मल चित्त कैसे रह पाएगा।

—गुरु नानक देव

उसमे अन्याय एव अनीति के अन्न का प्रभाव भी जरूर काम करता होगा, ऐसा मुझे लगता है।

शुद्ध अन्न का भोजन शरीर को निरोग रखता है। निरोगी शरीर मन को निरोग रखने मे प्रवल सहायक होता है। अग्रेजी मे कहावत भी है 'स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मन रहता है।'

इन सारी वातो का निष्कर्ष है कि आहार का मन, आत्मा के साथ सम्वन्ध होने से मानव शरीर मे आहार का वहुत महत्त्व है और इसीलिए जैन-शास्त्रकारो ने आहार सम्वन्धी विधि-निपेध किये हैं।

आहार मे मासाहार तो मनुष्य के लिए निर्विवाद रूप से अभक्ष्य है। खेद है कि आर्य-भूमि भारत मे भी मासाहार का प्रचार वढ रहा है। मासाहार को वन्द करने के उपायो के सम्वन्ध मे थोडा उल्लेख करना चाहूगा। मासाहार को रोकने के लिए उपदेश एव प्रचार इन दोनो साधनो का पूरा प्रयोग करना चाहिए।

उपदेश के लिए भारत के अग्रणी साधु-सन्तो के साथ सम्पर्क कर उनसे प्रार्थना की जाय कि सर्वत्र मासाहार छुडावें। साथ मे शराव भी। इसके वाद शुद्ध आहार मे विश्वास रखनेवाले गृहस्थ, उपदेशक जिनमे विद्वान्, युवक-युवतियो का समावेश किया जाय – ये सव इस विपय मे अभ्यासपूर्वक तैयार हो, सार्वजनिक प्रवचन द्वारा अथवा व्यक्तिगत सपर्क से जनता को समझाने का प्रयत्न करें। उपदेश अथवा समझाने मे धार्मिक, वैज्ञानिक एव सामाजिक दृष्टि का लाभ, शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य तथा अहिसक समाज रचना के लाभो को वताया जाय।

आज का युग मात्र उपदेश तक सीमित नही रहा अपितु प्रचारलक्षी अधिक है। आज प्रचार किसी भी कार्य की सफलता का वडा शस्त्र है। दुनिया की वडी-वडी कम्पनियो मे से कई कम्पनिया अपने माल के प्रचार के लिए प्रतिवर्ष दो से तीन करोड रुपया खर्च करती है। घु आधार प्रचार धीमा वशीकरण है जो धीरे-धीरे जनता के मन पर लम्वे समय तक असर कर सकता है। यह जानी समझी वात है कि धार्मिक, सामाजिक, व्यापारिक एव राजनैतिक क्षेत्रो मे प्रचार ही मुख्य भूमिका निभाता है। किन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि उपदेश के महत्त्व को इस देश ने हजारो वर्ष से सम्पूर्ण रूप से स्वीकारा है, किन्तु प्रचार का अव तक पूर्ण महत्त्व स्वीकारा नही है, इसीलिए हमारे कार्यो का सोचा हुआ परिणाम हम नही ला पाते। यदि उपदेश और प्रचार दोनो का समन्वय किया जाय तो सोचे हुए निश्चित परिणाम आवें। भारत सरकार के

भू० पू० गृहमन्त्री श्रीगुलजारीलाल नन्दा के साथ-एकबार जब मेरी बात हुई तो मैंने प्रश्न किया था कि भारत सरकार की अहिंसा के सम्बन्ध मे क्या नीति है ? इस प्रश्न के सन्दर्भ मे उन्होंने भी उपदेश और प्रचार के महत्त्व पर ही बल दिया था। मैंने उस समय यह भी कहा था कि आवश्यक हो तो कानून को बीच-बीच मे लाना चाहिए और कम से कम भारत सरकार स्वय अपनी ओर से मासाहार को प्रोत्साहन दे, ऐसा तो नही होना चाहिए। मैंने उन्हे कहा कि मुशीजी जब खाद्यमन्त्री थे तब उन्होने एक बार सार्वजनिक रूप मे कहा था कि देश का दूसरे नम्बर का आहार मासाहार होना चाहिए। मुशीजी जैसे हिन्दू-ब्राह्मण मन्त्री ऐसा कहे तो दूसरो को क्या कहा जाये ?

मासाहार रोकने के लिए प्रचार के कुछ साधन

१—धर्मशास्त्र, स्वास्थ्य, विज्ञान एव मानवता की दृष्टि को खयाल मे रखकर शाकाहार के लाभ के नक्शे-चार्ट, पोस्टर, तैयार करायें जाये। पोस्टर सार्वजनिक स्थानो, बसो, रेलो मे भी लगाये जाये।

२—विचारपूर्वक स्लाइड्स, फिल्मे, चित्र आदि तैयार किये जायें।

३—भारत के प्रत्येक प्रान्त के सुप्रसिद्ध दैनिक, साप्ताहिक एव मासिक पत्र-पत्रिकाओ आदि मे हर महीने विभिन्न विद्वानो द्वारा सब समझ सकें ऐसी भाषा मे सरस किन्तु अध्ययनपूर्ण लेख विविध दृष्टिकोणो से प्रकाशित कराये जायें। कार्टून आदि भी जरूरी हो तो छापे जाये एव लेख आदि पुरस्कार देकर भी प्रकाशित करायें जाय।

४—प्रेस कान्फरेन्स बुलाकर सम्पादक सम्पादकीय लिखें ऐसा प्रयत्न किया जाय।

५—विभिन्न दृष्टिकोणो से लघु सचित्र पुस्तिकाए प्रकाशित करानी चाहिए। उसे सचित्र बनाने मे प्रत्येक धर्म के उदाहरण दे। ये लाखो की सख्या मे छपाकर घर-घर मे मुफ्त बाटी जाये।

६ स्थान-स्थान पर परिसवाद आयोजित हो। भारत के पचास शहरो मे सम्मेलन बुलाये जाये और प्रचार के लिए विशाल तन्त्र स्थापित किया जाय। दिल्ली मे मुख्य कार्यालय बनाकर प्रत्येक राज्य की राजधानी मे प्रचार कार्यालय खोले जायें।

७—फैशन के रूप मे ही जहा-जहा मासाहार अथवा शराब-व्यवहार की जाती हो, वहा समझा कर रोका जाय।

८—प्रचार के लिए सभी भाषाओ का प्रयोग करना।

९ –रेडियो, टेलीविजन के साथ भी सम्पर्क रखकर उनसे प्रचार करवाना ।

१०–भजन-मडलियो, आख्यानो, कथानको द्वारा भी प्रचार किया जा मकता है ।

११–जिस प्रान्त मे मासाहार ज्यादा हो वहा प्रचार को अधिक सक्षम एवं गतिशील वनाया जाय ।

१२–कसाईयो एव मास के व्यापारियो को उपदेश तथा ममझाकर हिंमा एव मासाहार त्यागने के लिए तैयार करना ।

इसी प्रकार प्रचार के अन्य अनेक साधनो पर भी चिन्तन किया जा मकता है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण वात की ओर ध्यान आकृष्ट करने का लोभ सवरण नही कर सकता। आज विश्व मे सेक्स युग का प्रचड झझावात वह रहा है। अच्छे-अच्छे इसकी चपेट मे आ रहे हैं। इसके लिए न तो सत्ताधीशो को चिन्ता है, न समाज के नेताओ को और न स्वय जनता को ही।
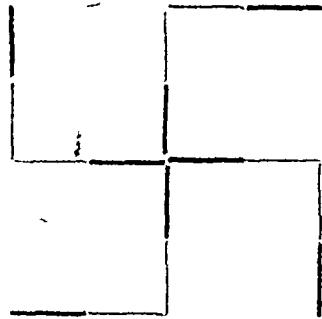
जहा सेक्स—वासनावृत्ति है उसके दूसरे ही कदम पर शराव है और तीसरे कदम पर मासाहार है। तीनो एक दूसरे के साथी हैं। आज उभरती पीढी और युवावर्ग नेशराब-मास को मात्र फैशन से ही अपनाया है, ऐसी वात नही है। इसके साथ साथ उनके मन मे ऐसा विचार है कि मास खाने से ताकत-शारीरिक वल प्राप्त होता है।

सेक्स का प्रभाव कम होने मे अभी थोडे वर्प लगेगे फिर भी राज्यसत्ता की दखलदाजी के विना इस प्रचार को नष्ट नही किया जा सकता है। इन परिस्थितियो मे शराव और मासाहार का प्रभाव कम करने के लिए सव जग जायें तो उपदेश प्रचार द्वारा अच्छी सफलता प्राप्त की जा सकती है। शारीरिक ताकत शाकाहार से प्राप्त की जा सकती है। इस सम्वन्ध मे अनेक जैन राजाओ, सेनापतियो एव वीरो का उदाहरण दिया जा सकता है।

भगवान महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के अन्तर्गत अढाई हजार प्रचारक तैयार हो और वे भारत भर मे घूम जायें तो श्रेष्ठ परिणाम सामने आयेंगे। अन्त मे इस उपयोगी अक के आयोजक धर्म स्नेही, शुभाकाक्षी श्रीयुत् राकाजी तथा कवि एव स्नेही मित्र श्री चादजी को धन्यवाद। भारत जैन महामण्डल ऐसे अनेक विशेषाक प्रकाशित कर जनता की अधिक से अधिक सेवा करे, यही शुभ कामना है।

[—रिज रोड, वम्वई]

[चन्दनमल 'चाद' द्वारा मूल गुजराती से अनुवादित]

With
best
compliments
from :
BLANDEN COLE
DIVN. OF CHEMAUX P. Ltd.
'RANG UDYAN'
SITLADEVI TEMPLE ROAD,
MAHIM, BOMBAY-16

युद्ध का मूल मांसाहार मे है। सस्कृति के पतन का मूल कारण यह है कि मनुष्य जीवन के प्रति आदर गवा बैठा है। मासाहार करना, उसे उत्तेजन देना और साथ ही प्रेम, करुणा एव मैत्री की बात करना परस्पर विरोधी हैं।

निरामिष आहार

—चिमनलाल चकुभाई शाह

[प्रवुद्धचिंतक, सुप्रसिद्ध समाजसेवी, कानून-वेत्ता, प्रवुद्धजीवन के सम्पादक एव 'भारत जैन महामण्डल' के कार्याध्यक्ष।]

●

श्री राकाजी ने इस विपय पर लिखने के लिए मुझे आग्रहपूर्वक कहा है, इसलिए लिखता हू। मैं क्या लिखू? मासाहार की कल्पना भी मेरे लिये सम्भव नही। मासाहार के विचार से ही मेरा रोम-रोम काप उठता है। मेरी मान्यता है कि किन्ही परिस्थितियो मे आहार नही मिले तो मै मर जाना पसन्द करूँ, किन्तु मासाहार का, किसी दिन भी विचार न करूँ। ऐसा कहे कि मैं ऐसे सस्कारो मे पला हू कि मेरी ये मान्यताएँ मेरे अणु-अणु मे व्याप्त हो गई हैं। किन्तु ये मान्यताएँ कोई पूर्वाग्रह नही। वर्षों के अनुभव और चिन्तन से दृढ हुई है। मैं जानता हू कि दुनिया के अधिकाश भाग के व्यक्ति मासाहारी हैं, भारत मे काफी परिमाण मे मासाहार है, कदाचित वढता जा रहा है। मैं जानता हू कि मासाहारी होते हुए भी ऐसे अनेक व्यक्ति सज्जन अन्य प्रकार से दयालु, परोपकारी होते हैं। उनमे से कई वास्तव मे महापुरुप थे और हैं। फिर भी मैं किसी भी दृष्टि से मासाहार का वचाव देख नही सकता। मासाहारी को मैं पापी नही कहूगा, किन्तु मासाहार मैं सहन नही

कर सकता। मासाहार छुडवाने के लिए मैं यथासभव अपने सारे प्रयत्न करूगा। जो मासाहारी कुटुम्ब मे जन्मे और पले है उनके लिए मासाहार स्वाभाविक आदत बनती है, लेकिन जो निरामिषाहारी परिवार मे जन्मे और पले हैं वे मासाहार की ओर आकृष्ट होते है तब मुझे खेद होता है। इतना ही नही परन्तु घृणा भी होती है। शराब के बारे मे इस विषय मे मेरा अति तीव्र सवेदन है। जब विदेशो मे गया और यहाँ भी कई बार मासाहारी के साथ टेबुल पर बैठकर भोजन करना पडा है, वह सहन किया है। दूसरा कोई उपाय नही था। मैं यह भी जानता हू कि ऐसे परिवार हैं जिनमे स्त्री निरामिषाहारी होती है और पुरुष मासाहारी। स्त्री मासाहार बना कर भी देती है कदाचित अन्त मे मासाहारिणी होती है। मेरा वश चले तो मैं आग्रहपूर्वक स्त्री को कहू कि तुम्हे पुरुष को निरामिषाहारी बनाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करना चाहिए और दृढ रहना चाहिए। अपने देश मे हिन्दुओ मे जहा मासाहार है वहा भी पवित्र दिनो मे, स्त्री विधवा हो तो और ऐसे अन्य प्रसगो पर माँसाहार छोडना इष्ट माना जाता है। तात्पर्य यह है कि मासाहार को उत्तेजन नही बल्कि उसके त्याग मे पुण्य या धर्म है, ऐसी मान्यता है।

निरामिष आहार का प्रचार विदेशो मे काफी परिमाण मे होता है। इस विषय मे विपुल साहित्य प्रकाशित हुआ है। जिन्हे तटस्थ भाव से विचार करना हो उनके लिए प्रचुर सामग्री है। सभी दृष्टियो से इस प्रश्न पर गहन चिंतन हुआ है और बताया है कि मासाहार सर्वथा अनावश्यक है, अनिष्टकारक है एव निरामिष आहार सभी प्रकार से लाभदायक है। लेकिन मनुष्य व्यसन की आदत इतनी बुरी है कि वह छोड नही सकता इतना ही नही बल्कि उस आदत का बचाव भी करता है। शराब पीने मे विनाश है, धूम्रपान मे कितनी ही बीमारियो का भय है यह अब वैज्ञानिक परीक्षणो से सिद्ध हो गया है फिर भी मनुष्य शराब पीना अथवा सिगरेट का व्यसन नही छोडता। इस विषय मे जिन्हें अधिक जानना चाहिए वे डॉक्टर भी इस व्यसन के आदी होने पर उसे छोड नही सकते। ऐसे डॉक्टर रोगी का क्या भला करेंगे ? मनुष्य के खाने-पीने की आदतें, उसके मानसिक, बौद्धिक एव चरित्रनिर्माण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कोई व्यक्ति यह कहे कि उसके व्यसनो का उसके मन-बुद्धि-चरित्र पर कोई विपरीतप्रभाव नही होता तो वह व्यक्ति स्वय अपने आपको धोखा देता है।

यह दलील भी टिक नही सकती कि मासाहार शारीरिक शक्ति अथवा स्वास्थ्य के लिए जरूरी है बल्कि यह प्रमाणित हो चुका है कि मासाहार से

भयकर रोग होते हैं। पौष्टिक खुराक निरामिष आहार मे पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है, यह भी सिद्ध हो चुका है। सभी व्यक्ति निरामिष आहार करें इतना अनाज दुनिया मे नही है और सभी लोग मासाहार छोड देंगे तो लोग भूखो मरेंगे, यह दलील भी आधारहीन है। मनुष्य चाहे तो इतना अनाज पैदा कर सकता है कि दुनिया की तीन अरब आबादी के लिए यह पर्याप्त हो सकता है। उसके साधन है, विशेषत वैज्ञानिक अनुसधान एव यान्त्रिक खेती के अनुभव से यह हकीकत सिद्ध हो गई हैं।

आर्थिक दृष्टि से निरामिष आहार की अपेक्षा मासाहार महगा है। मासाहारी लोग भी खर्च के कारण कितने ही दिन मासाहार नही कर सकते।

नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से मासाहार सर्वथा त्याज्य है। स्वय के लिए दूसरे प्राणी का जीव लेने का मनुष्य को कोई अधिकार नही। मनुष्य का आध्यात्मिक विकास हिंसा से अहिंसा की ओर बढने मे रहा है। जितने अशो मे हिंसा छोडे उतने अशो मे मनुष्य की मानवता बढती है। मासाहार से मनुष्य को क्रूरता की आदत हो जाती है। उसके हृदय मे करुणा का निर्झर मद होकर उसमे क्रूरता प्रवेश करती है। विश्व शाकाहार परिषद् के अध्यक्ष पद से डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा है कि "युद्ध का मूल मासाहार मे है। जो व्यक्ति प्राणी के प्रति दया गवा देता है वह मनुष्य के प्रति भी दयाहीन होता है।" डॉ० अल्वट स्वाईत्सर ने कहा है कि 'सस्कृति के पतन का मूल कारण यह है कि मनुष्य जीव के प्रति आदर 'रेवरेंश फॉर लाइफ' गवा बैठा है।" मासाहार करना, उसे उत्तेजन देना और साथ ही प्रेम, करुणा एव मैत्री की बात करना परस्पर विरोधी है। दुर्योधन की तरह प्रत्येक मनुष्य के साथ यही है कि वह स्वय जानता है कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है ? फिर भी धर्म की ओर प्रवृत्ति नही करता। अधर्म से निवृत नही होता। दुर्योधन ने कहा—"मेरे मन मे कोई भूत बैठा है वह मुझे जिधर ले जाता है, उधर ही दौडता हू।" अधिकाश लोगो के साथ भी कुछ ऐसा ही है। हमारा जीवन प्रमादी, विचारहीन —Thoughtless प्रवाह मे पतन की ओर बहता जा रहा है।

मनुष्य का मासाहार छुडाने का उपाय मुझे दीखता है। मासाहारी को आठ दिन देवनार कसाईखाने मे रखा जाय। उसमे थोडी बहुत मनुष्यता होगी तो मुझे विश्वास है कि मासाहार के प्रति उसे घृणा होगी। अधिकाश मासाहारी व्यक्तियो ने प्राणी-वध नही देखा है, प्राणियो की यातनाएँ नही देखी उनके

ऊपर होनेवाले अत्याचारो को नही देखा, वहती हुई लहू की नदिया नही देखी। कितना घृणात्मक है यह अनुभव, नही क्या ? उसकी अनहद गदगी, मलमूत्र, लहू से होनेवाला कीचड, हाड-मास के छितराये हुए लोथडे आदि नजरो से देखे तो उसकी आखे खुले। स्वादिष्ट वानगिया अपरोक्ष रीति से टेवुल पर आती है इसलिए इसके पीछे कितनी भयकर प्रक्रिया होती है, उसका मनुष्य को भान नही। एकवार अनुभव करे यह जरूरी है। मासाहार छुडाने का यह उपाय अवश्य आजमाने योग्य है।

[३५, दलालस्ट्रीट, एक्जामिनर प्रेस, पहला माला, वम्बई–१]

[चन्दनमल "चाद" द्वारा मूल गुजराती से अनुवादित]

मांसाहार से क्रूरता

आप यह निश्चित रूप से समझ लीजिए कि 'मास' मनुष्य का भोजन नही है। प्राचीन ग्रन्थो मे राक्षसो व दैत्यो आदि को मासाहारी वताया है, इससे यह सूचित होता है कि 'मासभोजी की अन्तरवृत्तिया राक्षसी हो जाती हैं। क्रूरता, लोलुपता, कठोरता और प्रतिक्षण उग्रता, ये सव मासाहार के दुष्परिणाम

हैं जो मन पर होते हैं। ससार मे अगर अहिंसा, प्रेम, सत्य, दया एव ब्रह्मचर्य तथा मैत्री का प्रचार करना है, तो सवसे पहले मनुष्य को शाकाहारी वनाना होगा। शाकाहार के प्रचार के विना अहिंसा और दया कैसे फल-फूल सकेगी ?

—आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि

हमारा आहार

उपभोग नहीं, अपूर्व भेंट है !

—डा०जे० आर० फेण्टेनर वान व्लिसिंगन

जव हम भोजन की उत्पत्ति और भोजन विषयक गुणो की सूची और भाग पर कार्य करते हैं तो हम भूल जाते हैं अथवा गलत अनुमान लगा जाते है कि जो भोजन हम खरीदते हैं, वह दान (भेंट) मात्र है। हम दान से जीते हैं, इसलिए क्या हम भिखारी हैं ? जीवतत्र जो हमे अपना सारतत्व प्रेपित करता है—यद्यपि पशु या पौधे के वीच हम प्रभेद कर सकते है। वह हाथी हो यह आवश्यक नही, वह मनुष्य के उपयोग के लिए दूध देनेवाली गाय भी हो सकती है।

पौधे अथवा पशु हमारे सामने प्रत्येक प्रकार की वस्तु प्रस्तुत करने जितना जागरूक नही होते और तव भी हम उनके प्रति अर्पित होते हैं। क्या हम इसके लिए कृतज्ञ हैं ? या वे हमारे लिए मात्र भोज्य पदार्थ हैं, जिसकी आवश्यकता हमारी दर्पयुक्त वातो को वरकरार रखने के लिये है या हमारे अनुत्तरदायी जीवन के लिये उर्जा ग्रहण करने, अपने तक ही सीमित रहने, अपने ख्यालातो मे खोये रहने व नारेवाजियो मे लगे रहने मात्र के लिए हैं।

यदि हम यह देख सकें कि अपने जीवन काल मे हम कितने विशाल परिमाण मे अन्न, द्रव और वायु का 'उपभोग' करते हैं तो हम वहुत आसानी से यह मान लेने को तैयार होगे कि मनुष्य एक "उपभोक्ता" है।

> भूख की समस्या मात्र शारीरिक भूख की समस्या नहीं है वरन् सही भूख तो भोजन के साथ सच्चा सम्वन्ध है।—हम वास्तविक रूप मे रोटी नहीं खाते वास्तव मे हम पृथ्वी द्वारा प्राप्त की जाती और दानो में वदल जाती दीप्ति खाते हैं।

मगर यदि हम यह स्वीकार लेते है कि प्रकृति एक मा है, जो हमे वह सव कुछ देती है—जिसकी हम इच्छा करते हैं, तव दान प्राप्त करने का विचार प्राथमिक रूप से हमारे मस्तिष्क मे पुन प्रवेश करता है। पौधे जो हमे अपना

सार और पत्तिया देते है, अपने जीवनतत्र का स्वत उपयोग नही कर सकते। हम "सग्रहित धान" खरीदते हैं। यह "अच्छी फसल" है यह हम कब विचार करते हैं ? हम कब रुकते हैं और पौधो को, जमीन को पेड को और गाय को कब धन्यवाद देते हैं ?

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि जो लोग उन देशो, इलाको मे रहते है जहा वर्षो भूख का वास्तविक आतक रहता है, जीवन के प्रति अपना व्यवहार जानते हैं। प्राप्त करने का आनन्द और धन्यवाद ज्ञापन भी। मनुष्य होकर भी अर्पित रहने का आश्चर्य, उनके बीच जीवित रहता है। मगर जो घरो और उद्योगो के विशाल रेगिस्तानो मे रहते हैं वहा भोजन मात्र पदार्थ है जो पैदा किया जाता है और जिसे नापा भी जा सकता है। इसके लिये जिसे धन्यवाद दिया जाए ऐसा कोई हमारे गिर्द नही है। हम इसे बस पैदा करते हैं और उसका मूल्य चुका देते है। क्या भोजन खा लिये जाने मात्र की कुछ चीज नही है ? जो भी भोजन हम चाहते हैं, क्या उसे प्राप्त करने का अधिकार हमे नही है ?

नि सन्देह विटामिनो का अस्तित्व है। रसायनशास्त्री हमे भोजन के विषय मे और सभी पदार्थो के विषय मे महत्वपूर्ण सूचनाएँ देते हैं। मगर हम यह जानते हैं कि रासायनिक विश्लेपण कितना ही महत्वपूर्ण होता हो पदार्थ के अन्तर-हृदय को प्रकाशित नही करता। यह शरीर-विज्ञान सम्बन्धी निर्मित हृदय नही है मगर अभिव्यक्ति दृष्टव्य और सहज उपलब्ध वास्तविकता के सही केन्द्र की घोपणा किया करती है। निश्चित रूप से आपमे से प्रत्येक ने अपने जीवन मे एक वार ऐसा अवश्य कुछ प्राप्त किया है, भले भौतिक हो या न हो, जो आपके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण था, यद्यपि उसका अधिकृत मूल्य वहुत थोडा अथवा अस्तित्वहीन था। इस अनुभव मे आपको निश्चित ज्ञान प्राप्त हुआ कि आखिरकार उस प्राप्य से आन्तरिक सम्बन्ध होना आवश्यक है। उसके वजन को कोई तुला नही माप सकती, मनुष्य का हृदय ही उसे माप सकता है। ज्वर से तपते किसी के होठ पानी की कुछ वून्दो से ही तर कर दिये जाते हैं। उसे अपने जीवन-पर्यन्त यह जान लेना चाहिए उस क्षण का पानी के साथ का आश्चर्यजनक सम्बन्ध महत्व का है, जिसे एच—२— ओ के रासायनिक विश्लेपण से परिभापित नही किया जा सकता। वूदो के सार के लिये भी अन्य प्रकार से ऐसा ही लग सकता है।

मात्र पदार्थ की तुलना मे सार अधिक महत्वपूर्ण होता है। मनुष्य रूपी मोटर के लिए छुपी हुई शक्ति से कही अधिक महत्व भोजन रखता है। यह

उल्लिखित होना चाहिये कि मुख्य विषय यह नही है कि भोजन कम खाते हैं वरन् वह शाकाहारी अथवा पशु साधनो से प्राप्त होता है।

कृपया यह सोचें कि मैं आपसे एक दूसरे को ये काटे और चम्मच देने को कहता हू जिनका उपयोग आप करते हैं। पर ईश्वर के लिये विचारिये कि जो कुछ भी आप अपनी थाली पर रखते हैं, वह थोडा हो अथवा अधिक, वह शाकाहारी रसोइए से प्राप्त उर्जा का समूह अथवा शाकाहारी उर्जा न स्वीकारे जाने योग्य पशु-साधन से उपलब्ध ईधन का समूह होने से पूर्व आपके लिए हमेशा एक दान ही होता है। यदि कोई ससार को सभी प्रकार के विरोधो मे विभाजित करता है तो मुख्य खाई जिसे पाटा जाना है, वह खाई हमारा अपना अन्तर होती है।

हमारी धरती हमे वह नही दे सकती जिसकी हमे आश्यकता है, यदि वह सूर्य के चारो ओर केन्द्रित नही होती है। यह परवशता भोजन के गुणो को समाप्त नही करती। महत्तर और गभीर होने का रहस्य वुनते हैं, इस कारण हमारे दायित्व बढ जाते हैं। समस्या यह है कि आप आवश्यक भोजन कैसे प्राप्त करें, जो पर्याप्त हो। भूख की समस्या मात्र शारीरिक भूख की समस्या नही है, वरन सही भूख तो भोजन के साथ सच्चा सम्बन्ध बनाने की है। लगभग सभी शब्द टुकडे-टुकडे हो जाते हैं। प्रभाव का लाभ लेने, दूसरी वस्तुओ की ओर सकेत देने और झूठी सूचनाएँ देने मे इनका उपयोग-दुरुपयोग किया जाता है। भूख की समस्या, भोजन की समस्या अनुपात और रसायन के स्थान पर प्रथम नही है। एक दूषित क्षण के लिये हमे भोजन के विभिन्न साधनो को नकार देना चाहिए पर उस "सारतत्व" का प्रत्यक्षीकरण है जो हम पोषित महसूस करने के प्रयत्न मे प्राप्त करते हैं। इसमे वे किताबे भी जुड जाती है जो हम पढते हैं, दूर-दर्शन कार्यक्रम भी जिसका हम उपयोग करते हैं और वह प्रलाप भी जिसे हम सारतत्व मे घोलने का प्रयत्न करते हैं।

यदि हम यह खोजे कि किताबें, कागज, नारे, पेय, वार्ताएँ, प्रत्येक वस्तु जिसका हम उपयोग करते हैं, हवा जिसमे हम सास लेते हैं, भोजन जिसे हम निगलते है, सब हमारे चयन के पक्ष मात्र हैं। आदमी होना क्या होना है? तब हम एक आवश्यक बिन्दु पर पहुचते हैं। हम अपनी पहचान के मूल प्रश्न का विशिष्ट और स्पष्ट उत्तर देते हैं। यदि हम यह अनुभव कर सकते हैं कि सयोग रहित प्यार, प्यार किये जाने के क्षितिज खोलता है और एक दूसरे के लिए कष्ट साध्य कर्तव्य के रूप मे नही, वरन् एक भेट-दान के रूप मे दायित्व स्वीकार ले। एक दूसरे के लिए भोजन बनाना एक सुयोग हो, बोझ

न हो । तब हम दैनिक सभावनाओ की झलक पा सकते है। सर्वोच्च प्रकाश की एक किरण हमारे अन्तस मे प्रवेश करेगी और उष्मा देगी ।

धरती विलक्षण सूर्य की किरणो से जागृत हुई। अगोचर सभावनाओ की कल्पना करना ही होता कि जीवन के चमत्कृत केन्द्र को छूने वाला सूर्य नही होता, धरती स्वय मे भेंट प्राप्त करती है। अस्तित्व मे आया भोजन हमे देती है। जे० डब्ल्यू० केसर ने इस तरह स्पष्ट किया है—"हम वास्तविक रूप मे रोटी नही खाते, वास्तव मे हम पृथ्वी द्वारा प्राप्त की जाती और दानो मे वदल जाती रोशनी खाते हैं।"

हममे से अधिकाश विभिन्न विपयो पर कार्य करना पसन्द करेंगे पर यदि आश्चर्य के समक्ष स्थिररूप मे स्थित रहने को एकात्मभाव की विशिप्ट मानवीय क्षमता न होती तो हम न प्यार कर सकते थे, न जी सकते थे, हम अनुपम पुरुप के रूप मे स्वय को पहचान भी नही सकते थे। जीवन का एक विशेप गुण है जो हमारे व्यक्तिगत अस्तित्व की तुलना मे अधिक महत्व का है।

यदि आपका जीवन हृदय और विवेक के वीच की खाई को पाटने मे सहायकहो सकता है, विना दु ख किये या हिचकिचाए हम अपना जीवन उत्सर्ग करने की तत्परता महसूस कर सकते हैं। एक दूसरे के सही नामो को जानने की कोई महत्ता नही है, वास्तव मे आवश्यक है गहरी भूख। वास्तविक निस्वार्थ प्यार समझ जाने की भूख। समझ वास्तव मे कोई वौद्धिक पद्वति नही है यह हमारे गहनतम साधनो से हमारे भीतर का ही उत्तर है। दूसरे व्यक्ति को अपना लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा मे सहायता करने के लिए यह हमारे हृदय के सारभूत की भेंट है। ईश्वर के लिए इसे मनुष्य-भक्षण न कहे।

[राटरडम, हालेण्ड]

[पृष्ठ ११ का शेप]

रस परित्याग का सम्वन्ध अस्वादवृत्ति से है। जिसका मन स्वाद लोलुपता मे अटका रहता है उसके लिए ध्यान करना वहुत कठिन है। ध्यानावस्था के वैपयिक अनुवन्धो से मुक्त होना वहुत आवश्यक है। वैपयिक अनुवन्धो मे स्वाद का अनुवन्ध तीव्र होता है।

सिगरेट से कैंसर

साल्ट लेक-अमरीका के डाक्टर स्पैंस की चेतावनी—

एक सिगरेट से १८ मिनिट आयु कम होती है

—LISTEN (Magazine) AUGUST-1969-PAGE-5

तम्बाकू में २४ घातक विष

(भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पत्रिका ११-२-६५)

१ **निकोटीन विष**—से कैंसर पैदा होता है।

२ **कार्बन मोनोक्साइड विष**—से दिल की बीमारी, सास रोग, दमा और आखो की रोशनी धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है।

३ **मार्श गैस विष**—से शक्ति नष्ट होकर नपुसकता प्राप्त होती है।

४ **अमोनिया विष**—से पाचन शक्ति और जिगर बिगड जाते हैं।

५ **कोलीडीन विष**—से सिर चकराने लगता है, नसें कमजोर पड जाती है।

६ **पायरीडियन विष**—से आतो मे खुश्की और पेट मे कब्ज रहने लगता है।

७ **कार्बोलिक एसिड विष**—से अनिद्रा, स्मरण शक्ति का विनाश और चिडचिडेपन का स्वभाव बनता है।

८ **परफेरोल विष**—से दात पीले, मैले और कमजोर बनते हैं।

९ **एजालिन विष और सायनोजन विष**—से खून खराब हो जाती है।

१०. **फुरफुरल विष और प्रूसिक एसिड विष** से थकान, जडता और उदासी पैदा होती है।

तम्बाकू मे पाए जाने वाले अन्य विषो के कारण खासी, टी बी., अन्दरूनी सूजन, लकवा तथा खून का पानी तक बन जाता है।

अमरीका मे २,१०,००,००० व्यक्तियो ने धूम्रपान छोड़ा, इनमे से १,००,००० तो डाक्टर ही है।

—हिन्दुस्तान समाचार पत्र २२-१०-१९६८

शाकाहार एवं मांसाहार के पौष्टिक तत्त्वों की तुलनात्मक तालिका

शाकाहारी-खाद्य

पदार्थ	प्रोटीन	फेट्स	खनिज-लवण	कार्बोहाइड्रेट्स	कैलशियम	लोहा	पानी	कैलोरी
—	%	%	%	%	%	%	%	% Grs.
गेहू का आटा	१२·१	१ ७	१·८	७२ २	०·०४	७·३	१२·२	३५२
मकई	११ १	३ ६	१ ५	६६ २	०·०१	२ १	१४ ६	३४३
चावल	८ ५	०·६	० ६	७७ ४	० ०१	२ ८	१२ ६	३४६
मूंग	२४·०	१·३	३ ६	५६ ६	० १४	८ ४	१०·४	३३४
उडद	२४·०	१·४	३ ४	६० ३	० २०	६ ८	१० ६	३५०
अरहर	२२·३	१·७	३ ६	५७ २	०·१४	८·८	१५ २	३३३
मसूर	२५ १	० ७	२·१	५६·७	० १३	२ ०	१२·४	३४६
भुना मटर	२२ ६	१ ४	२·३	६२·५	०·०३	५ ०	६ ६	३५८
भुना चना	२२ ५	५ २	२ २	५८·६	०·०७	८ ६	११ २	३७२
लोबिया वडा	२४ ६	० ६	३·२	५५ ७	०·०७	३ ८	१२·०	३२७

सोयाबीन	४३ २	१९ ५	४·६	२०·९	० २४	११ ५	८ १	४३२
भटवास	४१ ३	१७ ०	४ ५	२४·१	०·२१	९ ९	—	४१५
बाल	२४·६	० ८	३ २	६० १	०·०६	२ ०	९ ६	३४७
मेथी	२६·२	५ ८	३·०	४४ १	० १६	१४ १	१३ ७	३३३
जीरा	१८ ७	१५ ०	५ ८	३६ ६	१ ०८	३१ ०	११ २	३५६
धनिया	१४ १	१६·१	४ ४	२१ ६	० ६३	१७ ९	११ २	२८८
बादाम	२० ८	५८·९	२ ८	१० ५	० २३	३ ५	५ २	६५५
काजू	२१ २	४६·९	२·४	२२·३	० ०५	५ ०	५ ९	५९६
भुनी मूंगफली	३१·५	३९·८	२ ३	१९·३	०·०५	०·३	४·०	६६१
पिस्ता	१९ ८	५३·५	२·८	१६·२	० १४	१३·७	५ ६	६२६
अखरोट	१५ ५	६४ ५	१ ८	११ ०	० १०	४ ८	४ ५	६८७
मक्खन	—	८० ८	—	—	—	—	—	७३०
घी	—	९८ ०	—	—	—	—	—	९००
पनीर	२४·१	२५ १	४·२	६ ३	० ७९	२ १	४०·३	३४८
खोया	१४ १	३१·२	३ १	२०·५	० ६५	५·८	३० ६	४२१
स्प्रेटा दूध पावडर	३८·०	० १	६ ८	५१ ०	१ ३७	१ ४	४ १	३४७

मासाहारी-खाद्य

पदार्थ	प्रोटीन	फेट्स	खनिज-लवण	कार्बोहाइड्रेट्स	कैलशियम	लोहा	पानी	कैलोरी
%	%	%	%	%	%	%	%	% Grs
मुर्गी का अडा	१३ ३	१३ ३	१ ०	—	०'०६	३ १	७३ ७	१७३
वत्तख का अडा	१३ ५	१३ ७	१ ०	०'७	० ०७	३ ०	७१'०	१८०
कलेजी (भेड)	१९ ३	७ ५	१ ५	१ ४	० ०१	६ ३	७० ४	१५ `
वकरी का गोस्त	१८'५	१३'३	१ ३	—	०'१५	२ ५	७१ ५	१९४
सुअर का गोस्त	१८ ७	४ ४	१'०	—	० ०३	२ ३	७७ ४	११४
गाय का गोस्त	२२ ६	२ ६	१ ०	—	० ०१	० ८	७३ ४	११४
मछली	२२ ६	०'६	० ८	—	० ०२	० ९	७८ ४	९१

---
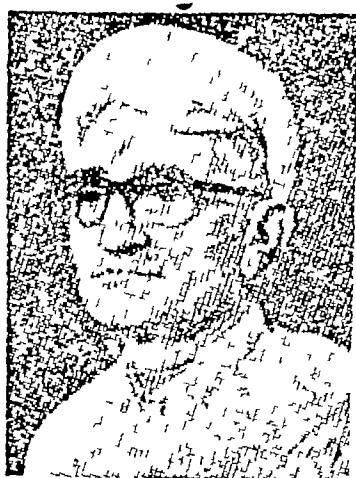
१ भारत सरकार द्वारा प्रकाशित हेल्थ-बुलेटिन न०-२३ से साभार।

प्राणीहत्या न केवल प्रत्यक्ष आहार के लिए की जाती है, आहार सम्बन्धी दोषो से उत्पन्नरोगो के निदान मे प्रयुक्त एलोपेथी औषधियों के लिए भी प्राणियो पर यातनामय प्रयोग किये जाते हैं। अहिंसा की साधना को नैतिक बल प्राप्त हो इसके लिये अहिंसा जन्य औषधियो का उपयोग करने का पूरा आग्रह रहना चाहिए।

●

विज्ञान की वेदी पर लाखों प्राणियों की हत्या

—जयन्तीलाल ना. मानकर
[प्राणीमित्र, मानद् मत्री व ट्रस्टी
वाम्बेह्यूमेनिटेरियन लीग, उपाध्यक्ष
इण्डियन वेजिटेरियन काग्रेस]

डाक्टरी अनुसधान के लिए तथा औषधि परीक्षा के निमित्त सीरम और वैक्सीन बनाने के लिए एवं कौसमैटिक्स जैसी व्यापारी चीजो के परीक्षण के लिये तथा विज्ञान महाविद्यालयो मे शिक्षा के लिए जीव-जन्तुओ के ऊपर नाना प्रकार के घातकी अत्याचार किये जाते हैं। इसके साथ ही अन्य प्रयोग-शालाओं मे प्राणियो का छेदन और विनाश किया जाता है। इस तरह डाक्टरी और विज्ञान के अनेक प्रयोगो मे मानव को सुखी और स्वस्थ बनाने के लिए औषधिया तैयार करने की दृष्टि से जीव-जन्तुओ के ऊपर भीषण अत्याचार किये जाते हैं और लाखो प्राणियो का प्राणहरण किया जाता है। भारत मे ऐलोपैथिक औषधियो का बडा व्यापक प्रचार हो रहा और इन औषधियो का निर्माण जीव-जन्तुओ पर नाना प्रकार के घातक परीक्षणो से होता है। विलायत मे इन प्रयोगो के कारण ५० लाख जानवरो की जान लेली जाती

है। भारत मे जैसे-जैसे ऐलोपैथी, डाक्टरी दवाओ का प्रचार बढ रहा है, उसी गति से देश की औषधि-निर्माणशालाओ मे जीव-जन्तुओ पर घातक प्रहार करके परीक्षण किए जा रहे हैं। इन प्रयोगो मे असख्य जीव-जन्तुओ की अकाल मृत्यु हो जाती है।

विद्यालयो मे इस प्रकार के घातक प्रयत्नो को रोकने के लिए यद्यपि कानून है,परन्तु सरकार इस प्रकार के कानूनो के क्रियान्वयन पर कोई ध्यान नही देती। इसका फल यह होता है कि इससे जीव-जन्तुओ पर अत्याचार करने की और अधिक प्रेरणा मिलती है। विलायत मे भी इस प्रकार के प्रयोगो पर नियत्रण किये जाने के लिए कानून हैं, परन्तु वहाँ भी इस प्रकार के घातक प्रयोग करनेवाले डाक्टरो और विशेषज्ञो को शासन की ओर से रक्षण दिया जाता है।

भारत मे भी प्राणियो के प्रति जो क्रूरता का आचरण किया जाता है, इसका नियत्रण करने के लिये कानून के प्रकरण चार अनुसार भारत सरकार ने एक कमिटी नियुक्त की है। सामान्यत किसी भी प्राणी या पशु की हत्या करने, हैरान-परेशान करने पर दण्ड देने का कानून है, मगर ज्ञान-प्राप्ति, पदवी, दवाईयो के लिए किसी भी पशु की हत्या करें और ऐसे लोग विज्ञान के विकास की वार्ते करके पशुओ की हत्या करते है, ये विचित्र घटना है।

विवेसेक्शन के सामने विलायत-अमेरिका जैसे देशो मे दयालु डाक्टर लोग और शहरीजनो की ओर से ऐसे प्रयोग बन्द करने की बुद्धिपूर्वक पहल चालू है और अन्तिम ७० वर्ष से एन्टीविविसेक्शन मडलो की ओर से सतत प्रयास चालू है। वे लोग ससद और सरकारी स्तर पर यह प्रश्न विविध ढग से पेश करते हैं, जनमत जागृत करते हैं। स्कॅाटीश एण्टी विविसेक्शन सोसायटी के प्रयत्नो से ससद के सभ्य, डाक्टर और सोसयाटी के प्रतिनिधियो की एक चर्चा सभा दिनाक १६-६-१६७१ के दिन ससद के मानवतावादी सदस्य मि हेम ओसवाल के प्रयासो से मिली थी। इसमे मुख्य वक्ता डॉ० इयान पीटर वी वी एम एस. ने बताया था कि प्राणियो पर प्रयोगो से उनकी मृत्यु होती है, इससे तो दूसरा कोई वैज्ञानिक उपाय खोजना अनिवार्य है।

मि० लोमास ने कहा था कि एक विशिष्ट प्रकार की अनुसधान सस्था स्थापित करनी चाहिये, जिसके द्वारा वैज्ञानिक पद्धतियो से औषधि-चिकित्सा के प्रयोग करने चाहिए। प्राणियो का प्रयोग करना ठीक नही है। ससद के अन्य मानवतावादी सदस्यो ने प्राणियो की जगह पर अन्य चीजो का प्रयोग करने का विधेयक संसद मे पेश किया था। सद्भाग्यानुसार अमरिका के डॉ०

आयगड और अन्य विद्वान् डाक्टरो ने पीव बनाने का, दवाइयो के गुण-दोषो की परीक्षा करने के लिए तथा नये ज्ञान के लिए प्राणी-विहीन वैज्ञानिक पद्धति का सशोधन किया है, साथ-साथ उसकी प्रयोगशाला भी तैयार की है। विलायत और अमेरिका के कई महाविद्यालयो मे इसका प्रयोग अब शुरू भी हो गया है। भारत मे भी प्राणियो पर नियत्रण रखकर अन्य वैज्ञानिक पद्धति का भी उपयोग शुरू हो रहा है। वेकसीन और सीरा लाखो प्राणियो को कष्ट देकर, मानकर उनके अग-उपागो से बनाई जाती हैं, इसके बदले मे आइजेन नगर की वेटरनरी रिसर्च सस्था ने दूसरी पद्धति से प्राणियो का प्रयोग किए बिना सीरा और वेक्सीन की पीव तैयार की है। प्राणियो के द्वारा मिलते हुए वेक्सीन से भी यह अधिकतर शक्तिशाली एव गुणदायक सिद्ध हुई है। इसकी वजह से हर साल ३६००० बकरे इत्यादि प्राणियो की हत्या बद हो जायगी, जिससे आर्थिक, नैतिक एव वैज्ञानिक दृष्टि से फायदा होगा ही।

विश्व मे आज हजारो से अधिक कत्लखाने चल रहे है। इन कत्लखानो मे अरबो जानवर काटे जाते है। जानवरो को कत्ल करना पाप है। इसका पाप किसके मस्तक पर होगा? कसाई के या सरकार के? वास्तव मे जानवरो के अग-उपागो का उपयोग करनेवाले सभी जिम्मेदार है, सभी पापी है। प्राणियो की हत्या रोकने की जिम्मेदारी सरकार की है और इससे अधिक जिम्मेदार तो वे लोग हैं, जो लोग बिना सोचे-समझे ही उपयोग करते हैं या करवा देते हैं। आज करोडो गूगे प्राणियो की हत्या करके दवाई बनाई जाती है, ये सारे फार्मेसी वाले भी जिम्मेदार हैं। विलायत और अमेरिका मे इस हत्याकाड के सामने सगठित विरोध चालू है, ऐसे समय पर भारत मे भी लोगो का फर्ज है कि उनके प्रयासो मे पूरी मदद करे। आज मानवतावादी समाज मे उदासीनता है, जो लोग कुछ करने के लिए तैयार होते नही। भारत के मानवतावादी लोगो का पूरा फर्ज है कि इसके सम्बन्ध मे पूरी जानकारी प्राप्त करके अहिंसाजन्य औषधियो का उपयोग करने का पूरा आग्रह करना चाहिये, जिससे अहिंसा की साधना मे नैतिक बल प्राप्त हो।

[द्वारा दि बाम्बे ह्यूमेनिटेरियन लीग
दयामदिर १२५/१२७
—मुम्बा देवी, बम्बई ४००००३

धर्म की दृष्टि मे प्राणि हिंसा जन्य भोजन अग्राह्य है तो
प्राणि हिंसा जन्य औषधि ग्राह्य कैसे हो सकती है?

मछली व मांस में विष

लन्दन के डा० एलेग्जैडर हेग के वैज्ञानिक परीक्षण

मछली व मांस में यूरिक एसिड विष

खाद्य पदार्थ का नाम	एक पौण्ड मे यूरिक एसिड विष की मात्रा
मछली	५ ग्रेन
भेड-बकरी	६ ,,
बछला	८ ,,
सुअर	८ ,,
चूजा	९ ,,
गाय	९ ,,
गाय की भुनी बोटी	१४ ,,
गाय का जिगर	१९ ,,
मास का शोरबा	५० ,,

विष का प्रभाव—यह विष जब खून मे मिलता है तब दिल की बीमारी टी० बी०, जिगर की खराबी, साँस रोग, खून मे कमी, गठिया, हिस्टीरिया, सुस्ती, नीद का अधिक आना, अजीर्ण, तरह-तरह के दर्द, इनफलूए जा, अनेक प्रकार के बुखार आदि सैकडो रोग पैदा होते हैं।

●

अमेरिका मे १९६८ में डाक्टरो की खोज

मांस-भक्षण से हड्डियाँ कमज़ोर होती है—
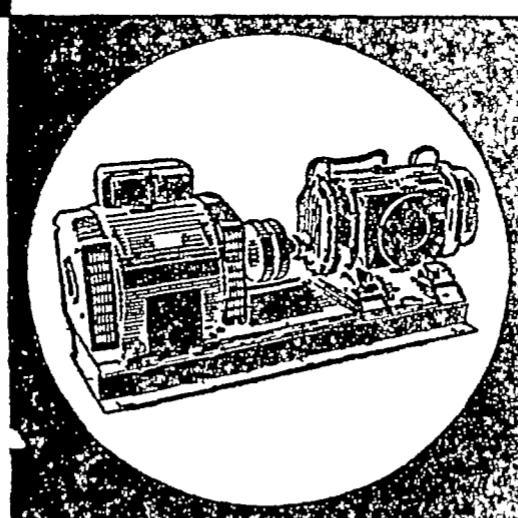
हार्वर्ड मैडिकल स्कूल अमेरिका के डा० ए० वाचमैन और डा० डी० एस० बर्नस्टीन लैसैट, १९६८, वौल्यूम १ पृष्ठ ९५८ मे अपनी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजो का परिणाम लिखते हैं।

"मासाहारी लोगो का पेशाब प्राय तेजाब युक्त होता है इस कारण शरीर के रक्त का तेजाब और क्षार का अनुपात ठीक रखने के लिए हड्डियो मे से क्षार के नमक खून मे मिलते हैं और इसके विपरीत शाकाहारियो का पेशाब क्षार वाला होता है इसलिए उनकी हड्डियो का क्षार खून मे नही जाता और हड्डियाँ मजबूत रहती हैं। उनकी राय मे जिन व्यक्तियो की हड्डियाँ कमजोर हो उनको विशेष तौर पर अधिक फल, सब्जियो के प्रोटीन और दूध का सेवन करना चाहिए और मास एक दम छोड देना चाहिए।"

साइस न्यूज—(दिल्ली विज्ञान शिक्षक सघ) से उद्धृत

The belief present today in the minds specially of the young growing generation that meat and other non-vegetarian foods are more strength-giving than vegetarian food is absolutely false and baseless The strongest animals—elephant, gorrila, wild-Buffalo and Hippo are all vegetarian It is a proven fact that vegetarian food has more vitamins, minerals and give more vitality and resistance power. Again, the percentage of those suffering from high-blood pressure, heart-trouble, cancer of liver and decay of teeth is more among non-vegetarians than among the vegetarians

Vegetarian food gives you more Shakti than non-vegetarian food
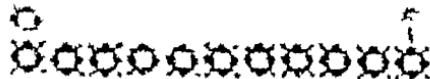
महामहिम दलाईलामा

मैं शाकाहारी क्यों हुआ ?

★

जीवन सभी को प्रिय है। कभी स्वय को किसी का भोज्य बनने की स्थिति की कल्पना की है आपने ? कभी आपके लिए पकनेवाले पशु की पीड़ा से एकाकार हुए हैं आप ? हम अपनी सुविधा का तो खूब खयाल रखते हैं, लेकिन—

●

"आप दूसरो को नुकसान न पहुँचाएँ, यदि आप नही चाहते कि दूसरे आपको नुकसान पहुंचाए।" यह एक तिव्वती कहावत है। एक अकेला ही नही, समस्त सवेदनशील-प्राणी दु खो से पीडित होते हैं। मनुष्य जितना अपने निकट और प्रियजनो और अपनी सम्पत्ति से सम्बद्ध रहता है, उतना ही अधिक वह स्वय से भी जुडा रहता है। अपने आनन्द और सुख के पूजा-स्थलो की वाह्य खतरो से रक्षा करने, उनका प्रतिकार करने की उसमे स्वाभाविक वृत्ति होती है। ठीक इसीप्रकार का चारित्रिक गुण पशु-साम्राज्य मे भी विद्यमान रहता है। जवकि छली-आवुनिक ससार का बहुत वडा भाग गूँगे प्राणियो के ससार की रक्षा को अरुचि का कर्म ही मानता है। उच्चकोटि के प्राणियो को ही नही, तुच्छ से तुच्छ प्राणियो को भी अनुभूति होती है, इसलिए वे भी दु खो से

छुटकारा चाहते हैं और सुख व आनन्द की खोज करते है। इन प्राणियों को जीवित रहने के प्राकृतिक अधिकार से वचित करना नीतिशास्त्र के मूल्यो का अतिक्रमण करना है। बुद्ध की शिक्षा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य से लेकर छोटे से छोटे जीवित प्राणी का जीवन लेने का निषेध करती है। "पवित्रात्मा द्वारा घोषित पहला निषेध" किसी का जीवन न लेने की ही शिक्षा है।

जैसा कि मैंने कहा, शाकाहारी होने का मेरा निर्णय नितान्त वैयक्तिक कारणो से प्रभावित था। इसका सम्बन्ध न निश्चित शाकाहारी सिद्धान्त से है और न इसलिए कि विशेष मनुष्य समाज ऐसा करता है, इससे मैंने कोई प्रतिस्पर्धा की है।

जीवन सभी को प्रिय है

जिनके कारण मेरे भोजन की आदत मे परिवर्तन आया, उन सहायक तथ्यो मे आश्चर्यजनक या दर्शनीय कुछ भी नही था। घटनाएँ अवश्य महत्व-पूर्ण थी जिनका सयोगवश मुझे दर्शक होना पडा। १९६५ के भारत-पाक युद्ध के समय मैंने वसन्त ऋतु का अधिकाश भाग भारत के दक्षिणी राज्यो की यात्रा मे विताया। मोटर से शहरी-कस्बई क्षेत्रो की यात्रा के बीच भागते हुए मुर्गो, विल्लियो और कुत्तो को देखना सामान्य बात थी। इतनी शक्ति भर भागते हुए जैसे कि वे मृत्यु के भय से शकित हो। इसे कोई नही नकारेगा कि मृत्यु एक पीडा है।

इन दृश्यो से उत्पन्न भावना एक प्रकार से दया और मानसिक यातना की होती थी। और फिर केरल मे अपने पडाव के समय सयोग से मुझे किसी के भोजन के शिष्टाचार के लिए मुर्गे की हत्या होते भी देखना पडा।

निर्दोष मुर्गे द्वारा अनुभूत भयकर भय, पीडा और अत्याचार को महसूस करना भी भयकर रूप मे कठिन था। जीवन सभी को प्रिय होता है। उस गरीब और असहाय पक्षी ने कैसा भय और सताप सहा, जब उसका जीवन नष्ट किया जा रहा था। मैं यह सोच कर ही काँप जाता हू। उसी क्षण मैंने किसी का जीवन न लेने की नैतिक-महत्ता की सपूर्ण क्षमता को कठोर वास्त-विकता और सर्वांगीण गम्भीरता के साथ महसूस किया। मैं मार दिये गये मुर्गे के प्रति करुणा और दया से व्याकुल था—दूसरी बात जिसके कारण मैं मास-भोजन से दूर हुआ, इस तथ्य की जानकारी से कि जहाँ-जहाँ भी हम जाते हैं, उस स्थान विशेष के मेजवान विशेषरूप से मेरे दल के सदस्यो के भोजन के लिए ही मुर्गों और भेडो का वध करते हैं। नि सन्देह यह मेरे सन्तोष के लिए शुभेच्छा से ही किया जाता था, मगर मैं मुर्गा खाना सहन नही कर

सका जिसे विशेष रूप से मेरे ही लिए वध किया गया था। इन्ही सब कारणो ने मुझे सभी प्रकार का मास-निषेध कर वनस्पति खाद्य को अपने भोजन का एकमात्र अथवा मुख्य भाग बनाने का निश्चय करने को निर्देशित किया।

मनुष्य बिना मास के जीवित रह सकता है

विज्ञान और यान्त्रिकी के विकास से मनुष्य की सुख-सुविधाओ मे अनेक स्तरो पर वृद्धि हुई है। मनुष्य प्रतिभा और विवेकपूर्णता की उस सीमा तक पहुंच गया है कि वह वास्तव मे अपनी आवश्यकताओ की तुष्टि के लिए हर वस्तु का उत्पादन करने मे सक्षम है। मैं मानवीय भोजन के लिए पशुओ का वध किए जाने का कोई तर्क नही देख पाता, इसलिए कि अनेको प्रकार के विकल्प उपलब्ध हैं। इस पर भी मनुष्य बिना मास के जीवित रह सकता है। कुछ ही माँसाहारी पशु हैं जो केवल मास पर ही जीवित रहते हैं। आमोद-प्रमोद और साहस के लिए पशुओ को मारने का विचार ही अरुचिकर और कष्टकर है। इस प्रकार के क्रूर कार्य-व्यापारो मे लगना न्याय-सगत नही होता। यह विवेक और बौद्धिक तरीके से सोचने की क्षमता, जिससे हर व्यक्ति सम्पन्न होता है, की अवमानना है।

साधारणत यह कहा जाता है कि तिब्बत के लोग मासाहारी होते हैं। वे अपने घोषित धर्म की ऐच्छिक प्रतिकूलता के बजाय आवश्यकतावश ही हैं। तिब्बत की भौगोलिक जलवायविक परिस्थितियाँ इस प्रकार की हैं कि बहुत बडे भाग मे वनस्पति की फसल विकसित कर पाना सभव ही नही होता। वनस्पति का स्पष्ट अभाव ही यहाँ के लोगो को मास और तत्सबधी वस्तुओ की अधिकाधिक खपत करने की ओर झुकाता है। तिब्बत के तेज हवाओवाले विस्तृत उत्तरी पठार में तो वनस्पति एक विरल शिष्टाचार है। फिर भी तिब्बत के लोग वैसाखी-पूर्णिमा के पूरे माह और प्रत्येक तिब्बती माह के ८वें १५वें और ३० वें दिन मास नही छूते हैं। भारतवर्ष की स्थितियाँ नितान्त भिन्न हैं। वनस्पति फसलो की प्रचुरता के कारण लोगों के लिए मास-भोजन का निषेध सम्भव हो जाता है।

प्रकृति ही प्राणियो की आजीविका का एकमात्र साधन है, मगर उनकी सरक्षक नही—इस सदर्भ मे कि प्रकृति बाहरी आक्रमण और खतरे से ही उनकी रक्षा कर सकती है। मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी है, क्योकि वह विवेक और तर्क की क्षमता से सम्पन्न होता है। इसलिए मेरा विश्वास है कि मानवीय-प्राणी ही वे प्रतिनिधि हैं, जो जिनका मर्यादित कर्तव्य न होते हुए भी, पशुओ की रक्षा करने मे सक्षम है। पशुओ को, वध किए जाने की बनिस्बत रक्षा, देख-

भाल और प्यार किया जाना चाहिए। सूख रहे तालाव से मछली को वचा लेने जैसे छोटे-छोटे दया कार्यो पर हमारा कुछ खर्च नही होता।

हमारी विशेष सुविधाएं

सम्पूर्ण जगत् की वौद्ध-मान्यता के अनुसार ससार कई खण्डो मे विभाजित है, जिसका एक खण्ड पशु आकारो से निर्मित है। अज्ञान, गूंगेपन और विचार-शक्ति के अभाव मे पशुओ के दु ख वने रहते हैं, जवकि मनुष्य ऐसा नही है। मनुष्य का जन्म लेने की इस विशेष सुविधा का हमे उत्तम उपयोग करना चाहिए। जीवित प्राणीमात्र के लिए दया और प्यार जगाकर ससार-सागर से प्राणीमात्र को मुक्त रखने की भावना के साथ हमे वुद्ध-स्थिति को प्राप्त करना है।

सभी तथ्यो से अधिक मुझे प्रतिदान के तत्त्व ने प्रभावित किया। जैसा आप वोयेंगे, वैसा ही फल पायेंगे। प्रत्येक प्रकार के कार्य का परिणाम भी तद्‌रूप होता है। अगर कोई दूसरे को नुकसान या आघात पहुचाता है तो उसको भी वही अन्त सहना होगा—यह कर्म और फल के सम्वन्ध का सार्व-लौकिक नियम है। भगवान वुद्ध ने सभी चेतन प्राणियो को निर्देशित किया है कि प्यार और दया की भावना ही शान्तिपूर्ण ससार के निर्माण के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। मनुष्य-मात्र के कार्य-व्यापारो पर विशेष महत्त्व दिया है जो हमारे गूंगे पशुमित्रो की वास्तविकता से सवधित हैं। लकावतारसूत्र मे कहा गया है—"सभी प्राणी—वे मनुष्य हो, पशु हो, वधु-वाधवो की भाति और सनातन कर्मविधि के प्रभाव मे आतरिक रूप से जुडे हैं।" जैसे एक व्यक्ति अपने सवधी का मास नही खाएगा, उसी तरह मासाहार से भी परहेज किया जाना चाहिए। सभी पशुओ के साथ भाई-वहनो जैसा व्यवहार करना है। सभी साधु-सन्यासियो ने मासाहार को पूर्ण गुणात्मकता की दया और प्यार उपजाने मे वाधक मानते हुए मासाहार से परहेज किया है। इसी प्रकार मास-भोजन तात्रिक-शक्ति की सिद्धि प्राप्त करने मे भी वाधक है।

हमारे पशु-मित्र देखभाल और प्यार के लिए हैं। वे हमारे अथवा हमारी आजीविका के लिए ही जीवित नही रहते वरन् इस ससार के सौन्दर्य और सुख मे अपनी विशिष्टजैवी विधि से अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं।

भूखो मर जाना विवशता है, खाकर मरजाना मूर्खता।

—आचार्य तुलसी

● डा० रत्नवेलु सुब्रह्मण्यम्
एम० डी० एम० आर० सी० पी०
(आहारशास्त्र के निष्णात एव शाकाहार प्रचार के कर्मठ विद्वान)

स्वास्थ्य और आनन्द के लिए शाकाहारी भोजन

●

जीवन को देखने की विधि, हमारा व्यवहार आदि सभी कुछ हमारे खाने पर निर्भर करता है, बकरे का मांस खानेवाला कुत्ता कुत्ते के खोल मे बकरे के मास तत्व से युक्त होगा। मासाहारी आदमी भी इसी तरह के तत्वो को ग्रहण करने लगता है।

●

जब हम ससार मे चारो ओर देखते हैं, हमे एक पशु दूसरे पशु को खाता हुआ मालूम पडता है—उदाहरणार्थ कुत्ते द्वारा बिल्ली की, शेर द्वारा बकरी और भेड की और एक बडी मछली द्वारा छोटी मछली की हत्या की जाती है। पशु-जगत मे जीवन की यही व्यवस्था है, मगर मनुष्य, जो ईश्वर की आकृति मे निर्मित हुआ है, पशुओ से भिन्न होना चाहिए और उसे तुच्छ प्राणियो की भाँति व्यवहार नही करना चाहिए।

इस नैतिक-विचार से परे शाकाहारी भोजन के निर्वाह मे एक वास्तविक उद्देश्य भी होता है—

मांसाहारी भोजन बहुत तेजी से [illegible] से दूषित हो जाता है। इसकी सुरक्षा के लिए बहुत ही सावधानी की आवश्यकता रहती है। पशु को मार देने के शीघ्र बाद यदि उसका उपयोग नहीं किया जाता है तो यह रोगों के कीटाणुओं को आकर्षित करता है, परिणाम स्वरूप रोगी भाग का उपयोग किये जाने पर, खानेवाले व्यक्तियों में बीमारियों का प्रवेश होता है। फिर ताजा मांस भी बीमारी का कारण बन सकता है यदि—जीवित अवस्था में जानवर ने अन्य रोगग्रस्त पशु खा लिया हो।

मछली के सम्बन्ध में अनुभव यह है कि यदि ग्रीष्म ऋतु के महीनों में उनका उपयोग किया जाता है, विशेषरूप से जबकि वे [illegible] पानी से पकड़ी गई हों, वे स्वाभाविक रूप से तीव्र अतिसार और [illegible] का कारण बनती है, दूसरे प्रकार से यह भी भलीभांति ज्ञात है कि गंदे पानी के, दूषित स्थानों से पकड़ी गई मछली खाने का परिणाम था कि आमातिसार का प्रभाव प्रकट कर सकती है। मछली और प्राउन मछली भी अति-संवेदनशील लोगों में अस्थमा, खाज, शीतपित्ती व अलर्जी आदि रोगों के लक्षण उत्पन्न कर सकती है।

अलर्जी के लक्षण वनस्पति तक से पाए जा सकते हैं, मगर यह मछली और प्राउन मछली जैसे पशु-भोजन जैसा तीखा नहीं होता। जब कोई मांसाहार करता है, वह शक्ति के मूलस्रोत के रूप में बहुमूल्य प्रोटीन-भोजन प्राप्त करता है, जो शीघ्र ही पशु-कोशिका में परिवर्तित हो जाता है। मगर, इस शक्ति का यदि शीघ्र ही उपयोग नहीं किया जाता है तो यह शीघ्र ही व्यर्थ हो जाती है। बिना वनस्पति के जब मांस का उपयोग किया जाता है जिसका क्षरण पूरा हो चुका होता है, खाए जाने पर थोड़ा-सा अवशेष बच रहता है, जिसके परिणाम स्वरूप मांसाहार पर ही निर्भर रहनेवाले के अपच का कारण बनता है।

सौभाग्य से थोड़े ही व्यक्ति ऐसे हैं, जो मांस के अतिरिक्त कुछ नहीं खाते। प्रोटीन-भोजन से अन्त में जो बनता है उसे "यूरा" और "यूरिक अम्ल" कहा जाता है। गुर्दे द्वारा यह यूरिया शरीर से शीघ्र ही हटा लिया जाता है पर 'यूरिक अम्ल' जल्दी से नहीं हटता और इसमें संगठित होने की प्रवृत्ति होती है और जोड़ों में दर्द पैदा करता है। अधिक मात्रा में मांसाहार करने वाले लोग जोड़ों की नष्टधर्मी बीमारियों की ओर अधिक उन्मुख होते हैं। यदि जोड़ लचीले न हों तो व्यक्ति तेज नहीं चल सकता या तेजी से एक जगह से दूसरी जगह नहीं जा सकता। यूरिक अम्ल के जमाव की स्थिति को

गठिया कहा जाता है। जब यूरिक अम्ल अधिक मात्रा मे एकत्रित हो जाता है, तो यह चमडी को फाड देता है और टूटी हुई चमडी के इस भाग से दूसरे तत्व बाहर आने लगते है, जिसे "गाउटी टोफी" (गठिया का एक प्रकार) कहा जाता है। पर हमारे देश मे यह विरल ही होता है, क्योकि मासाहारियो मे भी मास की खपत कम ही होती है। यह इसलिए नही कि वे माँसाहार से परहेज करना चाहते हैं, वरन् आर्थिक दृष्टि से मासाहार की कीमत बहुत ऊची होती है।

जीवन को देखने की विधि, हमारा व्यवहार आदि सभी कुछ हमारे खाने पर निर्भर करता है। अगर कुछ माह तक एक कुत्ते का बकरे के मास पर पोषण किया जाता है और फिर कुत्ते को मारा जाता है, तो, मासल विश्लेषण किए जाने पर न्यूनाधिक कुत्ते का तात्विक गठन बकरे जैसा ही होगा। यद्यपि उसका ऊपरी आवरण कुत्ते जैसा ही होगा, मगर मासतत्व बकरे के समान ही होगे। जैसा कुत्ते मे यह होता है, वैसा ही व्यक्ति मे घटित होता है। अधिक मात्रा का मासाहार व्यक्ति को कुठित और शीघ्र-क्रोधी बना देता है जो अपने भीतर की पाशविक भावना और पाशविक प्रवृत्ति को शमित कर पाने मे सक्षम नही होता।

जब कोई शाकाहारी भोजन करता है, उसको भोजन के नाना प्रकार के व्यजन उपलब्ध हो सकते हैं और वह उनमे से किसी एक का चुनाव कर सकता है। हर एक के अपने गुण व दोष होते हैं। किसी मे आधारभूत पोटाश का गुण अधिक हो सकता है तो किसी मे सोडा अधिक, किसी से स्फुर अधिक तो किसी मे शोरे का आधिक्य हो सकता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पतियो द्वारा शरीर की आवश्यकतानुसार कोई भी अपने शरीर को खनिज और विटामिन देने मे सक्षम हो सकता है। चुन लेने की विशिष्टता के कारण शरीर वही सारतत्व चुनता है जिसकी कमी होती है। ऐसी अवस्था मे जब आप शरीर को मांस देते हैं, नि सन्देह यह नाना प्रकार के प्रोटीन प्रेषित करता है जिन्हें मनुष्य शरीर शीघ्र ही अपने अभिप्राय मे बदल सकता है, मगर खनिज और विटामिन तत्व हमेशा थोडी मात्रा मे ही रहेगे, परिणाम स्वरूप जिन आवश्यक खनिज तत्वो से नाना प्रकार की हड्डियो-दात और कोमल हड्डियो की कोशिकाए बनती हैं, का शरीर मे अभाव रहता है।

मौलिक तत्वो मे पृथक मास-खाद्य विघटित हो जाने की न तो कोई चेतावनी देता है और न ही सकेत देता है कि उपयोग किए जाने की अच्छी स्थिति मे नही है। जबकि वनस्पतियो का बाहरी रूप ही ऐसा होता है जो सामान्य जीवाणुओ के विपरीत बाधक का कार्य करता है। यह बाहरी

आवरण भीतरी पदार्थ को दूषित होने से रक्षा करता है। इन सबके लिए बाहरी छिलके को देखना आवश्यक होता है। यदि बाहरी भाग अच्छा है तो विश्वास हो जाता है कि वनस्पति का तत्व दूषण से मुक्त है और मानवीय उपयोग के लिए अच्छी स्थिति मे रक्षण योग्य है। अनेक अवसरो पर बाहरी आवरण भीतर मे घटित होते रहने का मूल्यवान् संकेतवाहक होता है।

दृष्टान्त के लिए कच्चा केला यदि आप लें, जो खाने योग्य नहीं होता, उसका रग हरा होगा और जब यह पक जाता है, पीले रग मे बदल जाता है और जब चमकीले पीले रग मे होता है, इसका मतलब है—यह पक गया है और खाने योग्य हो गया है। अगर यह इस अवस्था मे नही खाया जाता है तब केले के सारे गुण सकुचित हो जाते हैं, क्योकि इसमे पानी के तत्वो का अभाव हो जाता है और इसका बाहरी आवरण जो कि पीला होता है, सिकुडने लगता है, काला होने लगता है और झुर्रियो का सकेत दिखाता है। यदि इस अवस्था मे भी इसका उपयोग नही होता है तो वह पूरी तरह काला हो जाता है। ये बदले हुए रग प्रकृति की ही देन हैं।

दूसरा लाभ यह कि अधिकाश वनस्पतियो पर बाहरी आवरण होता है, जो भीतरी तत्वो के दूषित होने से रक्षा करता है। खुले मास और मछली पर मक्खिया बैठे देखना सामान्य-सा दृश्य है। ये मक्खिया मल-पदार्थ पर भी बैठती है। इस तरह विष्टा से भोजन पर सक्रमण पाया जाता है और बीमारिया होती हैं। ठीक इसी प्रकार वनस्पति अथवा मास के साथ भी होता है। मास पर कोई बाहरी आवरण नही होता, जिसे कि पकाए जाने से पूर्व अलग कर दिया जाए जबकि वनस्पतियो का बाहरी आवरण हमेशा अलग कर दिया जाता है जो खाया नही जाता। फिर अधिकाश वनस्पतिया इतने ऊंचे तापमान पर पकाई जाती हैं कि रोगो के कीटाणु उत्पन्न ही नही हो सकते। यदि मांस इतने ऊंचे तापमान पर पकाया जाता है तो मास स्वत ही जल जाएगा। अधपके मास मे मूलतत्वो का पृथक्करण कच्चे मांस की तुलना मे तेजी से होता है। फिर भले मास पका हुआ हो अथवा कच्चा, रोगो के कीटाणुओ को आकर्षित करता ही है। दूसरी ओर अधिकांश भाग को खाने योग्य बनाए रखने मे वनस्पतियो का बाहरी आवरण रोग के कीटाणुओं को रोकता है। पकाए जाने के बाद भी उस सीमा तक रोग के कीटाणु उत्पन्न नही होते जितने पशु-मास पर होते हैं।

वनस्पति के क्षेत्र मे अनेक प्रकार का भोजन होता है। उदाहरण के लिए सुपारी फल मे चर्बी और प्रोटीन तत्व, अन्न मे गदगी-नाशक जल-तत्व (कार्बो-हाइड्रेट) और विटामिन (जीव-तत्व) होते है। अनेक फलो मे चीनी,

खनिज, जीवतत्व और पानी वहुतायत से होता है। गर्मी के दिनो मे कच्चे नारियल का पानी पीकर आनन्द लिया जा सकता है और नारियल के भीतर के मक्खन जैसे भाग को खरोच कर खा लेने पर भूख को शान्त किया जा सकता है। खरवूजा, ककडी, पानी-ककडी जैसी गीली वनस्पतिया भी स्वादिष्ट होती हैं। इन सवमे पानी इतनी वहुतायत से होता है कि इनसे प्यास वुझ जाती है और अतडियो को सुचारू रूप से सचालित रहने मे भी महायक होता है। कच्चे नारियल का पानी मैंदे जैसी वनावट का होता है। जीव-रसायन-विद् जिसे रक्त के साथ का आइसोटानिक (एक प्रकार का सफेद-सा तरल) वताते हैं, वह यह कि कच्चे नारियल का पानी अतिसार, आमातिसार और यहाँ तक कि हैजे से ग्रसित व्यक्ति के रक्तप्रवाह मे सीधे ही दिया जा सकता है। शरीर मे जितना पानी कम हुआ है उसकी पूर्ति "ग्लूकोज सेलाइन" (अगूर से निकाला गया शर्करा-नमकीन तरल) देकर की जाती है। यह पाच प्रतिशत "ग्लूकोज सेलाइन" वहुत सावधानी से बनाई जाती है इसलिए कि यह किसी भी तरह से दूपित न हो। जहा तक कच्चे नारियल के पानी का प्रश्न है, वैज्ञानिक प्रणाली से पानी को एकत्रित करने की आवश्यकता पडती है जवकि यह नाडी मे दिया जाना हो, शुद्ध किए जानेवाले वर्तन के पानी मे हाथ न लगने पाए।

दूसरे महायुद्ध के समय मलाया मे इसका उपयोग किया जाता था। विशिप्ट मूत्रवर्धक कार्य के कारण यह मूत्र-निवारण को पूरी तरह आसान वनाता है। गर्मी के दिनो मे जव कोई व्यक्ति सुविधा से मूत्र-निवारण नही कर पाता और अधिक पसीना होता है। उसके शरीर मे नमक की कमी हो जाती है। कच्चे नारियल का पानी केवल पानी ही नही देता, वरन् काफी मात्रा मे नमक भी देता है जो कि पसीना वहते रहने के कारण कम हो जाता है।

शाकाहारी-खाद्य, चावल, गेहू, मकई आदि से वना होता है और ये सव कीटाणुनाशक जल-तत्वो से भरपूर होते हैं। प्रकृति जव गदगीनाशक तत्व उत्पन्न करती है, उसमे वी—१, प्रकार का विटामिन होता है,मगर व्यक्ति उसे अज्ञानवश करता है और शुद्ध करने की इस प्रक्रिया मे विटामिन वी-कम्पलेक्स समाप्त हो जाता है। जव भी गदगीनाशक जलतत्व (कार्वोहाइड्रेट) दिया जाता है वी—१ प्रकार के विटानिन (जीवतत्व) की जरूरत पडती है ताकि गदगीनाशक जलतत्व का सही उपयोग हो सके। वी—१, प्रकार का विटामिन शरीर द्वारा 'इन्सुलिन' (शुगर का पूरक तत्व) तैयार करने मे महत्वपूर्ण भूमिका का

heros' BE 110CHN
गर्मी में बहार
बजाज का उपहार
बजाज बहार
सीलिंग और टेबल पंखे
आराम का नया नाम
सीलिंग पंखा
टेबल पंखा
इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड

निर्वाह करता है। मशीनो से चावल साफ और पालिश किए जाने की प्रक्रिया मे चावल की वाहरी पर्त हट जाती है, इससे विटामिन-वी के रक्षक तत्व के विना चावल सफेद हो जाता है। यह विटामिन-वी "इंसुलिन" की उत्पत्ति मे सहायक होने के साथ-साथ अतडियो की लहरीली गति बनाए रखने मे भी सहायक होता है। इस प्रकार कि सिकुडन और दवाव से आत तत्वो को आगे वढाता है, परिणाम स्वरूप भोजन मे जितने विटामिन तत्व होते है वे कब्ज होने से रोकते हैं। इस प्रकार के "कार्वोहाइड्रेट" वाले भोजन को प्रोटीन स्पेरर (प्रोटीन वचावक) कहा जाता है। सुचारू सचालन के लिए शरीर को अच्छी मात्रा मे प्रोटीन की आवश्यकता होती है।

शाकाहारी धान स्वाभाविक रूप से ही प्रोटीन दे सकते हैं और मटर दाना, काला चना, सेमल पत्ती-दाल आदि दूसरी चीजो से भी जिनमे वहुमूल्य प्रोटीन होता है। शाकाहारी प्रोटीन के नुकसान पशु-प्रोटीन के समान नही होते। उनमे अनेक प्रकार के अन्तर होते हैं जिनका सग्रह और उपयोग किए जा सकने से पूर्व रूपान्तरण होना होता है। प्रोटीन-वर्ग के अनेक अतर हैं। शाकाहारियो को काफी मात्रा मे प्रोटीन-भोजन की जरूरत होती है ताकि शरीर शुद्ध प्रकार का क्षार-अम्ल एकत्र कर सके (प्रोटीन अनेक प्रकार के क्षार-अम्लो से वनता है) कुछ क्षार-अम्ल शरीर के सामान्य कार्य के लिए आवश्यक होते हैं। ये आवश्यक क्षार-अम्ल पशुमास मे रहते ही हैं। यह मानवीय उपयोग के अनुसार क्षार-अम्ल हो सकने से पूर्व इसका रूपान्तरण होता है या परिवर्तित होना पडता है। अगर भोजन सन्तोपजनक रूप से नाना प्रकार के हैं अर्थात् अगर कोई व्यक्ति चावल-दाल, पत्ती-सेम आदि का भोजन लेता है तो उसे अच्छी तरह से अनेक प्रोटीन मिल जाते है जिनसे कि वह आवश्यक क्षार-अम्लो का निर्माण कर सकता है।

सामान्य भारतीय घर मे परोसे जानेवाले भोजन काफी अर्थपूर्ण होते हैं। उदाहरण स्वरूप भोजन का पहला क्रम चावल-दाल-घी का होता है—चावल और दाल मे वहुत उन्नत प्रकार का प्रोटीन-खाद्य होता है। मनुष्य को आवश्यक चर्वी देता है। वह भूखा होने पर भोजन के लिए वैठता है। इस प्रकार अच्छे भोजन का प्रोटीन तेज भूख को प्रभावित करता है। तीखी भूख को तृप्त कर चुकने पर दूसरे क्रम की चावल-चटनी-जिसमे प्याज, लहसुन, गोलमिर्च, थोडी ठण्डक और इमली होती है—द्वारा धीरे-धीरे उत्तेजित करता है। ये सव वायु-स्राव को वढ़ावा देते हैं। इस प्रकार जो पहले क्रम मे जम चुका होता है वह उत्तेजित लहसुन-प्याज असक्रामक तत्व हो जाता है। लहसुन मे तेल होता है जो असक्रामकतत्व के रूप मे कार्य करता

है और जोडो के मुक्त सचलन मे महायता देता है पर अधिक मात्रा मे लिए जाने से नुकमान भी करता है। तीसरा क्रम चावल-मिर्च-पानी का होता है। इस समय तक आधे से अधिक भोजन समाप्त हो जाता है। लिए गए भोजन को पाचन के लिए रूपान्तरित भी होना होता है और इसमे मोटापा घटानेवाला मिर्च-पानी महायक होता है। आखिरी क्रम चावल-मक्खन-दूध या दही का होना है। वह सव चर्बीवाला भोजन होता है जो तृप्ति का भाव उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह भोजन पेट मे अम्ल वनना रोकता है और भोजन काफी समय तक पेट मे ठहरा रहता हैं और इससे दूसरे भोजन की माग जल्दी नही होती।
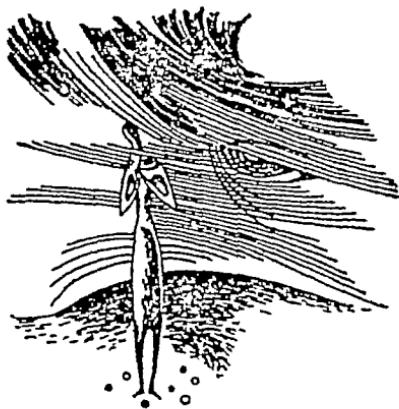
मामान्य भारतीय घरो मे इन्ही से भोजन वनता है। इन चार क्रमो के अलावा निश्चित रूप से मिठाई भी परोसी जाती है। मुख्यरूप से लिये गये भोजन मे पकी हुई सब्जिया भी शामिल होती है। ये हरी सब्जिया दाल और मिर्च के पानी मे मिलाई जा सकती हैं। हरी पत्तियो मे भोजन का सार वहुत कम होता है क्योकि भोजन का खुरदरा भाग आवश्यक खनिज तत्व प्रदान करता है और कई प्रकार की हरी पत्तियो मे तो औपधिक गुण भी होते है। उदाहरण के लिए वेर और विशेप प्रकार की आलू पत्तिया वहुत अच्छी तरह से रेचन का कार्य करती है। यह हृदय और जिगर के लिए विशिष्ट शक्तिदायक भी सिद्ध हुई है। "वाडोलिया केलेडुला" (विशेप प्रकार का गेदा) की पत्तिया जिगर मे 'अल्बुमिन" (सफेद सा गाढा तरल) उत्पन्न करती है जो रेचन का कार्य करता है। वडी हरी पत्तियो मे वहुत से खनिज गुण होते हैं और भोजन जव हरी पत्तियो का होता है तो व्यक्ति का मल काला हो जाता है जैसे वह लोहमिश्रित हो। हरी पत्तियो का लाभकारी कार्य उनकी विभिन्नताओ पर निर्भर करता है। उनके उपयोग द्वारा अनेक प्रकार के खनिज तत्व प्राप्त किये जाते हैं।

मूल्यवान ऐन्द्रिक रसायन हृदय और जिगर पर सुरक्षात्मक कार्य के अतिरिक्त रक्त के पुनर्जीवन मे सहायक होते हैं। कई वनस्पतियो को पकने रख दिया जाता है। जव वे पूरी तरह पक जाती है तव मिर्च, खटाई, गोलमिर्च आदि स्वाद-रस वाली चीजें मिलाई जाती हैं। इन सवकी भोजन मे मिलाये जानेवाली मात्रा ३ मे ४ औंस तक हो मकती है। हरी पत्तियो की भाति ये भी खनिजतत्व और विटामिन देती हैं और वायु-स्राव को उत्तेजित करती है, इन सवका कार्य मुख्य भोजन के उचित उपयोग मे सहायता देना है। विशेप अवसरो पर भोजन के माथ आम-केला जैसे फलो का भी उपयोग होता है। वे भी अपने खुरदुरे भाग से विटामिन और खनिज तत्व देते हैं।

वर्षाऋतु के समय अथवा सर्दी के दिनो मे शाकाहारी छिलकेदार फलो को तलकर अपने भोजन मे परिवर्तन ला सकता है। तली हुई चीजे गर्मी देती है। मिर्च-पिसी हुई गोल मिर्च के साथ मे स्वादिष्ट भी हो जाती है और सारी चीजे सर्दी के मौसम मे वहुत अच्छी लगती है। पहलवान तले हुए फल ले सकता है। यद्यपि तले हुए फलो को पचाना कठिन होता है फिर भी सर्दी के महीनो मे यह जरूरी होता है चू कि पहलवान को अधिक उष्णता (केलोरीज) की आवश्यकता होती है। शारीरिक व्यायाम न करनेवाले लिपिक और विद्वान् और जो पूरे दिन वौद्धिक या वैठा काम करते है उनके लिए शाकाहार ही एक आदर्श है। वह वजन वढाने वाले धान को घटा सकता है। कद्दू-खीरा, हरी सब्जी, खीरा ककडी जैसी पानीवाली तरकारियो की मात्रा वढाई जा सकती है। अगर गाजर-चुकन्दर आदि को कोरा ही खा लिया जाता है तो वे विटामिन, पानी और खनिज तत्त्व देते है और इनको ली गई मात्रा निश्चित-रूप से पका लिए जाने से कम होती है। इसमे पूरक गुण तो होता है मगर उष्मिक गुण कम रहता है और इस प्रकार व्यक्ति का वजन नही वढता। अगर अतिरिक्त चीनी नही खाई जाती है, तो मधुमेह की वीमारी नही होती।

गन्ने के रस को वनावटी तरीको से शुद्ध किए जाने की प्रक्रिया मे रग निकाल कर उसे सफेद किया जाता है, तो विटामिन-वी तत्त्व भी निकल जाता है—परिणाम स्वरूप सफेद चीनी विटामिन-वी तत्त्वो से रहित हो जाती है। इसी के अनुग्रह से मधुमेह, आत के रास्ते का विशेप रूप से पेट का नासूर आदि की घटनाए उन्ही व्यक्तियो मे होती है जो शुद्ध सफेद चीनी और मिल के चावल का उपयोग करते हैं।

कोई पूछ सकता है कि शाकाहारी सिद्धान्त के लिए इतना प्रचार क्यो? मासाहारियो को अकेला क्यो नही छोड दिया जाता। यह सव दूसरो की सहायता करने के मानवी स्वभाव पर निर्भर है। यदि मैं किसी उपयोगी खनिज स्रोत की खोज करता हू, यदि मैं दूसरो को भागीदार वनाए विना उसका उपयोग करता हू तो ससार मेरी सराहना नही करेगा। मगर यदि लोगो को यह कहता हू कि 'मैंने जलदायी स्वास्थ्य प्राप्त कर लिया है और मैं इसके भागीदार वनने का स्वागत करता हू, वे प्रसन्न होगे। यदि उस वासतिक जल का मैं अकेला ही उपयोग कर लेता हू तो वे मुझे स्वार्थी कहने को विवश हो जाएगे। जवकि मैं अपने पडौसियो से जाकर कहू —"यह खनिज जल काम का है,आइए और लीजिए" वे प्रसन्न होगे और यह समाज को मेरी सेवा होगी। यह मानवता और सजातीय के प्रति प्यार ही है कि शाकाहारी भोजन के विपय मे मैंने कुछ पक्तियां लिखी हैं—न किसी धर्म-प्रचार के उत्साह से। ●

दो, मुक्तक

—साध्वी श्री चन्द्रकला
(आचार्य श्री तुलसी की शिष्या)

जीवन की सार्थकता समझे वह सच्चा इन्सान है,
खाकर जीते हैं सब, तप, किन्तु जीवन की शान है।
दास रसना का खो देता स्वास्थ्य धन अपना-
जो जीत सके मन को, जग मे कहलाता बलवान है।

खाद्य - संयम आत्म - विजय का द्योतक है,
रोग, शोक लोलुपता का अवरोधक है।
जीवन का मूल्य आकता पल - पल,
स्वाद - जयी साधक ही, सच्चा शोधक है॥

खजर चले किसी पै तडपते हैं हम 'अमीर'।
सारे जहा का दर्द, हमारे जिगर में हैं॥

× × ×

खेलते हैं जो मजलूमो की जानो से॥
हैवान अच्छे हैं ऐसे इन्सानो से॥

पापा डेडी

काका हाथरसी
[प्रख्यात हास्यकवि]

शिष्या को समझा रहे, त्रिगुणाचार्य त्रिशूल,
'डेडी' कहने की प्रथा सस्कृति के प्रतिकूल।
संस्कृति के प्रतिकूल, लाडली लडकी भोली,
करके नीची नजर, मन्द सप्तक मे बोली—
पापा कहने से, हमको मुश्किल आती है,
टकराते है होठ, लिपस्टिक हट जाती है।

●

रसगुल्ले सव खा गया और मिठाई छोड,
मम्मी से कहने लगा, मुन्ना नाक सिकोड।
मुन्ना नाक सिकोड, सख्त है लड्डू ऐसे,
तुम्ही बताओ मम्मी इनको तोडू कैसे ?
'तोड लिये तेरे पापा ने चार विधायक—
तुझसे लड्डू नही टूटता है नालायक !'

—सगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

●●

सम्भव है, कभी यह तर्क सही रहा हो कि किसी क्षेत्र विशेष के लोग प्रकृति द्वारा मासाहार के लिए विवश हैं। आज की विकासशील स्थिति मे जबकि यातायात के साधन हर स्थान

● रामेश्वरदयाल दुबे

लेखक एव पत्रकार

[राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा से सम्बन्ध]

प्राणिमात्र को भोजन की अपेक्षा रहती है। छोटे से छोटे कीडे-मकोड़े से लेकर वडे से वडे जीवधारी को, यहाँ तक कि सभी प्रकार की वनस्पति तक को अपने जीवन की रक्षा के लिये, अपनी वृद्धि के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। जीवन की क्रिया मे निरन्तर शक्ति का ह्रास होता रहता है। शरीर की इस शक्ति-क्षय की पूर्ति के लिये भोजन की आवश्यकता होती है। सम्पूर्ण जीवधारियो के वल तथा ओज का मूलाधार भोजन हुआ करता है। यदि प्राणी को भोजन की प्राप्ति न हो, तो उसकी जीवन-क्रिया ही शीघ्र समाप्त हो जावे अत. प्राणिमात्र के लिये भोजन का विशेष महत्व है।

वैज्ञानिको के अनुसार भोजन की आवश्यकता के तीन प्रधान कारण हैं—

क शरीर-निर्माण तथा तन्तु-क्षय की पूर्ति।

ख— जीवनोष्मा और जीवन-क्रिया का आधार।

ग—स्वास्थ्य की रक्षा और रोगो को दूर रखने की शक्ति का सचयन।

शरीर सम्बन्धी इन्ही आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये प्राणी ससार मे उपलब्ध सामग्री मे से अपने भोजन को प्राप्त करता है। देश-काल के अनुसार जब जिसे जो वस्तु भोजन के रूप मे आसानी से प्राप्त हो जाती है, वही उसका

पर हर एक चीज सुलभ बना सकते हैं व वैज्ञानिक प्रगति के बल पर किसी भी स्थान पर किसी क्षेत्र मे न उगने वाली चीज भी उपजाई जा सकती है, तब इस तर्क को परे रखकर मनुष्य बर्बरता त्यागे, यही अपेक्षा है।

□

मांसाहार : अनिवार्यता जैसी कोई बात नहीं

●

भोजन हो जाता है। इसका प्रमाण हमे इतिहास और भूगोल के ग्रन्थो से मिल जाता है। देश और काल का प्रभाव भोजन पर पडता ही है।

ध्रुवो के पास रहनेवाले लोगो को न गेहू मिल सकता है न चावल, ऐसे व्यक्तियो को मासाहारी बनने के लिये प्रकृति ने ही विवश कर दिया है।

भोजन पर काल का भी प्रभाव पडता है। अति प्राचीनकाल मे एक समय ऐसा भी था जब "मनुष्य" भी पशुतुल्य ही था। वह भी अन्य वन्य-पशुओ की तरह वन-बीहडो मे रहता था। पशु-पक्षियो को मार कर खाता था, वृक्षो के नीचे या कदराओ मे सो जाता था। मिल जाने पर वह फल-फूल भी खाता था। कृषि के विकास के बाद कृषि-युग प्रारम्भ हुआ और मनुष्य अन्न-आहार करने लगा।

आगे चलकर यह भी देखा गया कि पर्याप्त अन्न प्राप्त होने पर भी समाज मे कुछ लोग मास खाते ही रहे, और यह स्थिति आज भी है ही, जो दुर्भाग्य से बढ रही है।

भोजन का एक तत्त्व उसका स्वाद भी है। जीभ रस ग्रहण करती है और वह स्वाद को चखती है। जीभ यह भी निर्णय करती है कि कौन वस्तु खाने के योग्य है और कौन नही, किन्तु जिस प्रकार मनुष्य अपनी सभी इन्द्रियो का

दुरुपयोग करने लगा, उसने जीभ की स्वाद लेने की प्रवृत्ति को बहुत महत्त्व दे दिया, फल यह हुआ है कि आज शरीर के लिये उपयोगी न होनेवाला भोजन भी मात्र स्वाद के कारण खाया जाता है। अनेक देशो मे और विशेषत. भारत मे मास मात्र स्वाद के लिये ही खाया जाता है।

मनुष्य अपनी मानवता से नीचे न गिरे, अपने मानवीय गुणो का विकास कर ऊँचा उठे, इसी सद्-उद्देश्य से धर्मो की स्थापना हुई।

जीभ के दो काम हैं—बोलना और चखना। कटुवाणी को छोडकर जो मधुरभाषी बना,ससार मे उसकी विजय निश्चित है। उसी प्रकार जिसने अपनी जीभ पर शासन किया, स्वाद को छोडकर अस्वादव्रत लिया, उसकी भी ससार मे विजय निश्चित है।

नरसी मेहता ने भी इन्ही दो इन्द्रियो की महत्ता को ध्यान मे रखते हुए उनके सयम पर विशेष बल दिया है "वैष्णव जन तो तेणे कहिये" के प्रसिद्ध गीत मे एक पक्ति है—

"वाच, काछ मन निर्मल राखे।
धनि-धनि जननी तेनी रे॥"

वाच अर्थात् वाणी, जीभ, और काछ अर्थात् लगोटा। इन दोनो के सयम मे मानव का श्रेय समाया हुआ है।

जैन और बौद्ध इन दोनो धर्मो ने अहिंसा पर जोर दिया। जैन-धर्म ने तो "अहिंसा" को पराकाष्ठा पर पहुचा दिया। किसी भी वस्तु को एक सीमा से अधिक खीचने की आवश्यकता नही होती है। मनुष्य का जीवन व्यवस्थित किया जा सकता है, पर उसकी साधारण प्रवृत्ति पर एकात बधन लगाना सभव नहीं होता। इसी का यह परिणाम था कि अहिंसा पर बल देनेवाले बौद्ध धर्म के अनुयायी भी मासाहार करने लगे।

आगे चलकर तो "त्रिशुद्ध मांस" का विधान तक कर लिया गया। 'त्रिशुद्ध मास" के खाने मे पाप नही माना जाने लगा। त्रिशुद्ध मांस की व्याख्या इस प्रकार की गई—

१—मास खाने के लिये पशु-पक्षी को मारा न गया हो।

२—पशु-पक्षी को मारने मे अपनी राय न हो।

३—पशु-पक्षी के मारने मे अपनी सहायता न दी गई हो।

जिस मास मे ऊपर लिखी तीन बातें न हो, उसे शुद्ध मास की सज्ञा दी गई और उसे खाने मे कोई दोष नही माना गया।

स्वामी सत्यदेव ने अपनी लद्दाख-यात्रा के वर्णन मे एक बडा रोचक और करुण प्रसग दिया है। वे लिखते हैं—

"मैं पहाडी पथ से आगे बढ रहा था। ऊपर की ओर से दो लद्दाखी याक जानवरो पर ऊनी सामान लादे उतर रहे थे। उनके पास कुछ भेडे थी। दोनो लद्दाखी एक पेड की छाया मे बैठे आराम कर रहे थे। याक घास चरने लगे थे, परन्तु सामने जो दृश्य था, वह बडा करुण था।

एक भेड के हाथ पैर रस्सी से बाध दिये गये थे, ताकि वह उठ न सके। रस्सी से उसका मु ह बाध दिया गया था, नथुनो मे ऊन भर दी गई थी, ताकि वह नथुनो से या मु ह से सास न ले सके। ऐसी असहाय अवस्था मे वह भेड भूमि पर पडी-पडी तडफ रही थी, मृत्यु के निकट पहुच रही थी।

करुणावतार भगवान बुद्ध के अनुयायी वे दोनो लद्दाखी पेड की छाया मे आराम से बैठे हुये इस मधुर दृश्य को देख रहे थे और प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब भेड के प्राण पखेरू उड जावें, तो वे उसे काटकर उसका मास निकालकर, पकाकर खावें। इन बौद्ध मतावलम्बियो को इस बात का सतोप था कि भेड अपने आप मर रही है, उसको उन्होने नही मारा है। उन्होने हिंसा नही की है।"

कुछ वर्ष पहले की घटना है। भारत से कुछ कसाई लका ले जाये गये थे। कारण यह था कि लका में मास-भक्षण का रिवाज तो है, पर वह बौद्ध देश है, इसलिये पशुओ को कत्ल करनेवाले वहा मिलते नही है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा पर विशेष श्रद्धा रखनेवाले भी जीभ के स्वाद के लिये मासाहार के लिये मार्ग निकाल लेते हैं।

"मासाहार अधिक बलवर्द्धक है"—इससे अधिक भ्रातिपूर्ण और कोई धारणा नही। कर्नल कर्कब्राइड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "हमारा भोजन और विश्वशाँति" मे ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये है, जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह धारणा निन्तात निराधार है कि मास खाने से प्राणी बलवान बनता है। कर्नल ने अनेक पशुओ को पालकर उन्हें शाकाहारी और मासाहारी बनाकर तरह-तरह के प्रयोग किये हैं। अन्त मे वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि शाकाहारी मासाहारी से कम-जोर नही होता है।

इसी सम्बन्ध मे किसी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका मे एक सस्मरण पढने को मिला था जो इस प्रकार था—

"पेशवा के शासनकाल मे महाराष्ट्र मे बहुत से पहलवान तैयार किये जाते थे। ये पहलवान दूसरे प्रात के पहलवानो को पछाड देते थे, किन्तु जब कोई पजाबी पहलवान आता था तो वे उससे हार जाते थे। यह बात महा-

राष्ट्र के पहलवानो को बहुत खटकती थी । अत उनमे से एक पहलवान पजाब गया और उनके अधिक ताकतवर होने का पता लगाया । उसने देखा, यहा के पहलवान अधिकतर मासाहारी होते हैं । इसीलिये वे अधिक ताकतवर होते हैं । साथ ही उसने यह भी समझ लिया कि वे जल्दी थक जाते है । पता लगाकर वह महाराष्ट्र लौट आया । वाद मे जब कोई पहलवान आता, उसके साथ वे पहले जोर नही लगाते । पजावी पहलवानो की पहली धसान तेज होती थी । फिर थक जाते थे, अत अपनी तरकीव से महाराष्ट्र के पहलवान पहले उन्हे थका लेते थे । वाद मे उनको पछाड देते थे । अत पजावी पहलवान हारने लगे । फिर तो पाच साल वाद पजावी पहलवानो ने महाराष्ट्र मे आने का नाम छोड दिया, और कोई पजावी पहलवान महाराष्ट्र मे नही आया ।"

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह धारणा गलत ही है कि मासाहार से वल मे वृद्धि होती है । प्रयोग से यह भी सिद्ध हो चुका है कि मासाहार मनुष्य की तामसीवृत्ति वढती है । यह प्रत्यक्ष अनुभव की वात है कि जो मास-भोजन नही करते उनमे सात्विकता अधिक दिखाई देती है । कर्नल कर्कव्राइड ने अपनी प्रयोगशाला मे अनेक प्रयोग किये हैं । उन्होने अपनी पुस्तक मे लिखा है—"अनेक प्रयोगो के पश्चात् मैं इस निष्कर्प पर पहुँचा हू कि भोजन का प्राणी जीवन मे निर्णायक महत्त्व है । भोजन हमारे मन एव प्रवृत्तियो का निर्माता है । मैंने देखा है कि जिन जानवरो का भोजन मास रहता है, वे प्राय हिंसक और तामसी प्रकृति के होते है । जीवन के कोमल उदारभाव उनमे नहीं पनपते । विना भूख, विना जरूरत के भी वे हिंसा करते हैं । दूसरो को हानि पहुचाते हैं ।

इसके विपरीत शाकाहारी पशु-पक्षी स्वभाव से ही जीवन के कल्याणकर पक्ष की तरफ प्रवृत्त पाये जाते हैं । क्षमा, सहिष्णुता, करुणा, परदु खकातरता आदि गुण उनमे अनायास ही विकसित होते रहते हैं ।

जो वात पशु-पक्षियो के सम्वन्ध मे ऊपर कही गई है, वही वात मनुष्यो के वारे मे भी सत्य है । मासाहारी व्यक्ति प्राय तामसीवृत्ति के पाये जाते हैं। इस दृष्टि से भी मासाहार त्याज्य ही समझना चाहिये ।

किसी भी दृष्टि से मांसाहार का पक्ष सवल नही ठहरता है फिर भी अनेक देशो मे मासाहार प्रचलित है और कुछ देश तो सर्वथा आमिपभोजी ही हैं । जो देश पूर्णत मासाहार पर निर्भर हैं, उनकी भौगोलिक परिस्थितियो ने वहा के लोगो को मांसाहार करने पर विवश कर दिया है, फिर भी ऐसे देशो मे ऐसे लोग पाये जाते है जो पूर्णरूप से शाकाहारी है और शाकाहार पर विश्वास रखते हैं ।

कहते हैं हिटलर पक्का शाकाहारी था। विदेशो मे भी ऐसे व्यक्तियो की सख्या काफी है, जो शाकाहार के पक्षपाती है। खलीलजिब्रान ने एकवार कहा था—"हे ईश्वर, खरगोश को पेट मे भेजने के पहले खुद मुझे ही शेर के पेट मे भेज दे।"

भारत शस्य-श्यामलाभूमि है। विविध प्रकार के अन्नो की यहाँ कमी नही है। कन्द-मूल फल-फूल भी यहाँ पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त होते हैं। दूध-दही की भी कमी नही। इन सभी पदार्थों का उत्पादन यहाँ वढाया भी जा सकता है। भारत की भौगोलिक परिस्थितियाँ भी मासाहार करने के लिये विवश नही करती, तव कोई कारण नही कि हमारी प्रवृत्ति मासाहार की ओर हो। और अन्यत्र भी भोगोलिक वाधाएँ शेप नही रही। यातायात विकास से अव अन्य स्थान पर भी सभी चीज सुलभ की जा सकती है।

भारतीय सस्कृति सात्विक सस्कार प्राप्त करने की ओर प्रेरित करती है। हमारा प्रयत्न दानव नही, देव वनने का होता चाहिए, इसलिए तामसी भोजन-मास त्याज्य रहना ही चाहिये।

कहानी

वापसी की प्रतीक्षा में...

आत्मा महान् है चाहे वह मूक प्राणी की हो अथवा मनुष्य की, नेमि, तू उसी के त्राण के लिए, मनुष्य को उर्ध्वगति का मार्ग दिखाने ही तो आया है। घास-पात और फलो पर गुजारा करनेवाले वे पशु-पक्षी ही क्या श्रेष्ठ नहीं है—इन विवेकशील मनुष्यो की अपेक्षा ? जो दूसरो का प्राणहरण नहीं करते, किसी को यातना की गहरी दरारो मे नहीं धकेलते '

साध्यवेला का ज्योर्तिर्मय सूर्य स्वर्ण-थाल सा पश्चिमी आकाश पर लटका हुआ था और दूर क्षितिज पर खडी पहाडियो मे कण-कण उतर रहा था शनै शनै '। वातवरण सुरीली स्वर-लहरियो एव सुरमई सध्या मे पूर्णत पगा हुआ था। और समस्त नगर अपनी मनोरम आभा, सौन्दर्य-दीप्तियो और प्रकाशमयताओ की दिव्यताओ से लोगो को अभिभूत कर रहा था। आकाश ने पीतवसन पहन रखा था।

गर्वीलि यदुवशियो के जूथ रस-निमग्न नृत्यगान और विलामिताओ के विलास-प्रागण मे अठखेलियाँ कर रहे थे—आमोद-प्रमोद के भव्य आयोजनो से सम्पूर्ण मथुरा नगरी आलोडित हो रही थी ।

अभी-अभी वर वने नेमिनाथ ने विवाह की प्रथम रीति का समापन किया था—अभी-अभी कुछ समय पूर्व ही कुमारी राजुल ने लज्जावनित पलक-पाटलो को झुकाए हुए सौन्दर्यमयताओ से आवृत्त होकर मथर गति से चलते हुए तोरणद्वार पर आकर गर्वीले, उद्धत,

शौर्यमय एव पुरुपजनित सौन्दर्य के धनी सिहपुरुष नेमिनाथ के गले मे वरमाला डाली थी।

अभी-अभी मगलमय वाद्यो और गीत-लहरियो ने भ्रमरो से भरे विपुल स्वर्ण-कमलो-युक्त तडाग की गुजरितता को अपने अक से झोली भर-भरकर उलीचा था—उद्भापित किया था। "उसे पहचानती हो—वह जो उस गौर-वर्ण बलिष्ठ पुरुप से वात कर रहा है, जो कनखियो से कभी-कभी इधर-उधर देख लेता है—वही विपुल चचलता अपने मे समेटे—सावला-सा, नीलमणी सी आभावाला, सावला, मनमोहक, लुभावना और भोली-भाली मुखाकृतिवाला युवक! एक सर्वांगसुन्दरी कमनीय-रूपसी ने इगित करके कहा था।

"हाँ री अनुपम है उसका व्यक्तित्व, इच्छा होती है उसकी मनोहारिणी छवि निहारती ही रहू—कौन है वह?" दूसरी ने प्रत्युत्तर के स्वरो मे जिज्ञासा व्यक्त की थी।

"वह! अरे नही पहचानती उसे? यही तो है वसुदेव का आत्मज वासुदेव कृष्ण।"

"....लौट जाओ वासुदेव कृष्ण, लौट जाओ, एक प्राणी की पीडा के लिए कोटि-कोटि प्राणियो की पीड़ा को अधिक महत्व देता हूँ। मैं उन पीडा भरे प्राणियो के दुःख से एकाकार हो गया हूँ। मैं नहीं लौटूंगा ।

"हाँ !" आश्चर्यमती दूसरी वोली थी। अवश्य ही यह वर का कोई विशेप घनिष्ठ सबधी है, तभी तो जबसे वर के साथ ही है वह। और रूप-रग मे कैसा सुमेल भरा है दोनो का, इस भुवन-विजयी उद्धत युवक कृष्ण और वर मे जरा भी अन्तर पाना नितान्त कठिन सा लग रहा है।"

"यह वर का भाई ही जो है, चचेरा होने से क्या होता है, रक्त एक ही है दोनो का।"

"वर भी कितना अद्भुत है, अवश्य ही हमारी सखी राजुल ने पूर्व-जन्मो मे विलक्षण तप किये होगे तभी तो ऐसा ।"

"अवश्य यही वात है सखी! भाग्यवती है राजुल—ऐसा सर्वांग-सुन्दर विलक्षण आकाश जैसे वर्ण और सूर्याभा-सा वर मिलना कोई सहज वात है?"

वर को वारातियो सहित विवाह-मण्डप के सामनेवाले प्रसाद मे भिजवा दिया गया था, वाग्दान मे अभी समय था। मजुल और अनुपम था प्रासाद, सुन्दरता का एक-एक कोण, एक-एक आयाम, एक-एक छटा दर्शनीय थी प्रासाद

की, जैसे अपनी सपूर्णताओ सहित 'श्री' स्वय विराजित हो गई थी, प्रासाद के हर कण मे, अवर्णनीय।

"नेमि भ्रातर, तुमने निरखा भ्रातुजाया को ?" किसी यादव किशोर ने वर नेमिनाथ से कहा था।

नेमि चुप थे—हिमालय जैसी गभीरता वरण किये, उनके नेत्र आकाश की शून्य गहराइयो मे लय थे। उनके ओजस्वी मुख का स्निग्ध लावण्य और तेजोमयता को जैसे गभीरताओ ने आवृत्त कर दिया था।

एक झलक भर देखी थी नेमि ने, वहुत ही तटस्थ-भाव से, लगा था घना अधियारा, घनघोर रात्रि मे अकस्मात् विद्युत कौंधी हो और पलक झपकते ही आकाशी शून्यताओ की गहन-गुहाओ मे खो गई हो। उसकी सात्विकता भरी रूपश्री मौलश्री के पुष्पो-सी क्षणभर के लिए ही महकी थी, हवा के झोके के साथ सुगधियो का एक घना रेला वह आया हो और उसी गति से वह गया हो।

वरमाल पहनाते समय एक वार निमिप-मात्र के लिए उसने अपने नेत्रो की चिक उठाई थी और इतने क्षणिक से समय मे ही उसने वर की रूपाभा को उन द्वारो मे वद कर लिया था।

और नेमिनाथ ने उस पलभर मे ही जैसे उनमे प्रवाहित पवित्रता और भोलेपन के दर्शन कर लिये थे। मृग-शावक से चमकदार—भोलेपन से युक्त अवोध नेत्रो मे अपनत्व भरा था अगजग के लिये, कितना समर्पण भाव था उन नेत्रो मे! उसी क्षण उन नेत्रों की रमणीयता निरख कर नेमि की सुप्त स्मृतियो मे एक कोलाहल उभरा था और स्मृतियो मे वह मृग-शावक तिर आया था जिसकी माँ को एक यादव-किशोर ने मृगया मे मार डाला था।

ओह! नेमि का हृदय करुणा से आप्लावित हो गया था—अन्तर की गहराइयो मे जैसे किसी ने तीक्ष्ण अस्त्र से कुरेद दिया हो। आहत मृगी मर चुकी थी जिसे दास उठाकर प्रासाद के भीतरी पृष्ठभाग मे ले गये थे। वह मृग-शावक सिहर कर नेमि की गोद मे धँस गया था। जैसे उसे उस अक मे अभय की प्राप्ति हो गई हो। कैसी पवित्रता भरी पीडा चिलक रही थी उस कोमल, अवोध, भोले और सुकुमार मृग-शावक के नयनो मे— कैसा अपनत्व था! कैसी कृतज्ञता!

क्यो मार देते हैं ऐसे निरीह प्राणियो को ये लोग—क्यो अनाथ कर देते हैं इन अवोधो को? कहाँ विलुप्त हो जाती है इन मनुष्यो की विवेकमयी चेतना उस समय? कैसे झेल पाते हैं ये उस तडपन को? नेमि ने हाथ की

कटार को अगुली से छुलाकर देखा था। पीडा से हाय-सी निकल गई थी आह, कैसी दारुण पीडा होती है मनुष्य को जरा-सी चोट लग जाने पर—फिर इस क्रूरता और निरीहता से कैसे ये प्राणियो की हत्या करके मार डालते है ?

नेमि उद्विग्न से उठकर इधर-उधर टहलने लगे थे। हृदय पीडाओ से भर-भर आना चाह रहा था।

वे उठकर चुपचाप स्फटिक-सोपानो को पार करते हुए कौमुदी भवन मे चले गये थे। कौमुदी-भवन मे पूर्ण शान्ति उपलब्ध हो गई थी, उन्हे। आह, शान्ति ही आनन्द है, एकान्तता ही त्राण है। उन्होने मन ही मन दोहराया।

नीचे सभी रास-रग मे मत्त थे—किसी को किसी का भान नही था।

कोलाहल-सा सुनकर वे प्रासाद के पृष्ठ-भाग मे अवस्थित वातायन मे खडे हो गये, नीचे से पशुओ के मर्मान्तिक आर्त्तनाद का स्वर आ रहा था वहती हवाओ की शिविकाओ मे सवार होकर। कुमार नेमिनाथ को लगा, जैसे वे चीत्कार कर-करके पुकार रहे हो—कहाँ हो कहाँ हो तुम एक वार आकर देखो—एक वार हमारी पीडाओ को देखो—तुम्ही त्राण दे सकते हो परित्राता, तुम्ही मे परित्राण की शक्ति है।

"क्या हो रहा है नीचे, पशुओ के साथ ऐसा कौनसा घोर अनाचार हो रहा है जो वे इस वुरी तरह डकरा रहे हैं, जैसे उनके प्राण हरे जा रहे हो, अवश्य कोई वात है—चलकर पता लगाना चाहिए।"

नेमिनाथ उस क्रन्दन से सलग्न हो गये थे - जैसे प्राणी-मात्र का दुख उनका स्वय का दुख वनकर उभर आया था आत्मा की गहराईयो को चीरकर। जैसे वे प्राणी-मात्र मे उतर गये थे और सचराचर के दु.ख की गहराईयो मे उतर गये थे।

नेमि ने नेत्र वन्द कर लिये।

पशुओ पर आरे चल रहे थे—गर्दन कट जाने के पश्चात् भी पशु निरतर पैर पछाड रहे थे, तिलमिला रहे थे। रक्तकुण्ड छलछला रहे थे रक्तो से। मूक-पशुओ के निरीहनेत्रो मे से जिजीविषा—जीने की ललक स्पष्टत झलक रही थी। वडी निर्दयता से उनको वध-स्थान की ओर घसीटा जा रहा था—उनके प्राण घवरा रहे थे, इसीलिए वे जमीन मे पैर रोप रहे थे। कोई मरना नही चाहता। विवशता के कारण वे जोर-जोर से मर्मभेदी वाणी मे चिल्ला रहे थे—हतप्रभ खडे थे समस्त पशु और चारो ओर मृत्यु की भयावह विभीषिका नृत्य कर रही थी। भय और अक्रान्तता अधकार की तरह विखरी हुई थी।

भोले-भाले मृग-शावक, बैल, बकरे,भेडे'''जाने कितनी भाति के पशु थे—क्रूरता नग्न होकर ताण्डव मे व्यस्त थी।

"रोक दो रोक दो!" नेमि का स्वर शखनाद-सा उभरा।

जैसे एकाएक समस्त कार्यकलाप, समस्त कृत्य रुक गये उस ओजस्वी वाणी के प्रभाव से। नीरवता की अखण्ड शून्यताओ से भर गया समस्त वातावरण—समस्त प्राणियो की दृष्टि अकस्मात् ही उस दिव्यता की ओर स्थिर हो गई जिसमे से आदेश प्रसारित हुआ था।

यदुकुल के श्रेष्ठ युवक, नीलकातिमय नेमि को सबने वररूप मे सुशोभित अपने सम्मुख देखा—"यह सब क्या है, क्यो इस निर्दयता से इन निरीह पशुओ का हनन किया जा रहा है?"

"जी, प्रभु! आहार के निमित्त।"

"आहार के निमित्त?"

"हाँ, प्रभु! विवाहोपलक्ष मे बारात को भोज दिया जायगा उसी के निमित्त।"

"ओह! धिक्-धिक्—।" कुमार नेमिनाथ ने धिक्कार के स्वर मे कहा— छी, ऐसे नराधमकृत्य करके भी मनुष्य स्वय को मनुष्य कहने का दम्भ कैसे कर लेता है? प्राणियो का निरीहता से वध करके, उन्हे भक्ष्य बनाना क्या हिंस्र-पशु जैसा ही वीभत्स कृत्य नही है? तो फिर एक हिंसक-पशु और मानव मे अन्तर ही कहाँ रहा? तो फिर मानव श्रेष्ठ कहाँ हुआ? मनुष्य का यह श्रेष्ठता का दम्भ क्या थोथ से भरा हुआ नही है? क्या उस थोथ की नीव बालू की दीवार पर रखी हुई नही है?

आह! जिस शुभ मगलमय-कार्य के लिए मैं आया हू, क्या वह मगलमय परिणय-वेला इन निरपराध और मूक प्राणियो के वध से अपवित्र नही हो गई है? समाज के इन निरीह प्राणियो की प्राण-रक्षा के लिए तुझे कुछ करना होगा। नेमि—नेमि—तू अब तक कहाँ था? तू क्यो आया है इस धरा पर—इन मूक प्राणियो का वध होने देने के लिए?

नही! अतर मे अनुगूँज उभरी—जैसे सृष्टि के समस्त चराचर से तादात्म्य हो गया कुमार नेमि के अन्तर का। "आत्मा महान् है चाहे वह मूक प्राणी की हो अथवा मनुष्य की,नेमि तू उसी के त्राण के लिए,मनुष्य को उर्ध्वगति का मार्ग दिखाने ही तो आया है। घास-पात और फलो पर गुजारा करनेवाले वे पशुपक्षी ही क्या श्रेष्ठ नहीं है—इन विवेकशील मनुष्यो की अपेक्षा? जो दूसरो

का प्राण हरण नहीं करते, किसी को यातना की गहरी दरारो मे नहीं धकेलते। तुझे अपनी चर्या और उपदेश से मानव की श्रेष्ठता को उजागर करना होगा—मार्ग बताना होगा इन भटके हुए लोगो को—

और कब, जाने कब वर-वेश उतर गया। कब कुण्डल कानो मे अलग हुए, कब मुकुट, चिनाशुक के चमकीले आभामय वस्त्र, दमदमाते आभूपण पृथ्वी पर जड से पड गये और कब वह दिपदिपाती देह राशि भव्य दीपक की लौ सदृश दमक उठी, जो अब तक आवरणो मे थी। एकाएक आवरण धज्जीधज्जी होकर, तार-तार होकर जीर्ण वस्त्रो की भांति क्षत-विक्षत हो गये।

कब सुन्दर केश-राशियाँ पृथ्वी पर गिरकर उसके सौन्दर्य को बढाने लगी। सुन्दरता का मोह, गर्व, मिथ्याभिमान कहाँ विलुप्त हो गया -किन्ही अदृश्य दिशाओ मे जाने कब उठ गये वे धीर गम्भीर चरण—गिरनार की सौन्दर्यमय एकांतिक उपत्यकाओ की ओर ।

जैसे सबको होश आया। सरदार ने भागकर प्रासाद मे सूचना दी—प्रभु, भगवान नेमिनाथ ने मुनि-धर्म अगीकार कर लिया– लोग ढूँढ़ने निकल पड, हाहाकार मच गया चारो ओर दारुण दुख से दिशाएँ स्तब्ध हो गईं।

भुवन-मोहन त्रिखण्ड के अधिष्ठाता कृष्ण ने वापिस लौटकर कहा—अब वे चरण वापिस नही लौटेंगे—जब मनुष्य प्रकाश की ओर कदम बढा लेता है तो उसे लौटाना नितान्त असभव हो जाता है। मैंने काफी समझाया—भ्रातृ-जाया राजुल की दारुण-पीडा और क्लेश के बारे मे निवेदन किया। तो भ्रातर ने कहा—लौट जाओ वासुदेव कृष्ण, लौट जाओ, एक प्राणी की पीडा के लिए मैं कोटि कोटि प्राणियो की पीडा को अधिक महत्व देता हू। मैं उन पीडा भरे प्राणियो के दुख से एकाकार हो गया हू। मैं नही लौटूँगा। मनुष्य को कल्याण मार्ग दिखाने के लिए निकला हूँ - मार्ग मिलेगा तब लौटूँगा—अब मेरा उद्देश्य मेरा नही, सकल काल, सकल, भुवनो सकल लोगो का हो गया है—लौट जाओ—वासुदेव, लौट जाओ।

और मैं लौट आया हू वापसी की प्रतीक्षा मे ·

१५ ए० हार्निमन सर्कल,
फोर्ट, बम्बई–१

☐ काका कालेलकर

(प्रबुद्ध विचारक, गाधी दर्शन के प्रवक्ता)

आहार के प्रति योग्य जानकारी मिलने पर मनुष्य वही अपनायेगा जो श्रेष्ठ है। आहार भेद के कारण वनिस्वत इस बात के कि हम किसी का बहिष्कार करें, हमे उस पर अपनी उदारता, सहिष्णुता व विशालदृष्टि का प्रभाव डालना चाहिए। बुराई का विनाश उससे जूझकर अथवा उसके समक्ष अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर किया जा सकता है, उससे बचकर या भागकर नहीं। जो कुछ हमने त्यागा है उसके औचित्य को सिद्ध करने की क्षमता हम मे हो। अपने ही त्याग के प्रति सशकित रहना अपनी ही कमजोरी है।

आहार-भेद के कारण बहिष्कार क्यों?

※

फिर से कहता हू कि मुझे निरामिप आहार ही पसन्द है। हम लोगो ने (मैंने, मेरे पिताश्री ने, या उनके पिताजी ने), कभी मास नही खाया। पशु-पक्षी का माँस तो छोड दीजिये, मछलिया भी नही खायी है, न अण्डे खाये हैं। आइदा भी ऐसा आहार खाने की न इच्छा है, न सभावना। प्राणियो को मारकर उनका मास खाने की अपेक्षा मैं भूखे मर जाना पसन्द करूगा। यह है मेरी निष्ठा। इसीलिये आहार के बारे मे गहरा चिन्तन करके मैं जिस निर्णयो पर आया हू, लोगो के सामने रखना मेरा कर्तव्य मानता हू।

हमारे देश मे निरामिप आहार का प्रचार चद साधु लोग करते हैं। लेकिन उनका यह प्रचार ज्यादातर उन्ही की जाति मे चलता है। मामाहारी लोगो की मानो एक स्वतन्त्रजाति ही वन गयी। और निरामिप आहारी लोगो की जाति अलग। जो लोग माम नही खाते वे मासाहारी लोगो के घर मे कम जाते है। उनके घर पर गये और वहा अपने अनुकूल खाना मिला तो भी खायेंगे नही। और चन्द लोग मामाहारी लोगो के हाथ का परोसा हुआ खाना (चाहे जितना निर्दोप हो) नही खायेंगे। यह रिवाज इन दिनो कुछ ढीला हुआ होगा। लेकिन कही-कही आज भी जोरो से चलाया जाता है। यह परस्पर वहिष्कार के रिवाज के वारे मे ही आज मुझे खास लिखना हैं। और उसके मामाजिक दुष्परिणाम के वारे मे लोगो का ध्यान खीचना है।

मान लीजिए किसी मामाहारी खानदान के अन्दर शाकाहार का प्रचार करनेवाले एक जैन साधु पहुँच गये। दिन रात उनकी वातें सुनकर वह सारा खानदान निरामिपाहारी वन गया (निरामिपाहारी और शाकाहारी दोनो शव्दो मे वडा फर्क है सो हम जानते हैं। पश्चिम के शुद्ध शाकाहारी दूध-घी, दही-मक्खन और पनीर जैसी चीजें नही खायेंगे। क्योकि ये सारे पदार्थ वन-स्पति से नही पैदा होते। प्राणी के शरीर से पैदा होते हैं। लेकिन पता नही क्यो, पश्चिम के कई शाकाहारी अण्डे खाते हैं और कहते हैं वह मास नही है। जव हम कहते हैं कि अण्डे मे से प्राणी तैयार होता है। तव वे कहते है कि मुर्गा-मुर्गी के सहयोग के विना जो अण्डे पैदा होते हैं उसमे से तो प्राणी पैदा ही नही होता। उसे खाने मे कोई दोप नही है। वात मान ली। लेकिन उसी न्याय से गाय, भैंस और वकरी का दूध हम पीते हैं। उसमे शाकाहारियो का विरोध क्यो? लेकिन यह वात यही छोड देंगे। भारत मे हमारे पथ के लोग अपने को निरामिषाहारी कहते हैं, जिससे दुग्धाहार के लिये रास्ता खुला रहता है। तो भी हमारे इस लेख मे इस 'शाकाहार' और 'निरामिपाहार' में कोई भेद नही करेंगे। निरामिपाहार को ही हम आसानी के लिये शाकाहार कहेगे। शाक-दुग्धाहार ऐसा लम्वा-चौडा शव्द चलाने की आवश्यकता नही।)

अव एक मासाहारी खानदान शाकाहारी वन गया, उसकी जाति के दूसरे लोग तो मासाहारी है ही। अव हमारे जैनमुनि अपने नये शिष्य खानदान को कहेगे—

"देखो, अव तुम्हें मासाहारी के घर पर खाना नही चाहिये। वे गल्ती से तुम्हे मास की चीज खिलायेंगे, कभी-कभी तुम्हारे मन मे भी मासाहार की स्वादिष्ट चीज खाने की लालच होगी और तुम्हारे वाल-वच्चे, जो मासाहार

को पाप समझ नही सकते, औरो के देखादेखी मास खाने लगेंगे। इस वास्ते मासाहारी लोगो के घर पर खाना ही नही, जाना भी टालना चाहिए। तुम शाकाहारी जाति के वन गये। शाकाहारी के घर पर खाने मे एतराज नही है, क्योकि वहाँ खतरा नही है।

मासाहारी कुलपति (खानदान का वुजुर्ग) साधु महाराज की वात मान जायेगा और अपनी ही जाति के मासाहारी लोगो के घर का वहिष्कार करेगा। तव जाकर साधुओ को सन्तोष होगा। शाकाहारी-मासाहारी एक घर मे रहे, एक दूसरे का खाना-पीना देख ले इसमे खतरा ही है, इसी शिक्षा के वारे मे मुझे कुछ कहना है।

अगर उस कुलपति की जगह पर मैं होता तो साधुजी को कहता कि आपका दिया हुआ शाकाहार का व्रत मैंने झट नही लिया। आप वोलते गये, मैं सुनता गया इतना ही आप जानते है। अपने घर के सव लोगो को शाकाहारी वनाने मे मैंने काफी मेहनत की है। काम आसान नही था। मैं स्वय मास की चीज नही खाता था, घर के लोग खाते थे। उनको समझाते-समझाते मेरे धैर्य की परमावधि हो गयी। तव मैं सारे खानदान को शाकाहरी वना सका। अव यही पर मैं क्यो रुक जाऊँ? मेरे जाति के ही नही, किन्तु मेरे पहचान के अनेक मासाहारी लोगो के घर जा-जाकर शाकाहार का प्रचार करूगा। आपसे सुनी हुई सव दलीले उनके सामने रखूगा ही। लेकिन मेरे चिन्तन से और अनुभव से मुझे जो ज्ञान हुआ है सो आपके पास नही है। आपने कभी मास खाया ही नही, आप उसका न स्वाद जानते है और मासाहार के त्याग मे कितनी सकल्प-शक्ति काम मे लानी पडती है, इसका भी आपको खयाल नही है। और खानेवाले के साथ रहते जो धैर्य काम मे लाना पडता है उसका ख्याल आपको कहाँ से आयेगा?

मैं तो जरूर मासाहारी लोगो के घर पर जाता रहूगा। उनके घर पर जो चीजें मेरे काम की हो, वही खाऊगा। अत्यन्त जरूरी चीजे वहा न मिली तो अपने घर से ले जाऊगा। आपको डर है कि मासाहारी के सहवास मे से फिर से मास खाने की लालच मे आ जाऊगा। और मुझे उम्मीद है कि मैं कई मासाहारी लोगो को उनके साथ रहकर शाकाहारी वना सकूगा। आपने 'आत्मरक्षा' के लिए शाकाहारी लोगो की एक जाति वनायी है। उन्ही के वीच आप रहते है। मैं मासाहारी के वीच जाकर शाकाहार वढाऊँगा। मेरा आदर्श "कायर आत्मरक्षा" का नही किन्तु 'मिशनरी' प्रचार का है।

साधुजी मे इतना धैर्य नही था और डर तो था ही। कहने लगे "भैया,

तुम्हारी वात मैं समझ सकता हू। लेकिन लालच एक अद्‌भुत चीज है। किसी भी दिन तुमको गिरा देगी। इस वास्ते ऐसे वायु-मण्डल मे न रहना ही अच्छा।"

अव आत्मविश्वास से वोलने की वारी हमारे कुलपति मे आगयी। कहने लगे, "वहुत हुआ तो क्या होगा ? मैं कभी मास खाने को तैयार हो जाऊँगा। इतनी-सी वात है ना ? सो तो हम वश-परम्परा से मास खाते ही थे। फिर से खाने लगा तो उसमे आश्चर्य क्या ? लेकिन इसका अर्थ यही होगा कि 'आपके उपदेश मे मुझे वचाने की ताकत नही थी।' मैंने अपने घर के सव मासाहारियो के वीच अपना शाकाहार चलाया। आज जहाँ जाता हू वहाँ मासाहारी लोगो को अपनी नयी श्रद्धा समझाने का मौका मुझे मिलता है। दूसरो को जव मैं समझाता हू तव मेरी अपनी श्रद्धा नये-नये ढग से मजवूत होती है। और मेरे प्रयत्न से कई लोग पूरे अथवा आधे तैयार हुए है।

"अव वात रही घर के छोटे वच्चो की। वे शाकाहार मासाहार का भेद ही नही जानते। ऐसो को मासाहारी घर मैं ले जाना टालता हू। लेकिन कभी कभी ले जाना ही पडता है। मे उनको क्या खाना, क्या नही खाना समझाता हू। इस पर भी खा जायँ तो निभा लूँगा। लेकिन विशाल समाज से अपने को वहिष्कृत करके सुरक्षित रखने के सिद्धान्त को मैं मानने को तैयार नही हू।"

एक दिन कुलपति ने साधुजी को कहा—"स्वामीजी, हमारे पडौस मे एक ब्राह्मण खानदान रहता है। वहाँ घर की एक लडकी अच्छी वडी उम्र की विधवा हो गयी है। अव घर की दूसरी सारी स्त्रियाँ सौभाग्यवती है। अपने अपने पति के साथ रहती है। इस अकेली विधवा को वैधव्य धर्म-पालन करना पडता है। उसने अपने खानपान मे और रहनसहन मे पूरा फर्क कर डाला। लेकिन रहती है सवके साथ। उसी घर मे सव विधवाओ को रहने के लिए इन ब्राह्मणो ने कोई अलग घर नही वनाया। विधवा का जीवन है तो सन्यासी के जैसा। लेकिन समाज ने "सन्यासआश्रम" के जैसा 'विधवाश्रम' तो नही वनाया। विधवा अपने ढग से रहती है, सधवा अपने ढग से। इसी तरह समाज मे मासाहारी और शाकाहारी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार खाना खाते जायँ और एकत्र रहे इसमे हर्ज क्या है ?" कुलपति ने आगे वात चलायी, "स्वामीजी हमने सुना है कि गाधी जी के आश्रम मेस व जाति के और सव धर्म के लोग रहते थे। इनमे ब्रह्मचारी भी थे और गृहस्थाश्रमी भी थे। आश्रम की रसोई तो शाकाहारी वनती थी, लेकिन आश्रम मे आनेवाले मेहमानो को

मासाहार के विना काम नही चलता था तो उनके लिये इमाम साहव के घर से या कही से लाकर मासाहारी खाना दिया जाता था। आश्रम मे चद शादी-शुदा पुरुष और स्त्रिया ब्रह्मचर्य और चद मामूली गृहस्थाश्रम चलाकर रहते थे। दोनो के लिये आश्रम मे स्थान था। देखादेखी विगड जायेंगे, ऐसा डर किसी के मन मे नही था। सारा वायुमण्डल अगर अच्छा है तो देखादेखी सुधारने का मौका ही ज्यादा रहता है। रजोगुण मे जोश भले अधिक हो, सामर्थ्य और तेजस्विता सत्वगुण मे अधिक होती है। यही वोध गाधीजी के आश्रम ने सवको दे दिया। आहार और विहार,शाकाहार और ब्रह्मचर्य—दोनो मे गाधीजी के आश्रम मे जातिभेद नही था। इमसे हमे बोध लेना चाहिये।

जैन साधु इतना ही कह सके—मैं तो अपनी रूढि के अनुसार चलता आया हू। आज तुमने जो कहा, उसका असर मेरे मन पर हुआ है। उस पर मैं जरूर सोच लूगा। तुमने मुझसे वहुत लिया, अव तुमसे भी लेने का मेरा धर्म शायद खडा होगा। इतनी हिम्मत मुझ मे होनी चाहिये।

●●

□ सात्विकभोजी कम बीमार होते हैं,

राजसिकभोजी अधिक और

तामसिकभोजी बीमार न हो—

तो, उसका सौभाग्य समझना चाहिए।

उपवास और आहार

—मुनि धनराज (लाडनूं)
(आचार्य श्री तुलसी के विद्वान् शिष्य)

चिकित्सा-शास्त्र मे सूंठ को महौषध और लघन (उपवास) को परमौषध बताया है। अश्विनीकुमार ने वाग्भट्ट से पूछा—

"अभूमिजमनाकाशं पथ्य रसविवर्जितम्।
सम्मतं सर्वशास्त्राण वद वैद्य! किमौषधम्॥"

हे वैद्यराज! भूमि तथा आकाश मे पैदा न होकर रस-रहित होते हुए भी पथ्य और सकल शास्त्रो से सम्मत ऐसा कौनसा औषध है?

वाग्भट्ट ने प्रत्युत्तर की भाषा मे कहा—

पूर्वाचार्यै समाख्यात लघन परमौषधम्।

पूर्वाचार्यो से समर्थित ऐसा एक परमौषध लघन है।

जैनागम सहस्राब्दियो से उपवास पर बल देता आया है जिसका लक्ष्य अध्यात्म व आत्मशाति रहा है। अध्यात्म का सम्बन्ध शारीरिक स्वस्थता से भी है। शरीर आत्मा से भिन्न है, किन्तु शारीरिक स्वस्थता अध्यात्मवाद की सोपान है। "शरीरमाद्य खलु धर्म साधनम्।" उपवास से अनेकानेक व्याधियां जड सहित मिटी है और वर्तमान मे मिट रही हैं।

प्राकृतचिकित्सा विशेषज्ञ इसका प्रयोग विविध प्रकार के रोगियो पर करते हैं और वे इससे लाभान्वित होते हैं। रोगी का धैर्य कायम रखने के लिए कभी-कभी रस का प्रयोग जरूर करते हैं, किन्तु स्वल्पमात्रा मे ही। जो हजारो रुपयो का व्यय करके दवा से ऊब गये, वे इस परमौषध से स्वस्थ हुए हैं। दवा एक बार रोग को दबा सकती है, परन्तु लघन रोग को समूल मिटाकर शरीर को कचन बनाने मे सक्षम है। कइयो को वर्षों से उत्पीडित रोगो से आठ-दस दिन के लघन मे सदा के लिये पिण्ड छूट गया। चालीस-पचास वर्ष पूर्व तक ऋषि-मुनि साधारण सर्दी-जुकाम से लेकर बडे बडे असाध्य रोगो को उपवास के माध्यम से मिटाते थे। कष्टसाध्य होने से इसको अपनानेवाले थोडे हैं।

कुछ एक विचार विपरीत भी सुनने को मिलते हैं, उपवास एव तपस्या से अमुक के अमुक रोग होने से मृत्यु हो गई। रोग उपवास या तपस्या से नही, उनकी समाप्ति पर असयम, अविवेक व असावधानी से होता है। महर्षियो ने महीने मे एक-दो उपवास या एकासन की सलाह दी है। निश्चितरूप से नही कहा जा सकता कि रोग अधिक बढ़े हैं या डाक्टर? किन्तु खाने मे असयम और उपवास के प्रति अनुत्साह तो बढा ही है, जिसका फलित सामने है।

शुद्धि के लिये सप्ताह या पक्ष मे मशीनरी पुर्जों को विश्राम दिया जाता है। मकान, वर्तन,वस्त्र व शरीर की अशुद्धि अनेक कीटाणुओ को जन्म देती है फिर उदर-शुद्धि और आत्म-शुद्धि के अभाव मे विकार प्रवृद्धि कैसे नही होगी? मेरी दृष्टि से उपवास बाह्य-आभ्यन्तर सर्व रोगोपहारी परमौषध है।

जैसे स्वस्थता प्रिय है वैसे जिजीविषा भी प्रिय है। उपवास से मानव स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकता है, किन्तु चिरायु नही हो सकता अत आहार की अपेक्षा रहती है। आहार के तीन भेद हैं—ओजआहार, रोमआहार और कवलआहार। जीव को नया शरीर धारण करते समय मिलनेवाला आहार ओजआहार कहलाता है, शारीरिक रोम जिस हवा पानी को खीचते हैं उसे रोमआहार कहते हैं और मुँह से खाये जानेवाले का नाम कवलआहार है। चर्चनीय विषय कवलआहार सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदो से प्रख्यात है।

ऐतिहासिक अध्ययन से प्रतीत होता है—एक युग मे फल-फूलो की प्रचुरता से मानव पर्याप्तरूप से अपनी उदर-पूर्ति कर सकता था। इनके अभाव मे दूध का प्रयोग हुआ। फिर दलिया-खिचडी आदि तरल पदार्थ बनने लगे। आगे चलकर रोटी, पराँठे आदि सामने आए। वर्तमान मे भोजन सामग्री ने

जो विकास किया है वह प्रत्यक्ष है। वेदनीयकर्म ससारवर्ती सभी प्राणियो के हैं परन्तु एक कवि ने कहा है **सात्विकभोजी कम बीमार होते है, राजसिक भोजी अधिक और तामसिकभोजी बीमार न हो तो उनका सौभाग्य समझना चाहिए। चूँकि मिरच, मसाले, लहसुन, खोवा, बेसन तथा तली हुई चीजें दुष्पाच्य होने से रोगो की जड है।**
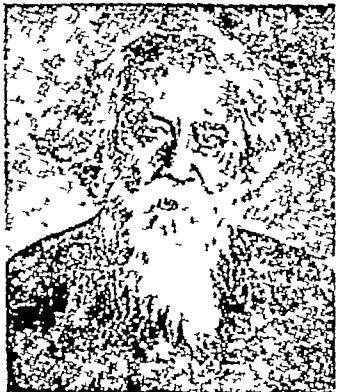
भूख से जितने नही मरते, उतने अपच,गरिष्ठ व अधिक खाने से मरते हैं। एक अमरीकन डाक्टर ने कहा—"लोग आधा भोजन अपने उदर के लिए करते हैं और आधा भोजन हमारे लिए करते हैं।" रोम का बादशाह नीरो अधिक खाने से मरा था। कुडरीक चारित्र से भ्रष्ट होकर जीभ के असयम से ढाई दिन मे कालग्रसित हो गया। आचार्य मगु की लोलुपता से दुर्गति हुई। गीता मे लिखा है "अधिक भोजी की वैकारिक वृद्धि से अकाल मौत होती है।"

एक पौराणिक कहानी है—एक बालक शादी के कारण बराबर तीन दिन निमत्रण मिलने पर भोजन करने जाता रहा। विविध स्वादु, गरिष्ठ पकवान मिलने से जीभ का सयम नही कर सका। मात्रा की अधिकता से हवा-पानी के लिए पर्याप्त जगह नही रही। अपच तथा अजीर्ण का शिकार हो गया। सयोग से चौथे दिन का और निमत्रण आ गया। उस दिन का भोजन पहले से भी उत्तम और गरिष्ठ एव स्वादिष्ट था। पेट मे दर्द और खाने की जगह न रहने से पितामह को कहा—

उर्ध्वं गच्छन्ति डकारा अधोवायुर्न गच्छति।
निमंत्रणमागतं द्वारे किं करोमि पितामह!"

पितामह ने कहा—मूर्ख! शरीर की क्या चिन्ता है, मिष्ठान्न कोई बार-बार थोडे ही मिलता है? पितामह के आग्रह से जाता है और खाने का संवरण नही करने से घर पहुँच भी नही पाया, मार्ग मे ही परलोक सिधार गया।

सखिया भी मात्रानुसार दवा मे दिया जाता है। अल्पमात्रा मे काजल भी श्रृगार का रूप होता है। परिमित सात्विक भोजन शरीर के लिए उपयोगी है, परन्तु कई तो अज्ञान से और कई लोलुपता से अधिक खाकर अपने शरीर के साथ अन्याय करते है। अन्नाभाव तथा गरीबी के कारण कइयो को दिन मे भरपेट एकबार भी भोजन नही मिल रहा है और कई लोग सुबह से लेकर रात्रि तक मुँह चलाते रहते है। उन षड्रसो को पचाने के लिए कई माध्यम अपनाने पडते हैं, इस वैषम्य दावानल से जन-जन का हृदय झुलस रहा है। वर्तमान मे दुष्काल की काली छाया चारो ओर फैली हुई है। कब क्या हो कुछ

रवीन्द्रनाथ टैगोर

कवि, कलाकार, दार्शनिक, सास्कृतिक, शिक्षाशास्त्री। भारत मे ही नही, सम्पूर्ण विश्व से जुडे हुए थे

करुणा...

१८९४ मे अपनी 'ग्लिम्प्सेज आफ बगाल लेटर्स' पुस्तक मे उन्होंने लिखा है—"मैं नदी की ओर देख रहा था, अचानक मैंने देखा—बहुत गहरे विक्षोभ से भरी एक भद्दी-सी चिडिया पानी मे सामने के किनारे का रास्ता बना रही थी, मैंने मालूम किया वह एक पालतू मुर्गी थी जो कि छोटी किश्ती मे त्रासदायक भय से मुक्त होने तख्ते पर से कूद गई थी और अब उन्मत्त होकर पार जाने का यत्न कर रही थी। वह लगभग किनारे पर पहुच गई थी, तभी अपने निर्दयी पीछा करने वाले के पजो मे दबोच ली गई। गर्दन से पकड कर प्रसन्नता के साथ वापिस लाई गई। मैंने रसोइये से कहा—मैं भोजन मे कोई मांस नही लूँगा। हम मास निगल जाते हैं, क्योकि निर्दय और पापपूर्ण कार्य जो हम करते हैं, उस पर सोचते नही। अनेक दुष्कर्म ऐसे है जो स्वय मनुष्य द्वारा निर्मित है जिसका अन्याय उन्हे अपने स्वभाव, रिवाज और परम्परा से भिन्न करता है।"

(शेष पृष्ठ ६८ का)

कहा नही जा सकता। राज्य सरकारें कही अन्न बचाओ आन्दोलन चला रही है, कही उपवास एकासन पर बल दे रही है, और कही वृहद्‌भोज, जूठन पर रोक लगा रही है, किन्तु विषय गभीर और चिन्तनीय होने से जन-जन की विवेक-जागृति आवश्यक है।

भूख सबको सताती है। वैषम्य और अन्न का दुरुपयोग सहिष्णुता से बाहर का विषय है। उपवास करने मे असमर्थ होने पर यदि परिमितता, अल्पता और सात्विकता का ध्यान रखा जाय तो स्वास्थ्यलाभ व साथ ही आत्मलाभ मिलेगा।

सकलित :

० ० अण्डे ० ०

कितने घातक : कितने भयानक

●

डी० डी० टी० विष :

१८ माह के परीक्षण के वाद ३० प्रतिशत अण्डो मे डी० डी० टी० पाया गया ।

—कृषि विभाग, फ्लोरिडा 'अमेरिका' हेल्थ वुलेटिन, अक्टूबर ६७

हृदय रोग :

एक अण्डे मे लगभग ४ ग्रेन कोलेस्टरोल की मात्रा पाई जाती है। कोलेस्टरोल की इतनी अधिक मात्रा से अण्डे दिल की बीमारी, हाई ब्लडप्रेशर, गुर्दों के रोग, पित्त की थैली मे पथरी आदि रोगो को पैदा करते है ।

—डा० रौबर्ट ग्रांस, प्रो० इरविंग डेविडसन

पेट की सड़न :

अण्डो मे कार्बोहाइड्रेट्स विलकुल नही होते और कैल्शियम भी वहुत कम होता है । अत इनसे पेट मे सडन पैदा होती है ।

—डा० इ० वी०, मेक्कालम-न्यूअर नालेज आफ न्यूट्रिशन

एग्जिमा और लकवा ·

अण्डे की सफेदी मे एवीडिन नामक भयानक तत्त्व होता है, जो एग्जिमा पैदा करता है । जिन जानवरो को अण्डे की सफेदी खिलाई गई उनको लकवा मार गया और चमडी सूज गई ।

—डा० आर० जे० विलियम्स, डा० रौबर्टग्रास

टी० वी० और पेचिस .

मुर्गियो मे वहुत-सी वीमारियाँ होती है, अण्डे उन वीमारियो को विशेपतया टी० वी०, पेचिश आदि को अपने साथ ले जाते हैं और इनको खानेवालो मे पैदा करते है ।

— डा० रौबर्टग्रांस

●●

लियो तालस्ताय भी एक ऐसी प्रतिमा है, जिसे एक ही श्रेणी मे आवद्ध नहीं किया जा सकता। उपन्यासकार, मानवतावादी, शाति का योद्धा, रूसी-दार्शनिक, पूरे संसार मे उसका नाम एक घरेलू शब्द है। तालस्ताय रोटी-दलिया-फल और शाक-सब्जी पर बहुत सादगी से रहे।

लियो तालस्ताय : 'सस्मरण और निबन्ध' के कुछ अंश

पवित्र जीवन की ओर यदि व्यक्ति की आकाक्षाएँ गम्भीर हैं—यदि वह ईमानदारी और लगन से पवित्र जीवन प्राप्त करता है, आत्म-त्याग का पहला कार्य मास-भोजन का होता है, ऐसे भोजन से उत्पन्न भावनाओ के उत्तेजन का उल्लेख ही नही करता है, क्योकि यह साफ तौर पर अनैतिक है, इसमे नैतिक भावना के विपरीत आचरण होता है और यह इसी कारण हत्या और लालच कहलाता है।

"यह भयावह है। पशुओ की मृत्यु और पीडा ही भयावह नही है, पर सत्य यह है कि व्यक्ति ऐसा करने की बिना किसी आवश्यकता के ही जीवित प्राणियो के लिए दया और सहानुभूति की अपनी भावना को कुचलता है और स्वय के प्रति हिंसा करता है कि वह निर्दय भी हो सकता है। नैतिक जीवन का पहला तत्व आत्मत्याग है।"

तालस्ताय अपनी पुस्तक "सस्मरण और निबध" मे लिखते हैं—

"कुछ समय पूर्व मैंने तुला के एक कसाई-खाने को देखने और अपने एक विनम्र और दयालु मित्र से मिलने का निर्णय किया, मैंने उन्हे अपने साथ

चलने का निमन्त्रण दिया। मेरे मित्र ने अस्वीकार कर दिया, उसने मुझसे कहा—"वह पशुओ का कत्ल होते हुए देखना सहन नही कर सकता, विशेष ध्यान की बात यह है कि वह खिलाडी है और स्वय पशुओ और पक्षियो को मारता है।"

एक सुसस्कृत महिला पशुओ के लोथडो की हत्या कर देगी, इस विश्वास के साथ कि वह उचित कर रही है—इसी समय दो परस्पर विरोधी प्रस्तावो को स्थापित करती हुई—

"प्रथम वह कि यह इतनी कोमल है कि मात्र वनस्पति भोजन पर नही रह सकती और दूसरा यह कि वह इतनी सवेदनशील है कि पशुओ को पीडा का दण्ड देने मे ही नही, वरन् पीडा का दृश्य सहन करने मे असमर्थ रहती है"।

"आन्दोलन की प्रगति उनके आनन्द का विशेष कारण होना चाहिए जिनका जीवन 'धरती पर ईश्वर का राज्य लाने के प्रयत्नो मे समर्पित है क्योकि शाकाहारी सिद्धान्त अपने आप मे इस दिशा का महत्वपूर्ण कदम नही वरन् यह एक सकेत है कि नैतिक पूर्णता की, मनुष्यमात्र की आकाक्षा गभीर और ईमानदार है।"

●

● ————————

- संस्कृति का प्रथम आदेश है—तुम निर्दयी नहीं होओगे।
- सुसंस्कृत व्यक्ति जिसकी उपेक्षा नहीं कर सकता, वह निर्दयता है।
- किसी भी प्रकार की निर्दयता, वह औचित्यपूर्ण हो अथवा अनौचित्यपूर्ण, विकृत लालसा की हो अथवा अनुशासनिक, मानसिक हो अथवा शारीरिक, घृणा की जाने की वस्तु है।

—जॉनकापर पायज

———————— ●

MEMBER

·· आहार और अनाहार का सन्तुलन करने पर ही आहार अधिक उपयोगी बनता है। कोरा आहार, आहार की उपयोगिता को कम करता है। उपवास का मूल्य केवल आध्यात्मिक नहीं है, शारीरिक भी है। काम को जितनी विश्राम की अपेक्षा है, उतनी ही आहार को अनाहार की अपेक्षा है।

आहार : चार मानदण्ड

०

—मुनि नथमल

(आचार्य श्री तुलसी के विद्वान् शिष्य—
विविध दर्शनो के ज्ञाता, उद्‌भट विचारक एव लेखक)

०

१—वस्तु का लक्षण है, होना और होने का लक्षण है क्रिया करना। जो क्रियाशील नही होता वह सत् नही होता। सत् वह होता है जिसमे क्रिया होती है और निरन्तर होती है। कुछ वस्तुओ मे स्वाभाविक क्रिया होती है और कुछ वस्तुओ मे स्वाभाविक और सयोगिक दोनो प्रकार की क्रिया होती है। क्रिया का स्रोत है शक्ति और शक्ति का स्रोत है आहार।

हमारे शरीर-तत्र मे दो मुख्य अवयव हैं—मस्तिष्क और पाचन-सस्थान। मस्तिष्क ज्ञानकेन्द्र और क्रियाकेन्द्र है। वह शरीर की प्रवृत्तियो पर नियत्रण करता है, उसका सचालन करता है। पाचन-सस्थान आहार का परिपाक कर उसका शरीर के साथ सात्म्य करता है।

मस्तिष्क और शरीर दोनो की क्रिया प्राण-ऊर्जा या विद्युत-ऊर्जा द्वारा होती है। मस्तिष्क को अपनी क्रिया करने के लिए २० वाट विद्युत-ऊर्जा चाहिए। उसकी पूर्ति ग्लूकोज और आक्सीजन इन दो स्रोतो से होती है। परिमित भोजन पाचन-सस्थान के हिस्से मे आनेवाली विद्युत-ऊर्जा से काम चला लेता है। अतिरिक्त भोजन अतिरिक्त विद्युत-ऊर्जा का उपयोग करता है। पाचन-सस्थान के द्वारा अतिरिक्त विद्युत्-ऊर्जा का उपयोग किए जाने पर मस्तिष्क को मिलनेवाली विद्युत्-ऊर्जा की मात्रा कम हो जाती है। फलत पेट की क्रिया प्रधान और मस्तिष्क की क्रिया गौण हो जाती है। आदमी अधिक आहारवान और कम बुद्धिमान हो जाता है। क्या कोई भी समझदार इसे पसन्द करेगा ?

२—आहार के बारे मे हमारा दृष्टिकोण बहुत ही सीमित है। परिमित भोजन आहार का एक मानदण्ड है। किन्तु वही एकमात्र नही है। सतुलित भोजन का भी अपना महत्व है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कुछ भी खाकर शरीर की अपेक्षा पूरी कर लेते हैं। सब वैसे नही होते। जिनकी प्राण-ऊर्जा सशक्त होती है, जो अपने अन्त स्रावो पर पूर्ण अधिकार कर लेते हैं। उनमे रासायनिक परिवर्तन की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। साधारण आदमी ऐसा नही कर पाते। वे सतुलित भोजन के अभाव मे शरीर और मन दोनो दृष्टियो से रुग्ण हो जाते हैं।

शरीरशास्त्र के अनुसार क्रोध, आवेश, स्वभाव का चिडचिडापन, विक्षोभ-ये शरीर के रोग हैं। यूरिक एसिड की मात्रा बढ जाने से ये उत्पन्न होते हैं। यह मात्रा "एजाइमें" (एक रासायनिक पदार्थ) की मात्रा घट जाने से बढती है और उसकी मात्रा की पूर्ति होते ही यूरिक एसिड की मात्रा घट जाती है। मनुष्य का स्वभाव बदल जाता है—क्रोध हसी मे बदल जाता है। क्रोध के निमित्तो की स्वीकृति कर्मवाद के सिद्धान्त मे बाधक नही है।

३—आहार वही नही है, जो इस मुख से खाते हैं। मुख्य आहार है प्राण-वायु। उसमे पोषण की क्षमता है इसलिए वह आहार है और वह आहार के परिपाक की शृखला का एक तत्व है इसलिए आहार का आहार है। पूरा श्वास या दीर्घ श्वास लेनेवाला व्यक्ति फुफ्फुस के विष को बाहर निकालता है और रक्त को विशुद्ध बनाता है। साथ-साथ वह शारीरिक और मानसिक क्षमताओ को भी विकसित करता है। पुराने जमाने में योग के आचार्यों ने इस विषय का साक्षात् किया था और उन्होंने श्वास की अनेक पद्धतियाँ विकसित की थी। आज वे रूढिरूप मे चल रही है। वैज्ञानिक पद्धति भी जानकारी खो जाने पर रूढि बन जाती है। आज के वैज्ञानिक इस विषय मे खोज कर रहे

हैं। वे श्वास के विभिन्न प्रयोगो द्वारा अनेक रोगो की चिकित्सा मे सफल हुए है। तापमान का सतुलन और शक्ति ये दो आहार के प्रयोजन हैं। प्राणवायु दोनो की पूर्ति करती है।

४—आहार का चौथा मानदण्ड है—अनाहार। आहार और अनाहार का सन्तुलन करने पर ही आहार अधिक उपयोगी बनता है। कोरा आहार, आहार की उपयोगिता को कम करता है। उपवास का मूल्य केवल आध्यात्मिक नही है, शारीरिक भी है। काम को जितनी विश्राम की अपेक्षा है, उतनी ही आहार को अनाहार की अपेक्षा है। ●

सन्तुलित आहार :

- ईरान के बादशाह "बाह्मन" ने अपने राज्य के प्रतिष्ठित, श्रेष्ठ और अनुभवी हकीम से पूछा—"आदमी को कितना खाना चाहिए ?"
  हकीम ने उत्तर दिया—"३९ तोला।"
  बादशाह ने प्रश्न किया—"इससे क्या होगा ?"
  हकीम ने सहजता से मुस्कराते हुए कहा—"इससे अधिक भोजन करने का अर्थ है—अन्न को व्यर्थ खोना और भार ढोना।"

× × ×

- महर्षि रानडे को कलमी आमो का शौक था। किसी सज्जन ने आम भेजे। पत्नी ने आम छीलकर उनके सामने तश्तरी मे रखा। रानडे ने उसमे से दो चार टुकडे उठाकर खाये और अपने काम मे लग गये। पत्नी काम निबटा कर आई और देखा—आम तो वैसे ही पडे है। पूछा—क्या आपने आम नही खाए ?
  रानडे ने कहा—"खा लिये।"
  पत्नी ने कहा—'कहा खाये ? वे सब ऐसे ही पडे है, आपको शौक है, खा लीजिए।"
  रानडे ने कहा--"शौक है तो क्या एक ही चीज से पेट भर लेना चाहिए और भी बहुत-सी चीजे हैं। शौक होने पर भी आत्म-सयम और मात्रा का विवेक रखना कितना कठिन होता है ?"
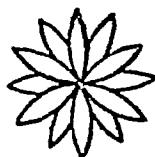
··· नहीं मनु ! यज्ञ का अर्थ बलि नहीं है। यज्ञ रचना है,उत्पादक
कर्म है। गण के लिए गण द्वारा उत्पादन। लेकिन
विस्तार और निर्माण की एषणा लिये चल ही दिया
मनु यज्ञ मे वलि देकर मृगछौने की। पश्चाताप
करता कुछ और सजोने की आस्था लिये
मनु लौट आया। मनु की ही तरह
किसी भी क्षण लौट आएगा
मनु का मानव श्रद्धा
की बांहो मे

अकथा

मनुज लौटेगा

—हरीश भादानी
[नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर, सुमधुर गीतकार, वातायन (बीकानेर) के सम्पादक]

एक अ-कथा, व्यक्ति की नही, घटना की नही, अ-कथा-यात्रा की, धरती की अर्थात् एक हिस्सा भूगोल की, जिसका एक और नाम है देश।

विकास की अनवरत प्रक्रिया मे भौतिक-आधिभौतिक और वैचारिक-कर्मिक आरोह-अवरोह, ऊहापोह और आकार-प्रकार से कवीले से समाज का, समाज से राज्य-साम्राज्य का, लोगो की वर्तमान भूत-भविष्य के प्रति दृष्टि का और परिणामस्वरूप सभ्यता-सस्कृति का रचाव-विनाश और पुन रचाव। न नही आदम और ईव से, नूह की नाव से, और न डार्विन के चिपाजी से और न जड-चेतन के द्वन्द्व से—मनु से ही पहचान लें इस यात्रा को और पहचान लिए जाने की बडी-बडी तख्तियाँ गडी हुई हैं—जम्बूद्वीप, भरत-खण्ड, भारत, हिन्दुस्तान—एक और बौद्धिक-दार्शनिक शब्द-पूर्व।

प्रत्येक नाम की अपनी विशिष्टता-कथा-अन्तर्कथा-गाठ-दर-गाठ का सिल-सिला, कितने मोहासन्न हैं हम, बाध रखा है इसे अपने से कही टूट-छूट गया तो—पता नही क्या हो—इस धरती का। इस सभ्यता का, सस्कृति का, प्रजापति की व्यवस्था का—जहाँ-जहाँ भी पपडी उतरी थेगडा लगा दिया है। थेगडो-थेगडो से विना मूल को छुए नव्यतर हो जाएगी एक दिन।

और द्रष्टा पूर्व जैसा कल था वैसा ही आज! देखता रहा है राग और छद टूटने पर विकराल हो गई प्रकृति को, समदर के अतलान्त मे समाधिस्थ हो गई देवो की व्यवस्था को, अवशेप-व भटकते मनु को, पहाड की खोह मे अटक गई नाव को, गधर्वो की सम्पन्नता-जडता से ऊबकर कुछ और तलाशती श्रद्धा को, श्रद्धा की वाणी हाथ-साहचर्य से सधते मनु को अपने भीतर समोता रहा है पूर्व। सास-मास जीता रहा है यह मनु-श्रद्धा के रचाव मनुष्य को, असुरो के पौरोहत्य से मोहित और विस्तार की लालसा उगाता हुआ मनु को, उसके सारस्वत प्रदेश को, ऋचाओ के रचाव-ज्ञान को, यज्ञो-तपो को, रावण के ज्ञान-विज्ञान को,वाल्मीकि और मर्यादाओ के राम वनवासिन सीता को, वश कलह के महाभारत को,चार वर्णों की व्यवस्था को दार्शनिक-धार्मिक विस्तार को, जडता के समानान्तर गतिशीलता के पुनुरुत्थान मे महावीर और गौतम को! उसके अन्तर मे उतरता गया है—आर्यो-अनार्यो-हूण-शको का अस्तित्व के लिए या फिर सुविधा के विस्तार के लिए हुआ युद्ध और सामजस्य,दरारो पडी एकता, मुगलो की वादशाहत,दीन-ए-इलाही,गोरी तिजारत का राज्य, आजादी के लिए गुलामी की जद्दोजहद और लहू की लकीर से वांट दिया गया देश! कन्याकुमारी की शिला,से गौरीशकर शिखर से,ब्रह्मपुत्र-सतलुज-झेलम के मुहाने से उठते ही रहे है इस पूरव के पाँव मनु के मनुष्य के एक-एक चरण के साथ!। और उसी अतरगता-रागात्मकता से जिए जा रहा है यह पूरब-आजादी की चौथाई शताब्दी की प्रतिक्षण वढती उम्र के आदमी के लिए किए जा रहे निर्माण को, नागार्जुनम्-भाखडा को, भिलाई-इस्पातनगर को, गरीवी हटाओ की योजनाओ-राजनीति को, समता के गुम्वदो-मीनारो और विपमता के असीम विस्तार को, गणराज्य को, स्वयभू भगवानो और उनकी तटस्थता वैदेहिकता को, उपदेशो-योगाभ्यासो को, हाथ-पाँव से दूर उनके मुँह मे गीता-वेद-कुरान-त्रिपटिको को और ढोती ही जा रही है नीली इस पूर्व की देह अदृश्य पर भयावह मर्मान्तिक पश्चिम की आर्थिक-सांस्कृतिक भार से। मगर आदमी न देख रहा है, न ही सुन रहा है—डूबा हुआ है—हरे कृष्णा-हरे कृष्णा' या हू-या हू के कीर्तन मे, खुशफहम है शेखचिल्ली स्वय को ज्ञान-विज्ञान का आदि उद्गम

मानकर, यान्त्रिकता मे डूब रहे शहर को बचाने की चिन्ता मे हाथ उठाकर भेज रहा है वीतरागी आत्मिक शान्ति के लिए एकान्त मे, करवा रहा है अनाज के लिए अनाज का होम, नक्षत्रो की पूजा—इस तरह भागता है यथार्थ से, रगता रहता है। अकर्मण्यता से भीतर पठरागई अपनी हीनता, परावलम्बन की हथेली पर बैठा निपोरता है स्वावलम्बन की खीसे, चीखता ही रहता है कभी राजनीति तो कभी धर्म तो कभी याचक और अहम् की जुबान।

खामोश पूरब ! कहा से लाए जबान, वाणी ! किनके लिए कैसे और किन सफो पर लिखे अपनी व्यथा और अपने परिवेश अपने आदमी की हकीकत, यातना ही यातना खिची हुई है उसके चेहरे पर—आख झुका कर देख लेता है कभी-कभी सामने फैले समदर की सतह पर—एक कथा नही—एक अ-कथा का आरम्भ हिलक आता है उसके सामने गधर्वी, काम की पुत्री कामायनी, श्रद्धा की बाहो मे प्रलय का शेपाश मनु, बियाबान मे रचाव, असुर पुरोहित का आतिथ्य, मनु-श्रद्धा मानव का छोटा-सा ससार और निर्माण विस्तार के लिए लालायित मनु, दैवो की पुरातन परम्परा को पुन जीवित करता हुआ मनु ! मगर यज्ञ की पूर्ववत प्रक्रिया पर दुखी श्रद्धा—"नही मनु ! नही, तुम यज्ञ मे बलि नही दोगे, यह जीवन है, इसे जीने का अधिकार है, तुम इससे भिन्न तो हो मगर हो जीवन ही, इसका जीवन मत छीनो, मनु !"

"श्रद्धा ! मैं देव हू और यज्ञ देवो की पुरातन गरिमामय परम्परा है, पशु-बलि यज्ञ-प्रक्रिया का अनिवार्य अग, पशु-बलि से पितृ प्रसन्न होगे, और निर्माण का, विस्तार का आशीर्वाद देंगे।"

"नही मनु ! यज्ञ का अर्थ बलि नही है, यज्ञ-रचना है—उत्पादक-कर्म है—गण के लिए गण द्वारा उत्पादन सामूहिक जीवन—व्यवस्था, जीने के अधिकार की रक्षा, जीवन का जीवन के प्रति सम्मान उत्पादन-सबके लिए सबमे समान वितरण, उत्पादन पर किसी का एकाधिकार नही, सग्रह नही—और यह मृग-छौना—कितना कोमल, कितना निरीह, निर्दोष—तुम्हारे मानव जैसा ही प्रिय, सलोना,चचल,एक गतिशील जीवन,नही मनु ! नही,इसकी बलि न दो !"

मगर विस्तार और निर्माण की एषणा—अह लिए चल ही दिया मनु यज्ञ मे बलि देकर, मृगछौने की लहू के छीटो से भीगी—बिलखती रह गई श्रद्धा !

मनु की यात्रा—सारस्वत प्रदेश, निर्माण-समाज का विधि-विधान का, सस्कृति का, सभ्यता का, देवो की पुन सस्कारित परम्पराओ का, नया नाम—आर्यों के राज्य समाज का मनु-ईड़ा का सयोग-मनु—अब मनु ही नही प्रजा-

पति मनु पर प्रजापति मनु और ईडा का संयोग ! नही, नही असम्भव-असम्भव-जनावेश-इतने बडे निर्माण, प्रजा पालन सुखो के विस्तार के बाद ईडा से सयोग पर इतना आक्रोश विद्रोह करता है मनु और फिर घायल पदच्युत मनु ! एक बार पुन श्रद्धा की बाहो मे मनु । परिणामो को भूलता, पश्चात्ताप करता, कुछ और कुछ और सजोने की आस्था लेता मनु—सयत-सृजन के लिए उद्विग्न मनु को सहलाती श्रद्धा ! समदर की सतह से आख उठा कर सामने देखने लगता है पूरव—एक आतुरता-एक तलाश हिलकती है—मनु की ही तरह किसी भी क्षण लौट आएगा मनु का मानव अपनी श्रद्धा की बाहो मे, भूल जाएगा अपने सारे परिणाम—पश्चाताप और दोनो मिलकर करेंगे मनु के एक और मानव का रचाव, मनु आलापेगा राग, रचेगा ऋचाए-छद, करेगा यज्ञ—

गण द्वारा उपार्जन-अर्जन गण के लिए
गण द्वारा समान वितरण, गण के लिए
जीवन की रक्षा, जीवन से

●

ससार के महान गणितज्ञ और भौतिक-विद् आइस्टीन "वेजिटेरियन वाच टावर" के सपादक को प्रेषित २७ दिसम्बर ३० के अपने पत्र मे लिखते हैं —

"हालाकि बाह्य परिस्थितिया शाकाहारी पथ्य के कठोर निर्वाह करने मे मुझे रोकती रही, मैं लम्बे समय से सैद्धान्तिकरूप से आपके उद्देश्य का अनुचर रहा हू । आपके सौन्दर्य शास्त्रीय और नैतिक उद्देश्यो से सहमत होते हुए भी मेरा विचार यह है कि शाकाहारी जीवन-पद्धति मनुष्य स्वभाव पर अपने पूर्ण शारीरिक प्रभाव द्वारा सर्वाधिक लाभप्रदरूप मे मानव-समुदाय को प्रभावित करेगी ।"

—अल्बर्ट आईन्स्टीन

अधिकाश रोगो का सम्बन्ध पेट से है । पेट पर उतना ही वोझ डालें, जितना वह खुशी-खुशी झेल सके । मन की लौलुपता को पेट पर हावी न होने दीजिए ।

—यशपाल जैन

[सुप्रसिद्ध सर्वोदय विचारक, प्रमुख साहित्यकार, सम्पादक जीवन साहित्य]

कहावत है कि अधिक खाकर जितने लोग मरते हैं, उससे कही कम लोग कम खाने से मरते हैं । वस्तुत बीमारी का सवसे वडा कारण यह है कि हममे से अधिकाश व्यक्ति जीने के लिए नही, जीभ के स्वाद के लिए खाते हैं और पेट जितना वोझ उठा सकता है, उससे अधिक वोझ उस पर डालते हैं ।

एक वडी शिक्षाप्रद कहानी है । एक ऊँचे दर्जे के सत कही रहते थे । उनका वहुत वड़ा आश्रम था । वहुत से स्त्री-पुरुष आश्रम मे रहते थे । एक लम्वी-चौडी वस्ती वहां वस गई थी ।

इस सत का एक धनिक भक्त था, जो कही दूर रहता था । एक दिन उसने सोचा कि गुरुदेव के पास इतने लोग रहते हैं । कभी कोई वीमार पडता होगा तो वड़ी परेशानी होती होगी, क्योकि वहा कोई इलाज करनेवाला तो है नही ।

यह सोचकर उसने एक योग्य हकीम को वहा भेज दिया। हकीम के पहुचने के बाद काफी दिन निकल गये, फिर भी कोई रोगी उनके पास नही आया तो उन्हे बडा अजीब-सा लगा। वह सत के पास पहुचे और उनसे कहा, "महाराज! मैं इतने दिनो से आप सबकी सेवा के लिए हू, पर मेरे पास एक भी रोगी नही आया।"

सन्त बोले, "आयेगा कहा से? मेरे अनुयायी जब खूब भूख लगती है तब खाते हैं और जब थोडी भूख बाकी रहती है, तब खाना छोड देते हैं।"

सन्त ने जो कहा—उसमे स्वास्थ्य का रहस्य छिपा हुआ है, पर दुर्भाग्य से आज हमारा दिमाग एकदम उल्टा हो गया है। एक दूसरी घटना याद आती है।

> **प्रकृति हमारी सबसे बडी हितैषी है। हम जब उसके नियमो का पालन नहीं करते, तब भी वह हमारी मदद करती है। अधिक खा लिया तो दस्त हो गये। यह प्रकृति की कृपा से होता है। वह अदर की गन्दगी को निकालने के लिए ऐसा करती है, लेकिन हम उसे अपना शत्रु मानकर तत्काल चिकित्सक के पास दौडते हैं और दस्त रुकवाने की दवा लेते हैं। पेट मे गन्दगी रहेगी तो किसी-न-किसी रास्ते से निकलेगी ही। दस्त बन्द कर दिये जायंगे तो दूसरा रोग उठ खडा होगा।**

एक बार एक व्यक्ति ने अपने मित्र को अपने यहा भोजन करने को बुलाया। तरह-तरह के पकवान बनवाये। वे लोग खाते जाते थे और मेजबान पूछता जाता था कि खाना कैसा लगा? मित्र उसका जवाब नही देता था। जब वे खा चुके और मित्र जाने को हुआ तो मेजबान ने फिर पूछा, "अरे भाई, आपने बताया नही कि खाना कैसा लगा?"

मित्र ने कहा, "आज से सातवे दिन आप मेरे घर खाना खाने आना, तब जवाब दूंगा।"

सातवे दिन दोनो ने साथ खाना खाया। सादा खाना था। जब खा चुके हैं और एक दूसरे से विदा होने लगे तो पहले साथी ने कहा, "आज आपने कुछ जवाब देने को कहा था।"

मित्र बोला, "जवाब तो आपको मिल गया। आपके यहा से आने के बाद

मुझे एक घण्टे सोना पडा था। अब आप यहा से सीधे अपने दफ्तर जाइये और काम कीजिये।"

ज्यादातर रोगों का सम्बन्ध पेट से आता है। पेट साफ रहे तो कोई कारण नही कि लोग बीमार पडे। एक बार विनोबाजी ने अपना एक व्यक्तिगत अनुभव सुनाया।

भूदान के सिलसिले मे पदयात्रा करते हुए वह एकबार बहुत बीमार हो गये। उनके पेट मे बडा दर्द होने लगा। डाक्टर आये, उन्होंने जाच की और अत्यन्त चिंतितभाव मे कहा, आपको आठ महीने आराम करना चाहिए।"

विनोबा ने उत्तर दिया, "लगता है जाच मे कही चूक रह गई है, जो आपने चार महीने छोड दिये। आपको सलाह देनी चाहिए थी कि बारह महीने आराम करो।"

डाक्टरो ने कहा, "आपको पैदल चलना छोड देना चाहिए।"

विनोबा बोले, "मेरे पेट मे दर्द है, पैरो मे नही।"

तब डाक्टरो ने कहा, देखिये, आप जो खाते है, उससे आपके पेट मे १६०० कैलरी पहुंचती है, चाहिए २२००।"

विनोबा ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया, "आपने खाने की कैलरी तो जोड ली लेकिन मैं खुले मे चलता हू, अनन्त आकाश के नीचे बैठ कर प्रार्थना करता हू, क्या उसकी कैलरी पेट मे नही जाती ?"

डाक्टर निरुत्तर होकर चले गये।

उसके पश्चात् विनोबा ने एकात मे पेट से पूछा, "क्यो भाई, तू मुझसे नाराज क्यो है ?"

पेट ने उत्तर दिया, "इसलिए कि तू अनाचारी है। मैं जितना भार उठा सकता हू, उससे अधिक भार तू मुझ पर डालता है।"

विनोबा उन दिनो सारे दिन मे पाच पाव दही, पाच बार मे लिया करते थे। उसे अब उन्होंने अठारह भागो मे बाटा। एक भाग लेते और उसे खाने मे इतना समय लगाते कि गीता के एक अध्याय का पारायण हो जाता।

कुछ ही समय बाद पेट ने कहा, "तू अब अच्छा आदमी बन गया है, मुझे हैरान नही करता। मैं भी तुझे हैरान नही करूगा।"

विनोबा बताते हैं कि पेट का दर्द अपने आप ठीक हो गया।

यह घटना बडी ही शिक्षाप्रद है। हम लोग प्राय देखते हैं कि भूख नही

लगी है, पेट ठीक से साफ नही हुआ है, फिर भी विना खाये मन नही मानता। खाते हैं और वाद मे डाक्टर के पास दौडते है। सच वात यह है कि अधिकतर लोगो के मन मे एक गलत वात घर करके वैठ गई है और वह यह कि हम खाना नही खायेंगे तो कमजोरी आ जायगी। हममे से शायद ही कोई यह सोचता हो कि न खाने की अपेक्षा वेभूख खाने से अधिक हानि होती है।

प्रकृति हमारी सवसे वडी हितैषी है। हम जब उसके नियमो का पालन नही करते, तव भी वह हमारी मदद करती है। अधिक खा लिया तो दस्त हो गये। यह प्रकृति की कृपा से होता है। वह अन्दर की गन्दगी को निकालने के लिए ऐसा करती है, लेकिन हम उसे अपना शत्रु मानकर तत्काल चिकित्सक के पास दौडते है और दस्त रुकवाने की दवा लेते है। पेट मे गन्दगी रहेगी तो किसी-न-किसी रास्ते से निकलेगी ही। दस्त वन्द कर दिये जायेंगे तो दूसरा रोग उठ खडा होगा।

अधिक खाने के साथ-साथ एक और अपराध हम यह करते है कि वडी उतावलो मे खाते हैं। हर आदमी कहता है, "क्या करें साहव, इतना काम है कि खाने को भी समय नही मिलता।"

पर जो यह कहते है वे भूल जाते हैं कि जैसे-तैसे पेट मे डाल लिया जाने वाला खाना एक न एक दिन स्वास्थ्य को मिट्टी मे मिला देता है। कम खाओ, चवा-चवाकर खाओ, यह अत्यत आवश्यक है। यदि समय नही है, मन हडवडी मे है तो मत खाओ। उससे उतना नुकसान नही होगा जितना कि सावुत ग्रास पेट मे पहुचा देने से होगा। प्रकृति ने दात आखिर इसीलिए तो दिये है कि आप जो भी खाये चवा-चवाकर खाए। अग्रेजी मे एक कहावत है "ड्रिक द फुड एड ईट द वाटर।" अर्थात् खाने को इतना चवाओ कि वह पानी हो जाय तव उसे निगलो, और जव पानी पीओ तो धीरे-धीरे घूट भर कर, रुक-रुक कर, पियो।

स्वास्थ्य के ये सामान्य नियम अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यदि हम इनका ध्यान रक्खें और अपने जीवन मे कडाई से इनका पालन करें तो न केवल हमारा शरीर रोग मुक्त रहेगा, अपितु हम वडे आनन्द का अनुभव करेंगे और दीर्वजीवी होगे।

●

मनुष्य जीवन दुर्लभ है। इस दुलर्भता का मुख्य कारण ज्ञान और विवेक है। मनुष्य का विवेक उसे सदा ही पवित्र जीवन व्यतीत करने की नेक सलाह देता है। जीवन को शुद्ध और सात्विक बनाने के लिए प्राकृतिक भोजन, शाकाहार ही उत्तम है।

पवित्र जीवन का उचित आहार : शाकाहार

—डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री
(प्राकृत, सस्कृत एव हिन्दी के विद्वान् एव लेखक)

मनुष्य को परखने के विविध आयाम और निकप हैं। मनुष्य का जीवन यथार्थ मे दुर्लभ है। इसकी दुर्लभता का मुख्य कारण ज्ञान और विवेक है। हमे ज्ञान यथार्थरूप मे प्राणियो के प्रत्येक जीवन मे प्राप्त नही हो मकता। मनुष्य को ही विस्तृत और विशेप ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता, साधन और सुयोग प्राप्त होता है। यही कारण है कि आधुनिक युग में भी जो संत्राम, आत्मपीडन, विघटन और बिखराव का जीवन है उसमे भी मानव ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे जो उपलब्धिया आत्मसात् कर चुका है वे केवल चमत्कृत करनेवाली ही नही, हमारी आखें खोल देनेवाली हैं। उनके अध्ययन और प्रायोगिक जीवन मे उतारने पर जो वास्तविक जानकारी मिलती है उससे हमारे पुराने आचार-विचारो पर भी अत्यन्त प्रभाव पडता है, क्योकि आज के हमारे जीवन मे विज्ञान ही सबसे बडा प्रमाण है।

विगत दो दशको मे चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र मे जो नवीन उपलब्धिया प्रकाश मे आई है उनके अध्ययन-मनन से मनुष्य के उचित आहार पर भी विशेष प्रभाव पड सकता है। अभी हाल ही मे इस सम्बन्ध मे जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके अनुसार मनुष्य के लिए मासाहार उपयुक्त भोजन नही बताया गया है, क्योकि मनुष्य का पेट मासाहार के उपयुक्त नही है।

शरीर रचना और आहार

प्रत्येक प्राणी का आहार शरीर की रचना से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। यह सभी जानते हैं कि पशु और पक्षियो से मनुष्य का भोजन सर्वथा भिन्न है। केवल बाह्य रचना, वेश-भूषा ही नही, शारीरिक रचना, सोचने-विचारने की पद्धति और वाणी के द्वारा व्यक्त करने का ढग भी अन्य प्राणियो से मनुष्य का सर्वथा भिन्न और विशिष्ट है। मन, वचन और काया से मनुष्य प्राणियो से भिन्न है। मनुष्य की शरीर-रचना को ध्यान से देखे तो पता लगेगा कि मुख की बनावट, दातो की सरचना, आहार-नलिका और लघु-वृहद् अन्त्र-यत्र सभी कुछ पशुओ से भिन्न है। आधुनिक चिकित्सको के अनुसार प्राणी-शरीर के अग उसके उचित प्राकृतिक रहन-सहन एव भोजन के अनुरूप ही सचालित होते हैं। मनुष्य की आहार-नलिका शाकाहारी प्राणियो की भाति पर्याप्त लम्बी है। सपूर्ण पाचक रस तथा आतरिक सरचना शाकाहार के लिए ही उचित है। मनुष्य को प्राकृतिक बनावट के अनुसार ही हमे दात और आत मिली है। मनुष्य की अगो की परिचालित प्रक्रिया मे दात से लेकर आत तक आहार प्रेषण-क्रिया और अवयवो मे रक्त-मासादि निर्माण की क्रियाएँ जुडी हुई हैं। इनसे ही शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है। ऊर्जा की खोज एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धि है। प्रत्येक सयत्र मे ऊर्जा का विश्लेपण करना और उसकी रासायनिक क्रियाओ का पता लगाना ही विज्ञान का मुख्य कार्य है। इस विधि से ही ऊर्जा के रूपो तथा मापो का निश्चय किया जाता है।

जैसी आंत वैसे दात .

पुराने लोग दातो से आतो का परिज्ञान करते थे। जहातक शारीरिक रचना-प्रक्रिया का सम्बन्ध है, यह देखने मे आता है कि हिसक-प्राणियो की जैसी आते होती हैं, प्रकृति के अनुसार उनके दात भी वैसे ही चीर-फाड करने-वाले नुकीले होते हैं। मनुष्य की अतडिया और उसके दात केवल शाकाहार के लिए उपयुक्त है। आधुनिक चिकित्सको के अनुसार भारतीय वातावरण और जीवन मासाहार के सर्वथा प्रतिकूल हैं। एक जापानी डाक्टर "कीसुके-

कुरोस" ने अपने दो साथियो श्री इतोमासानोशी और श्री ओत्सुचीतौरू के साथ यह घोषणा अभी हाल ही मे की है कि मासाहार हानिकारक है। अधिक मास खाने से पेट के अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। क्योकि मास मे अनेक विषैले पदार्थ होते है जो मनुष्य के रक्त-परिवहन पर घातक प्रभाव डालते हैं जिन्हे नष्ट नही किया जा सकता। प्रत्येक प्राणी-शरीर के कौशिका-पुजो मे जीवद्रव्य के निगर्मन अर्थात् मृत्यु के पश्चात् अनेक विघटन एव रासायनिक क्रियाएँ होती है जिनके कारण इन-विष-पदार्थो की उत्पति होती है। अतएव इनका प्रभाव मनुष्य की पाचन-क्रिया पर ही नही, वरन् जीवन-आयु पर भी पडता है।

मासाहार से अनेक रोग .

डॉ० टाल्वॉट का मत है कि मासाहार से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मिशिगन विश्वविद्यालय के प्रो० न्यूवर्ग का कथन है कि मासाहार करने से धमनिया मोटी हो जाती है, वहुमूत्र तथा गुर्दे की वीमारिया हो जाती हैं। रूस के प्रमुख डॉक्टर एनिश्को, अमेरिका के प्रसिद्ध डॉक्टर प्रो० मेकोलम, इगलेण्ड के प्रसिद्ध डॉक्टर एस० कीथ, सर डब्ल्यू० ई० कूपर सी० आई० ई० आदि अनेक डॉक्टरो ने मासाहार करने से उत्पन्न होनेवाले अनेक रोगो का उल्लेख किया है। डा० त्रिलोकीनाथ के अनुसार मुख्यरूप से उपान्त्र-प्रदाह मासाहारियो मे ही मिलता है। मासाहार से आमाशय और पक्वाशय के व्रण भी अधिक होते है। ये ही आगे चलकर कैंसर के हेतु वन जाते है। मासाहार के अनेक कुपरिणामो से लोग अकाल मे ही काल-कवलित हो जाते हैं, किन्तु उन्हे इसका पता नही चलता। इस प्रकार के अनेक तथ्यो तथा दृष्टान्तो से एव अनुभव से सिद्ध होता है कि मासाहार अनेक रोगो का जनक है। अतएव मांस का आहार करना मनुष्य के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।

क्या मासाहार शक्तिवर्द्धक है ?

प्राय लोग यह समझते है कि मास खाने से हमारे शरीर का मास एव शक्ति वढती है। मास से मास वढता है, पर शक्ति-वृद्धि होती है यह कहना उचित नही है। मास वढने से शक्ति मे वृद्धि नही होती। भारी-भरकम शरीर वनाने मात्र से कोई पहलवान नही हो जाता। शरीर मे शक्ति की वृद्धि के माथ-साथ उसका स्फुरण होना भी आवश्यक है। शाकाहार से स्फुरण-शक्ति का विकास होता है। शरीर की वास्तविक शक्ति को आयुर्वेद मे "ओज" नाम से अभिहित किया है गया है। मासाहार से ओज विशेप प्रगट नही होता। दूध, दही और घी से विशेपरूप से और तत्काल ओज शक्ति का

स्फुरण होता है। अतएव घायल बीमार, अशक्त और गर्भिणी तथा प्रसूता को दुग्धाहार दिया जाता है। शिशु का तो मुख्य आहार ही दुग्ध-पान है। माता के दुग्ध से बढकर उसका अन्य आहार नही हो सकता। गर्भ मे भी शिशु माता से ओज-आहार ग्रहण कर जीवित रहता है। जिन गर्भस्थ शिशुओ को यह ओज-आहार नही मिल पाता है अथवा उसके ग्रहण करने मे किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न हो जाता है उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि स्थूल आहार की अपेक्षा सूक्ष्म आहार का वैशिष्ट्य है जो मासाहार करने मे प्राप्त नही होता। अतएव मासाहार को शक्तिवर्द्धक कहना उचित नही है।

शक्ति की मापक स्फूर्ति

यह सब लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि फलो के रस, मेवे और अन्न, दुग्ध के आहार से शक्ति के रूप मे स्फूर्ति प्राप्त होती है। मासाहार स्फूर्ति-दायक नही है। स्फूर्ति ही स्वास्थ्य को बनाये रखने मे सक्षम है। मास-मदिरा मनुष्य की मानसिक शक्ति को भी शिथिल और हीन कर देती है। बौद्धिक शक्ति केवल शाकाहार से ही प्राप्त होती है। अतएव शक्ति का माप वजन से नही, स्फूर्ति से करना चाहिए। रोगी` बालक की अपेक्षा स्वस्थ बालक मे स्फूर्ति विशेपरूप से लक्षित होती है। शक्ति के माप के लिए "वाजि" घोडा, होर्सपावर, वाजीकरण आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता है, जो घोडे की स्फुरण-शक्ति एव गति का ही सूचक है। गति और वेग को देखकर ही स्फूर्ति का पता लगाया जाता है। अतएव शक्ति की मापक स्फूर्ति है ?

क्या शाकाहार उचित है ?

यदि मासाहार मनुष्य के लिए उपयुक्त नही है तो यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि क्या शाकाहार उचित है ? जैन आयुर्वेदाचार्यों का कथन है कि "शाकेपु दोपा बहुली भवन्ति" अर्थात्—शाक के विना जाने भक्षण करने से भी कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है। किंतु आपेक्षिक रूप से विभिन्न प्राणियो के मास की अपेक्षा शाकाहार उचित है। मानवता, नैतिकता और किसी भी बौद्धिक नियम की दृष्टि से मासाहार उचित नही हैं। क्योकि विना किसी प्राणी के वध किए अथवा मृत्यु को प्राप्त हुए विना उसका मास नही मिल सकता। दूसरे, उसके शरीर के साथ सम्बद्ध तरह-तरह के रोग और विषैले कीटाणु भी हमारे भीतर प्रविष्ट हो जाते है जो अनेक रोगो के घर होते हैं।

कच्चे और भूख से अधिक शाकाहार एव विशेषरूप से पत्तियो की भाजिया भी हानिकारक कही गई है। उचित आहार के साथ ही उचित मात्रा का भी ध्यान रखना चाहिए।

शाकाहार ही मनुष्य का उचित भोजन है

चरक के सूत्रस्थान अ० २ मे कहा गया है कि 'प्राणा' प्राणभृतामन्नम्" अर्थात् अन्न प्राणियो का प्राण है। अन्न मनुष्य का उचित आहार है। इसकी प्रथम अन्वेषणा भारत मे की गई थी। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने जो "कृषि के देवता" भी कहे जाते हैं, उन्होने ससार को खेती करना और निर्जीव शाकाहार को ग्रहण करना मनुष्य का वास्तविक एव उचित आहार निरूपित कर बताया था। यही कारण है कि मनुष्य कच्चे तथा वन-उपवनो से तोड कर लाये हुए शाक-फलो आदि को ज्यो का त्यो ग्रहण नही करता। उसे सुधारकर, पकाकर, उबाल कर तथा सस्कार कर विविध रूपो मे उनका सेवन किया जाता है, जिससे उसके अवशिष्ट दोष नष्ट हो जाते हैं। ऐसा भोजन ही हमारे शरीर को मानसिक और शारीरिक निर्माण के लिए सभी प्रकार के पोषक तत्व प्रदान करता है। डाक्टर टाल्बॉट का कथन है कि "हमारे निर्माण के लिए जिन सोलह तत्वो की आवश्यकता होती है वे सब शाकाहार मे निहित हैं।" शुद्ध, सात्विक और स्वच्छ भोजन के ग्रहण करने से मनुष्य का जीवन भी शुद्ध सात्विक बनता है। जीवन को शुद्ध और सात्विक बनाना ही स्वस्थता का उत्तम लक्षण है। अतएव मनुष्य अपने जीवन को पवित्र और अच्छा बनाना चाहता है तो उसे अपने प्राकृतिक भोजन शाकाहार को अपनाना चाहिए।

[शकर आईल मिल्स के सामने
नई बस्ती, नीमच (म प्र)]

शाकाहारी सायरस महान् (५२९ बी० सी०)

परसिया का बादशाह, जिसने अनेक प्रदेश जीत कर परसिया को, अधकारपूर्ण प्रदेश से महान् साम्राज्य मे उन्नत किया, स्वय ही शाकाहारी नही था वरन् उसने अपने सैनिको को भी शाकाहारी पथ्य के कठोर निर्वाह का आदेश दिया था, जहा कही भी उसकी सेना गई विजय प्राप्त की। सेनोफेन कहता है—'सायरस का पालन-पोषण रोटी-पत्ती-पानी के पथ्य पर १५ वर्ष की उम्र तक हुआ। तब शहद और मुनक्का दिए गए।'

निरीह पशु चेतना

● 'श्री मां'
(अरविन्द आश्रम, पाडिचेरी)

मैं आपको एक कहानी कहूगी। मैं एक युवा स्वीडिश महिला को जानती थी जो अभ्यास और रुचि के कारण साधना किया करती थी। एक दिन उसे एक भोजन मे आमन्त्रित किया गया और उसे खाने को मुर्गा दिया गया।

रात्रि मे उसने अपने को स्वप्न मे देखा—एक टोकरी मे उसने अपने सिर को दो छडियो के टुकडो के बीच कपकपाते पाया। इधर से उधर दवे—कापते उसने बहुत ही अप्रिय और दु खी महसूस किया। और तब उसने अपने सिर को नीचे और पावो को हवा मे उठे देखा जो लगातार हिलाए-कसे जा रहे थे। वह पूरी तरह दु खी हो गई। अचानक उसने अनुभव किया, उसकी खाल नोची जा रही है, उतारी जा रही है। और यह सब कितना कष्टदायक था और तभी कोई चाकू लिए आया और उसका सिर काट दिया। इस पर वह जग गई। उसने मुझे यह कहानी कही और कहा कि उसने जीवन मे ऐसा डरावना स्वप्न कभी नही देखा, सोने जाने से पूर्व इस प्रकार का कोई विचार ही नही था। यह मात्र उस गरीब मुर्गे की चेतना होगी जो उसके भीतर प्रवेश कर गई और उसने स्वप्न मे बाजार लाए जा रहे निरीह-प्राणी की पीडाओ को अनुभव किया।
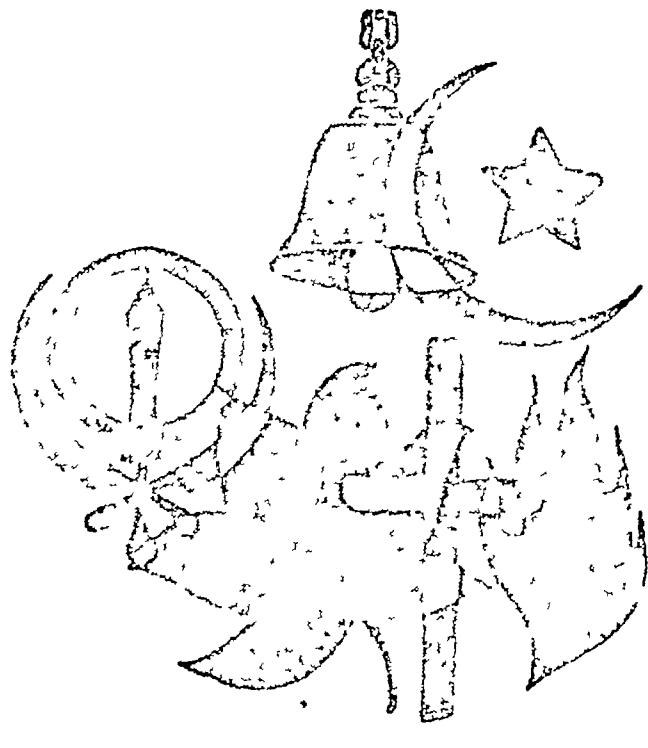
दूसरे शब्दो मे, जो भोजन आप लेते है उसके साथ न्यूनाधिक मात्रा मे उस पशु का जिसका मास आप निगलते हैं —चेतना भी लेते है।

मैंने पशुओ की आखो मे बहुत गहरे से मुझे देखती मनुष्य की आत्मा को देखा, मैंने देखा, जहा वह जन्मा था—गहरे रोओं और पाँखो के नीचे अथवा चार-पावो गोखरुओ के बीच घूमने पर एक क्षण को ही निंदा की। मैंने अनुसरण करती कैदियो की मूक झलकियो को पकड लिया और शपथ ली—मैं विश्वसनीय रहूगा।

—एडवर्ड कारपेंटर

विश्व के विभिन्न धर्मों में शाकाहार का महत्त्व

ससार के सभी सन्तो, महापुरुषो, धर्म-गुरुओ-पैगम्बरो ने और धर्मग्र थो ने सभी प्राणियो के साथ सद्भाव और सात्विक आहार को महत्व दिया है। प्राणियो के साथ सद्भाव और सात्विक-आहार से उत्पन्न भावना के विकसित स्वरूप के सहारे ही ईश्वर और परम सुख की प्राप्ति की जा सकती है। आहार का विचार और कर्म से गहरा सम्बन्ध रहता है और विचार-कर्म के परिणामो पर ही व्यक्ति अपना वर्तमान जीता है, भविष्य को साकार करता है और इन दोनो के निर्वहन मे अतीत से रोशनी लेता है।

इस निवध मे हम सात्विक-आहार और सादगीपूर्ण जोवन पर विभिन्न धर्म-ग्रन्थो प्रस्तुत हुई धर्माचार्यों और समाज-व्यवस्था के निर्माताओ का उल्लेख करेंगे—यह सिद्ध करने हेतु कि किसी भी धर्म ने भोजन के लिए प्राणी-हत्या को किसी भी स्तर पर उचित नही माना है। भारतीय धर्मों मे प्रत्येक प्रकार की हिंसा के विरुद्ध अहिंसा की कठोर सहिता प्रस्तुत हुई है। सुनिश्चित् धर्म-व्यवस्था के निर्माण से पूर्व अर्थात् प्रागैतिहासिक काल से अव तक भारत का सदेश अहिंसा भ्रातृभाव, निश्छलता और सवके लिए सद्भाव का ही रहा है—

सर्वे भवन्तु सुखिन. सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु खभाग् भवेत् ।

यह मत्र हजार-हजार वर्षो से आज तक उच्चरित हो रहा है भले तात्रिक उपलब्धियो के अथवा मु ह के स्वाद के मोह मे सुविधापरक व्याख्याए जोड-कर अथवा अपनी आवश्यकता वता कर मासाहार को जीवन-यापन की अनिवा-र्यता मान लिया हो,पर मोटे रूप मे भारत का भौगोलिक वातावरण भी मासा-हार के अनुकूल नही है । प्रत्येक प्राणी को भले उसकी उत्पत्ति जरायुज हो अथवा अण्डज, भारतीय धर्मो-ग्र थो ने उसे रक्षणीय ही वताया है चूँकि मनुष्य की चेतना-शक्ति सभी प्राणियो की अपेक्षा सर्वाधिक विकसित है और उसके पास ही सम्प्रेपित होने और करने के लिए भापा का समर्थ माध्यम है, और है अपनी और दूसरे का दु ख-सुख समझने की क्षमता । इसी कारण ' जीवस्य जीव भोजनम्" के विपरीत मनुष्येतर प्राणियों की रक्षा का सर्वाधिक दायित्व मनुष्य पर ही आता है, वरन् धर्माचार्यों और धर्म-ग्र थो की ओर से मनुष्य मात्र को दिया गया है ।

हिन्दू धर्मग्रन्थ

वेद—

वेद-ग्र थ जिन्हे सर्वाधिक पुरातन माना गया है और सर्वाधिक पूज्य-मान्य हैं—उनमे भी कहा गया है—"किसी भी प्राणी को पीडा मत दो ।" यजुर्वेद ॥२-३४॥ मे "अन्वेपियो से सुख की प्राप्ति के पश्चात दूध-मक्खन, स्वत गिरे, पके फल और शुद्धजल का उपयोग" करने की आचार-सहिता निर्धारित की है ।

वाल्मीकि रामायण—

राम गुहराजा का आमन्त्रण स्वीकारते हुए कहते हैं—"वल्कलवेपी-तपस्वियो जैसा जीवन जीता मैं केवल फलो-फूलो पर ही जीवन यापन करता हू ।" और राम की अनुपस्थिति मे चौदह वर्ष तक अयोध्या का शासन सचालन-कर्ता उनका भाई-भरत भी फलो-फूलो के आहार पर जीवन-यापन करता है ।

महाभारत—

यह ग्र थ हिन्दुओ का ही नही वरन् सम्पूर्ण भारतीय जीवन के अतीत का विशाल ज्ञान-कोप है । जीवन का कोई पक्ष इस कथा-काव्य ग्र थ मे आने से नही वचा है । महाभारत के शान्तिपर्व मे भीष्म के अनुसार मनु ने अहिसा को धर्म (कर्त्तव्य) वताया है । 'वह स्वार्थी है जो यज्ञो अथवा और किसी कारण से मास-भक्षण का लोलुप होकर पशुओ का सहार करता है ।" मनुस्मृति

५-८४ मे उल्लेख है "विना प्राणी-सहार के मास प्राप्त नही किया जा सकता, और यदि प्राणी-सहार किया जाता है तो स्वर्ग की प्राप्ति नही की जा सकती, इसलिए मास का त्याग किया जाना चाहिए।' मनु, जिसे भारतीय समाज व विधि-व्यवस्था का प्रथम निर्माता माना गया है, कहता है—'मास लेनेवाला अपने धन के द्वारा हिंसा करता है और मारनेवाला पशु को वाध-मार कर हिंसा करता है" हिंसा के तीन प्रकार माने हैं—वह जो मास लाता है या भेजता है, वह जो क्रय-विक्रय करता है अथवा पकाता है और जो उसे खाता है। ये सव मास-भक्षक है। मनु के आधार पर महाभारत मे मासाहार के वर्जन मे अनेको सतर्क-सिद्धान्त वर्णित हुए हैं—

"उस व्यक्ति की तुलना मे किसी व्यक्ति का इतना पतन नही होता जो दूमरे का माम खाकर अपना मास वढाने की इच्छा रखता है।"

"प्रलोभनग्रस्त होकर और पापपूर्ण सगति से ही मनुष्य का विवेक, सत्ता और शक्ति प्राप्त करने के लिए हिंसापूर्ण कार्य करता है।"

"अकुलीन और अज्ञानी पुरुष जो देवताओ की पूजा और वैदिक-त्याग की पूर्ति के वहाने पशु-सहार करता है, नर्क को जाता है।"

"जव हम किसी को जीवन दे नही सकते, हमे किसी का जीवन छीनने का भी अधिकार नही होता।"

उपरोक्त तथ्यो से प्रकट है कि जिन तान्त्रिको-पडितो ने यज्ञादि कार्यो के लिए पशु-वलि की निम्नस्तर की व्यवस्था दी। वह न वेद-सम्मत है और न ही मनु-कथित। वैदिक सिद्धातो पर विकसित हिन्दुओ के शैव और शाक्त-दर्शनो ने भी मासाहार का पूर्ण वर्णन किया है। यज्ञादि कार्यों के लिए पशु-वलि की प्रथा का इन शाखाओ ने तो खण्डन किया ही। जैन और वौद्ध धर्मों ने पशु-सहार का प्रखर विरोध करते हुए किसी भी प्रकार की जीव-हिंसा को वर्जित और निन्दनीय वताया—इन धर्मों ने अपने अनुयायियो के लिए अहिंसा-चार की कठोर आचार-सहिता निर्धारित की। इनमे जैनधर्म का अहिंसा चरण वहुत ही सूक्ष्म है। जैन और वौद्ध के इसी कठोर अहिंसाचार के कारण भारतीय चरित्र सौम्य और दयापूर्ण माना गया।

जैनधर्म—

अहिमा के मूल सिद्धान्त पर ही जैन-नैतिक सहिता निर्मित है —"जियो और जीने दो" ही जैन-धर्म का मूल मत है। जैसे हम मे से हर एक जीना चाहता है, सुख चाहता है। दुख से मुक्ति चाहता है। इसी तरह दूसरे जीवित प्राणी भी जीना चाहते हैं। जैन-धर्म शुद्ध जैनी के लिए

अनेको प्रकार के आत्मसयम निर्धारित करता है। जैनधर्म अप्रत्यक्ष हिंसा को भी पूर्ण वर्जित मानता है । जैन-साधु आत्म-सयम-अहिंसा और आहार की निर्धारित सहिता का कठोरतम आचरण कर अपने श्रावको को उस ओर प्रेरित करता है। "भूतानुकम्पा" (सभी तरह के प्राणियो के प्रति दया) "सत्वेपु मैत्री" (प्रत्येक प्राणी के साथ मैत्रीभाव) जैनधर्म की प्रमुख शिक्षा है। जैनाचार्यों और जैन-ग्रथो के अनुसार अहिंसा केवल आचार-सहिता नही है। यह दार्शनिक धरातल पर निर्मित है।" इनके अनुसार पशु-वनस्पतियाँ और खनिज-पदार्थ तक जीवधारी हैं इसलिए प्रत्येक जैनी सम्पूर्ण अचर-चर जीवन को पवित्रता से युक्त मानकर सम्मान करता है और सर्वाधिक सम्भावना तक अहिंसा का पालन करता है।

अन्तिम जैन तीर्थंकर भगवान श्री महावीर घोपित करते हैं—"पापी जो जीवित प्राणियो की हिंसा करता है, अपने जीवन के अन्त मे अपने स्तर से पतित होता है और अपनी इच्छा के विपरीत असुरो के ससार को जाता है।"

अहिंसाचार की निरन्तर कठोर पालना के कारण ही समस्त ससार मे जैनी ही सर्वाधिक शाकाहारी माना गया है, उनके अनुसार आदि-पुरुप भी शाकाहारी था।

बौद्धधर्म —

महात्मा बुद्ध ने अहिंसा के सागर मे आप्लावित होकर कहा है—

"विना पाव के प्राणियो को मेरा प्यार।
उसी तरह दो पाववालो को भी।
और उनको भी जिनके चार पाव है, मैं प्यार करता हू।
और उन्हे भी जिनके कई पाव हैं।"

साररूप मे बुद्ध कहते हैं—"अहिंसा के नियम के आचरण के विना कोई मुक्ति नही, कोई निर्वाण नही।" मानवतावादी दृष्टिकोण ही निर्दयता के भाव का क्षय करता है और शाकाहारी सिद्धान्त मानवतावादी सिद्धान्त का अनुज है। बुद्ध के इसी अहिसाचार से प्रभावित होकर सम्राट अशोक ने मासाहार का त्याग किया और ऐसे पशुओ की सूची घोपित की जिनका अप्रत्यक्ष शिकार भी वर्जित था। जीवित पशु, जीवत पशुओ द्वारा नही खाया जाना चाहिए। मछली अवाध्य है इसलिए वेची नही जानी चाहिए। इस प्रकार के अनेक नियम घोपित कर उसने प्राणीमात्र के प्रति अपनी भावना प्रगट की और उसे कानून का रूप दिया।

लकावतार सूत्र मे कहा गया है—"अनेको कारणो से बुद्ध धर्मावलम्बी के लिए माम अखाद्य है, वे जो प्रत्येक प्राणी को अपनी ही तरह मानते हैं, वे मास

कैसे खा सकते हैं ? जो पशुओ को मार कर प्राप्त किया जाता है ।" राजाओ के शासनकाल मे वर्मा मे तो पशु-हत्या करनेवाले के गले मे मास वाध कर अपमान के प्रतीकरूप मे नगर के मुख्य मार्गों पर घुमाया जाता था ।

जोरास्ट्रियन धर्म —

जोरास्ट्रियन धर्म, जिसे हमारे यहा पारसीधर्म के नाम से जाना जाता है आहार और पशुरक्षा पर विशेप वल देता है । "अवेस्ता" और "पहलवी" धर्म-ग्र थ धरती के प्रति विशेपरूप से मनुष्य और अन्य प्राणीमात्र व विकसित होते प्रत्येक पदार्थ के प्रति प्यार की भावनाओ से ओत-प्रोत है । "पहलवी" मे एक सवाद इस भावना को व्यक्त करता है —"किस उद्देश्य से ससार के लिए पवित्र-व्यक्ति रचा गया, और ससार मे किस पद्धति मे उसके रहने की आवश्यकता है ?"

उत्तर इस प्रकार है —"रचयिता ने प्राणियो के विकास के लिए रचना की जो कि उसकी इच्छा है और यह हमारे लिए आवश्यक है उसकी जो भी इच्छा है, उसकी वृद्धि करे ।"

जौरास्टर (जरथुस्त) के अनुसार शव अस्पर्शनीय है, यह मनुष्य और पदार्थों को अपवित्र करता है, इसे अग्नि के समीप लाना पाप है । भ्रष्ट मास पकाना अधिक घृणास्पद है ।"

जोरास्टर ने अपने उपदेशो मे कसाईघरो को पाप की आकर्पणशक्ति का का केन्द्र वताया है और शाकाहारी पथ्य को अधिक सार और स्वास्थ्यप्रद माना है ।

जिस मनुष्य के हाथ निर्दोप प्राणी के खून से रगे हो, उसे ईश्वर की प्रार्थना कर दया प्राप्त करने का कोई अधिकार नही । मनुष्य को वह जीवन लेने का कोई अधिकार नही, जिसे वह निर्मित नही कर सकता ।

सिक्खधर्म -

सिक्खधर्म के प्रवर्तक गुरु नानक ने जीवो पर दया रखने का उपदेश दिया है । सत्‌गुरु हरीसिह ने यहा तक कहा है कि विना दया के वडा सन्त भी कसाई के समान होता है । गुरु गोविन्दसिह जिन्होंने सिक्ख धर्मानुयायियो को वीरता का पाठ पढाया वे भी यही कहते हैं कि उनसे परमात्मा कभी प्रसन्न नही रहता जो जीव-हत्या करते हैं ।

यह विशेप महत्वपूर्ण तथ्य है कि सभी सिक्ख-गुरु पूर्ण शाकाहारी रहे हैं । सिक्खधर्म की नामधारी सिक्ख-शाखा तो कठोर शाकाहारी है ।

नामधारी सिक्खो का अहिंसाचार सामाजिक और आर्थिक-आचार अन्यो की तुलना मे बहुत कठोर है। इसी कठोर निर्वाह के कारण नामधारी सिक्ख की अपनी विशिष्ट पहचान है। ज्ञातव्य है कि नामधारी सिक्ख स्वभाव के कारण गाय का बहुत सम्मान करते हैं और वे इसे श्रेष्ठ पशु और शान्ति-सपन्नता और भलाई का प्रतीक मानते हैं। इनकी मान्यता है कि मानवता का रक्षक शाकाहारी ही था और शाकाहारी सिद्धात ही ससार को विनाश से बचा सकता है और स्थायी शाति की स्थापना मे सहायक हो सकता है।

हिब्रू धर्म—

ईश्वर ईडन के बाग मे आदिपुरुष अदम से कहता है—"पृथ्वी के हर पशु को और उडने वाले हर पक्षी को और उस हर प्राणी को जो पृथ्वी पर रेंगता है और जिनमे जीवन है, मैंने मास की जगह हरी पत्ती दी है। हिब्रू सन्त इस्राइल कहते हैं—जब तुम बहुत प्रार्थना करते हो, मै उन्हे नही सुनू गा, तुम्हारे हाथ खून से रगे है।

स्तोत्र रचयिता राजा डेविड 'बलि और पाप से भरी' भेंट के प्रति अरुचि का गीत गाता है। "द बुक आफ डेनियल" मे डेनियल की कहानी के अनुसार डैनियल और उसके तीन साथी बेबीलोन के राजा की कैद मे भी मास और मद्य लेना अस्वीकार कर देते हैं। ज्यूज (यहूदियो) की ही एक बाद की शाखा-इसेनिस अनुयायियो ने कठोर शाकाहार को अपनाया।

इस्लामधर्म—

मुस्लिम देशो मे ही नही, मुस्लिम सम्प्रदायो मे मासाहार का बहुत प्रचलन है। सम्भव है इसके भौगोलिक कारण रहे हो अथवा साहित्यक प्रवृत्ति या स्वाद के मोह धानान्न के उत्पादन के अभाव मे मासाहार अपना लिया गया हो मगर यह कुरान सम्मत नही है। इस्लाम-धर्म के पैगम्बर मुहम्मद साहब अपने अनुयायियो को कहते हैं – "पशु मनुष्य के छोटे भाई हैं, पृथ्वी पर कोई जगल नही है, पक्षी भी नही जो उडता है, मगर वे तुम्हारी ही तरह आदमी हैं। ईश्वर के सभी प्राणी एक परिवार है। अल्लाह के पास इस बलि का न खून ही न मास ही बल्कि वही पहुचता है जो आपके पास शुद्ध है—पवित्र है।" रमजान के दिनो के उपवास का अर्थ आत्म-सयम है—आदिम लिप्साओ और भावनाओ का शमन करना है। इस्लाम के उपदेशो और शाकाहारी सिद्धान्त के बीच कोई द्वन्द्व नही है, वरन् शाकाहार को अपनाना इन्ही के सर्वशक्तिमान ईश्वर के सिद्धान्त का व्यापक अर्थ ही करना है।

सूफी सिद्धान्त—

सूफी मत सिद्ध करता है कि हम सब एक ही जीवन हैं, एक ही रक्त हैं और यहा तक कि प्रकृति के साम्राज्य से ही मनुष्य का उद्‌गम चिन्तित करते है—"मैं चट्टान की तरह मरा और पौधे की तरह उगा, मैं पौधे की तरह मरा और मनुष्य होकर जगा, मैं मनुष्य की तरह मरुंगा और देवदूत के रूप मे उड़ूंगा।"

आईन-ए-अकबरी मे सूफी अबुलफजल मुगल सम्राट अकबर की मासाहार के प्रति अरुचि प्रगट करते हुए कहता है—वे एक दिन मे नियमित एक ही भोजन करते थे, वे फलो के शौकीन थे। वह उन्ही के शब्द उद्धृत करता है—"ईश्वर ने मनुष्य के लिए विभिन्न खाद्यपदार्थ उपलब्ध किए हैं मगर अज्ञानता और लालचवश वह जीवित प्राणियो का विनाश करता है।"

सीरिया के दार्शनिक कवि अबुल-अलाअलम ओरी जिन्होंने अपने समय मे शाकाहार के प्रति अनुराग और पशुओ के रक्षण की प्रेरणा दी। अपने अरबी भाषा के दोहे मे कहते हैं "लोग पिस्सू को पकडते हैं और उसे मार देते हैं, दूसरी ओर वे गरीबो को भिक्षा देते हैं। उत्तम तो यह है कि पिस्सू को मुक्त कर दे तब गरीबो को दान दे।"

क्रिस्तानी धर्म (मसीही मत-ईसाईधर्म)—

बाइबिल मे पशुओ के प्रति दया के कर्तव्य पर बहुत कम उल्लेख पाकर अनेक शाकाहारी विस्मित होते है, पर जिज्ञासु अध्येता जानते हैं कि स्वीकृत बाइबिल का स्वरूप अपूर्ण है और जिसके सम्पूर्ण गम्भीर अध्ययन के बिना हम जीसस को पशुओ के प्रति दया की भावना और उनके द्वारा निर्देशित कर्तव्यो से परिचित नही हो सकते। जीसस के उपदेशो मे शाकाहार शकाहीन ही नही है वरन् उनके "ओल्डटेस्टामेण्ट मे मासाहार की अपेक्षा सभी के प्रति प्यार और दया की महत्ता दर्शाई गई हैं। जीसस की दया भावना प्रगट करनेवाले कुछ घटनात्मक तथ्य इस प्रकार हैं—

जीसस एकबार एक स्थान पर गए जहाँ कुछ लडको ने चिडियो के लिए जाल फैला रखा था, जीसस ने कहा - "कौन है, जिसने ईश्वर के इन निर्दोष प्राणियो के लिए जाल फैला रखा है?" जीसस उनके पास गये, उन पर हाथ रखकर कहा—"जाओ, जब तक जियो, उडो।" और वे शोर करती हुई उड गई।

जीसस शिकारियो से एक शेर की रक्षा करते हुए कहते हैं—"तुम ईश्वर के इन प्राणियो का शिकार क्यो करते हो?" वे कहते हैं—"मात्र मनुष्य के

प्रति ही नही सभी प्राणियो के प्रति विचारवान रहो, नम्र रहो, दयावान रहो, मात्र अपने प्रति ही नही वरन् उस प्रत्येक के प्रति जो आपकी देखभाल के अन्तर्गत है।" वे घोषित करते हैं—"मैं वलि और रक्त के त्यौहार बन्द करने आया हू और यदि तुम मास का उपहार और मासाहार वन्द नही करते हो तो तुम्हारे प्रति ईश्वर का क्रोध भी कम नही होगा।" इस प्रकार जीसस ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सात्विकजीवन—आहार—प्राणीमात्र पर दया के उपदेश दिए हैं।

विश्व के अन्य धर्म

मिश्र और चीन के अनेक धर्म जीवन की एकरूपता पर निर्मित हुए। प्राचीन समय मे मिश्र के लोग पशु-सहार नही करते थे। वे मास-रक्त से परहेज ही नही करते थे वरन् पशुओ को प्यार भी करते थे। "आइसिस" की रहस्य-कथाओ का सन्निहित अर्थ मनुष्य का प्रकृति के सामीप्य से ही हैं।

ग्रीक और रोम के पुरातन धर्मों, पुराणकथाओ मे भी पशुओ के जीवन को सुरक्षित रखने की महत्ता वताई है। इनके अनुसार उस समय लोग विना किसी को मारे प्यार और शान्ति से रहते थे। एक ग्रीक पुराण-कथा के अनुसार प्रोमेथ्यूस बैल को मारनेवाला और पकाने के लिये स्वर्ग से आग चुरानेवाला पहला व्यक्ति था। इस अपराध पर प्रोमेथ्यूस को चट्टान से बाध दिया गया था और एक गिद्ध ने उसका जिगर नष्ट कर दिया।

चीनी सन्त कन्फ्यूशियस ने भोजन या फिर वलि के लिए पशु-सहार को अनैतिक कर्म वताया है। चीन मे कन्फ्यूशियस के उपदेशो से धर्म वना, जिसमे अहिंसाचार पर अधिक महत्व दिया गया है।

रामकृष्ण परमहस के शब्दो में—"सर्वशक्तिमान्" तक पहुचने के अनेक धर्म हैं—अनेक रास्ते है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का अनुसरण करना चाहिए—"परन्तु विशिष्ट धर्म का अनुयायी होकर अहिंसाचार को गौण करना अपने धर्मावतार के प्रति-उनके उपदेशो के प्रति विश्वासघात करना है। सभी धर्मों ने सर्वशक्तिमान को प्रतीक लक्ष्य मानकर एक ही मार्ग निर्देशित किया है—वह है प्यार का—भावना का, प्र ाणीमात्र के साथ सद्भाव-सम-भाव का। सात्विक आहार—उच्चविचार मनुष्य को परमशान्ति प्रदान करने मे सहायक होते हैं।

(सकलित एव सम्पादित)

●

असभ्यता पशुओ को सताने और उनकी हत्या करने की स्वीकृति का कारण बनती है। असभ्यता के ही कारण व्यक्ति दूसरे पशुओं की हत्या को अपनी शरीर प्रक्रिया मे लेता है। यह विष मस्तिष्क को, नैतिक आदर्शों को और इच्छाशक्ति को दुर्बल करता है। यह विष सबके लिए ऐसी लालसा पोषित करता है, जो नष्टधर्मी है।

विचारोत्तेजन की दिशा में—

—ई० एल० प्रेट
(भूतपूर्व सम्पादक—
"द अमेरिकन वैजेटेरियन")

शून्य पर आघात

कभी-कभी कोई व्यक्ति समय निकाल कर आकडे सकलित करने को प्रोत्साहित होता है कि "शून्य पर आघात" करने मे प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति कितनी शक्ति का अपव्यय होता है। गम्भीर मानस, उत्तम अभिप्रायवाले व्यक्ति भी यथाशक्ति अपने-आपको प्रयत्न मे लगाए रहते हैं और जो कुछ भी नही है, को पूरा करते हैं, महज इसलिए कि वे समस्या के गलत पक्ष पर काम कर रहे हैं।

अगर किसी बालक को बुखार आ जाता है, परिश्रमपूर्वक उसे पखा झलने से बुखार का उपचार नही होगा, जैसा कि वास्तविक रूप से हर व्यक्ति यह जानता है, फिर भी हमारे कुछ प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रमुख समस्याओ पर भी वे समान रूप से हास्यास्पद बनी रहती हैं।

असभ्यता इच्छा-शक्ति को नष्ट करती है

उदाहरण के लिए हम आत्म-त्याग करते, विश्वसनीय काम करते कामगार को लें, जो शराबी को उसकी मूर्खता दिखाने का यत्न करते हैं। वह उन्हे देख

मकता है मगर अधिकाश घटनाओ मे वह उस चीज को नही छोडेगा—शायद छोड नही सकता जिसने उसे जकड रखा है—जब तक कि कारण नही हटा दिया जाता।

वह कारण है असभ्यता! असभ्यता ही के कारण व्यक्ति दूसरे पशुओ की हत्या को अपनी शरीर-प्रक्रिया मे लेता है। असभ्यता निर्दोप पशुओ को उनके तथा कथित भोजन के लिए सताने और उनकी हत्या करने की स्वीकृति का कारण वनती है। यह विप मस्तिष्क को, नैतिक आदर्शो को और इच्छा शक्ति को दुर्वल करता है। यह विप मवके लिए ऐसी लालसा पोपित करता है जो नष्ट-धर्मी होती है।

निर्दयता की लिप्सा

प्राणिगो की चीर-फाड करने के विरोधी हर प्रकार से इस बुराई से लडते है—कसाईपन द्वारा विज्ञान का नाम कलकित करनेवालो को विश्वास दिलाने के प्रयत्न करते हैं। ये व्यक्ति यहा तक कि औरते भी (जिसका विश्वास करना कठिन होता है) घृणित जहर अपनी शरीर प्रक्रिया मे लेते हैं जो गाढे रक्त मे सचरित होते रहने की लिप्सा उत्पन्न करता है, जैसे कि प्राणियो की चीर-फाड के विरोधी हमारे कार्यकर्त्ता शून्य पर आघात कर शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं।

निर्दोप वच्चो (मे) से हत्यारो का पोपण

हमारे सर्वोच्च स्वर्ग के प्राणी संसार की माताए भी जो अपने वच्चो के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर देती है, वे भी बुराई के वास्तविक स्रोत को लक्षित कर पाने मे असफल हो जाती हैं, वे उन्हे भी रास्ते से हटा देती है जिनसे उन्होने कभी प्यार किया था। वहुत सी घटनाओ मे अनेक माताओ को यह मर्मान्तिक पीडा देगा कि वे अपने निर्दोप छोटे वच्चो को वे कीटाणु खिला रही हैं जिनसे हत्यारे, वेश्याएँ, शरावी, अपराधी और चिडचिडे पोपित होते हैं। यह क्षोभदायक-भयावह प्राकट्य है मगर दुखान्तरूप से सत्य है। ये विश्वसनीय पूज्य माताएँ अपने वच्चो को कुशल पुरुप-स्त्रिया वनाने और उनके जीवन को सुखी करने दिन-रात परिश्रम करती हैं, तव भी अज्ञानता से वे विपरीत कार्य करती हैं और उनके सारे प्रयत्न हवा पर आघात करने जैसे उन्मत्त होते हैं।

असभ्यता युद्ध-पिपासुओ का पोपण करती है

विश्व शान्ति के हमारे हिमायती युद्ध को समाप्त करने के कार्य और

प्रार्थना कर रहे हैं। वे जानते हैं कि यह अमस्यो का व्यापार है, वे जानते है कि यह एक ऐसा खेल है जिसमे लोग हारते हैं। वे ईमानदार है, वे आत्म-त्यागी हैं, वे इस व्यवसाय को समाप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जबकि उन्हे असभ्यता को भी नष्ट करना चाहिए जिससे मनुष्य-जीवन मे ये व्यापारी और झगडने-लडने और मारने की लिप्सा पोपित हुई।

मास से दूषित ससार

अल्पाहारी कामगार, प्राणी-चीरफाड विरोधी, शाति के समर्थक, माताएँ और ससार के अच्छे अभिप्रायवाले लाखो कार्यकर्ता सभी शून्य पर आघात करते हुए अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं जबतक कि वे उस बात की जड को लक्ष्य न बना ले जो आज हमारे ससार को किसी भी अन्य चीज की अपेक्षा मास के उपयोग से अधिक दूपित कर रही है।

ये सभी बुराईया मासाहारी की शरीर-प्रक्रिया मे विद्यमान जहर से पोपित होती है और उनके द्वारा प्रोत्साहित की जाती है जो इन बुराईयो को व्याव-सायिक रूप देते हैं। शराबी अपने भीतर की लिप्सा द्वारा ही शराबी बनाया जाता है। कोई कह सकता है—"नही, वह साथियो द्वारा शराबी बनाया गया है" उसके अधिक ऊँचे आदर्श जो थे, वह तथ्य रहता है, उसके अपने साथी उसे प्रभावित करने मे असमर्थ रहेंगे। वह अपनी मूर्खता मे मद्यसार और उत्तेजक पदार्थों का व्यवसाय करनेवालो द्वारा ही प्रोत्साहित किया जाता है,जिनका वह उपयोग करता है। इच्छा-शक्ति से उसकी लिप्सा वश मे करनी पडती है। जो पशु-विष लेने मे शरीर-प्रक्रिया मे उत्पन्न हुई और खुलेपन और उम जैसे साथियो के कारण ही विस्तृत हुई। मगर यह भोजन उसकी इच्छा-शक्ति छीन लेता है। ये विप लेते रहें और ये प्रलोभन भी प्रलोभन बने रहते हैं। तब ये मूर्खता और नुकसानप्रद रूप मे प्रकट होते हैं जैसे कि वे होते हैं। जबतक कि प्राण-नाशक कारण दूर नही किया जाता कम से कम नब्बे प्रतिशत घटनाओ मे प्रार्थना-आसू और भय का किसी भी तरह का कोई उपयोग नही होता और शेप दस प्रतिशत मे से नौ पर ही अस्थाई असर होता है।

हत्या और शोषण की उन्मत्त लिप्सा

इसी प्रकार प्राणियो को चीरने फाडनेवाला भी अपने प्रलोभन के सम्मुख होता है। वह अपने विकृत भोजन के विपो से गसित होकर ही हत्या की लिप्सा से पशुओ से खण्डित पकडे रहता है, रक्त और दुख देखता है। वह इसे नही रोक सकता जबतक कि उसकी इच्छा शक्ति जहर से उत्पन्न

लिप्सा से प्रवल न हो। उसकी इच्छा-शक्ति जहर द्वारा दुर्बल की जाती रहती है। अगर वह एक उपदेशक को सुनने का प्रयत्न करता है तव वह एक हारती हुई लडाई लडता है। उपदेशक भी शून्य पर आघात करता है जवतक कि वह प्राणियो का चीर-फाड करनेवाले को उन्मत्त लिप्सा के कारण से जागृत नही करता।

माता-पिता होकर जो लम्बा जीवन जी चुके है, वे सव उन विसगतियो को जानते है, जिनसे माता-पिता लडते रहते हैं—जैसे वच्चे पहले ही गलत रास्ते पड गए—स्कूल मे छोटी-छोटी नशीली वस्तुओ से परिचित हो गए, मृतक पशुओ के विप द्वारा दुरुह वना दिए गए। नीचे स्तर की कोठरियो मे निर्दोष युवक झोक दिए गए—इन अनेक सकटो से माता-पिता झगडते रहते हैं।

प्रलोभन के विरुद्ध एक ही हथियार

हम अपने वच्चो को ऐसे लोगो और स्थानो से दूर रखने का यत्न करे। लगनपूर्वक उनके प्रभाव योग्य मानस मे ऐसे स्थानो और ऐसे लोगो की वुराई और भयकर परिणाम धीरे-धीरे विठाएँ, मगर हम शून्य पर ही चोट करते हैं। जहातक उनके शरीर असभ्यता से पोपित होते हैं, ये वच्चे अपने आपके नियत्रक नही होते। वे इन अधम कार्यों मे लिप्त होना तो जानते हैं मगर प्रलोभन के विरुद्ध व्यक्ति का हथियार एक ही है—इच्छाशक्ति। वह उन विषो द्वारा समाप्त हो चुकती है जो उसे खिलाए जाते रहते है और इसके वदले दुष्टता ही शिक्षित होती है। भले सारी दुनिया उसे कितना ही उपदेश दे या फिर वह कितना ही सुशिक्षित हो सकता है, सुधार की दिशा मे थोडी ही प्रगति की जा सकती है।

पशु-विष—एक शैतान

हम मे से अधिकाश शिष्ट होना चाहते हैं, दु खो से मुक्ति चाहते हैं। हममे से अधिकाश सभी प्राणियो के साथ दया का वर्ताव करने की इच्छा रखते हैं, अपने आपकी रक्षा मे असमर्थ रहनेवालो के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रहना चाहते हैं, फिर भी अधिकाश व्यक्ति महसूस करते हैं कि कोई एक और शक्ति है जो उनकी सर्वोत्तम प्रवृत्तियो के विरुद्ध लड रही है। यह शक्ति शरीर-प्रक्रिया (व्यवस्था) मे लिए गए मास के जहर की है। यही पशु-विष है जो मनुष्य के विशिष्ट गुणो को पराजित कर देता है। जैसे दो राष्ट्रीयताओ के मेल का परिणाम काफी कम गुण योग्य वशोत्पन्न है, इसी प्रकार पशु-विष और प्राकृतिक मानवीय गुणो के मेल से जो कुछ हमे मिलता है वह जगली पशु की अपेक्षा अधिक अशिष्ट होता है।

अनेक मासाहारी इसका विरोध करेंगे पर एक क्षण का विचार ही इसका सत्य सिद्ध कर देगा। प्रकृतिवादी इस पर सहमत हैं कि पशुओ को अपनी ही विधियो पर छोड दिया जाता है तो सामान्यत वे भयकर नही होते। आदमी ही मास-भक्षक है।

मांस में कष्ट के कीटाणु

यदि हम निर्माता की तरह का सम्पूर्ण जीवन जिएँ, जो हम जीते है, उमका स्पष्ट सकल्प होता है। हमे अपने सारे अधमकाय छोड देने चाहिए कि हमारे अल्पाहारी कामगार हमारे प्राणियो का चीर-फाड-विरोधी, समस्त ससार की माताएँ, शान्ति के समर्थक और सभी उत्तम अभिप्रायवाले व्यक्ति उन्हे दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मगर इसके पूर्व कि हम इसे सिद्ध कर सकें, हमे ज्वर से पीडित वच्चे को पखा देने की तुलना मे वहुत अधिक करना चाहिए। हमे ससार को कष्ट के कीटाणुओ से जो कि मास के उपयोग से शरीर व्यवस्था मे ले लिए जाते हैं—छुटकारा दिलाना चाहिए अन्यथा हम मनुष्य-मात्र की भलाई के लिए कितना ही कठोर परिश्रम करें—व्यक्तिगत "स्व" की खातिर ही—हम शून्य पर ही आघात करते हैं।

●————————●

• काल क्षेत्र मात्रा, स्वात्म्य द्रव्य-गुरु लाघव स्ववलम्।
ज्ञात्वा योऽभ्यवहार्यं भुक्ते किं भेषजैस्तस्य॥

—जो काल, क्षेत्र, मात्रा, आत्मा का हित, द्रव्य की गुरुता-लघुता एव अपने वल का विचार कर भोजन करता है,उसके लिए दवा की क्या आवश्यकता है ?

० सही भोजन तो गरीब लोग ही करते है, धनवान नही। गरीबो की भूख सामान्य भोजन को भी सम्पन्नतर बना देती है। धनवानो मे यह दुर्लभ है।

—महाभारत

•

नित्य-प्रति क्षीण होते शरीर का पूरक है आहार। आहार शरीर को तापयुक्त रखने, क्रियमाण रखने का ईंधन है। किन्तु सदा यह खयाल रखा जाना चाहिये कि आहार उपयुक्त परिमाण में हो। मिताहार व्यक्ति को अधिक-से-अधिक शक्तिसम्पन्न बनाता है। आहार वही उचित है व तभी उचित है जिसके लिए पेट सलाह दे।

•

आहार-ग्रहण में उदर की सलाह लें!

—अहिंसादेवी

[मुक्ति तीर्थ, सिकन्दराराऊ से सम्बद्ध, प्राकृतिक चिकित्सक]

•

आहारः प्राणिनः सद्यो बलकृद्देहधारकः।
आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धनः ॥—सुश्रुत

हमारा शरीर हर समय कुछ न कुछ कार्य करता रहता है। जिस समय हम सोते हैं हृदय, फेफडे आदि आतरिक अवयव उस समय भी अपना काम करते रहते हैं। काम करने से शरीर क्षीण होता है। प्रतिक्षण शरीर के सैल टूटते रहते हैं। एक कदम चलने से, एक शब्द बोलने से, और तनिक भी सोचने-विचारने या चिन्ता करने से, यही नही प्रत्युत श्वास लेने तक से भी शरीर मे कुछ न कुछ ह्रास अवश्य होता है।

यह भी देखा गया है कि कई दिन का उपवास करने से शरीर बहुत दुबला और निर्बल हो जाता है, शरीर का भार घट जाता है, यह क्यो? उपवास के दिनो मे केवल भोजन करना ही तो छोड दिया जाता है? और बस इसी कारण से मनुष्य अत्यन्त दुबला-पतला और निर्बल हो जाता है। भोजन

न मिलने के कारण ही अकाल के समय सैंकडो मनुष्य सूखकर काटा हो जाते हैं। भोजन न पचा सकने के कारण ही रोगी मनुष्य पोषण के अभाव मे दिन पर दिन कमजोर होता जाता है, उसका भार घटने लगता है। इन उदाहरणो से स्पष्ट होता है कि भोजन करते रहने पर परिश्रमी मनुष्य का शरीर क्षीण नही होता और भोजन न करने अथवा न पचने पर विना परिश्रम किये भी शारीरिक भार घट जाता है, अतएव स्पष्ट है कि हमारे शरीर मे जो ह्रास होता है उसकी पूर्ति करनेवाला आहार तथा आहार का पाचन ही है। आहार से ही शरीर के टूटे हुए सैलो के स्थान मे नये सेल वनते हैं और उनकी मरम्मत होती रहती है।

विद्वानो ने अनुमान लगाया है कि इस परिवर्तन से प्राय सात वर्ष मे हमारा शरीर विलकुल वदल जाता है। इधर एक सेल टूटा उधर दूसरा सेल तैयार हो गया, शरीर मे जहाँ कही टूट-फूट हुई तुरत उसकी मरम्मत हो गई, यह क्रम सतत जारी रहता है।

आहार— ह्रास की पूर्ति करने के अतिरिक्त २५-३० वर्ष की आयु तक शारीरिक वृद्धि भी करता है। नवजात शिशु के भार, लम्वाई इत्यादि का युवा पुरुष के भार और उसकी लवाई इत्यादि से मुकावला करने पर यह वात आपही स्पष्ट हो जाती है। वालक के शरीर मे ह्रास कम होता है और आहार से नये-नये सेल अधिक वनते है, इसीलिये उसका शरीर दिन-दिन वढता जाता है। परन्तु युवा पुरुषो मे अधिक काम करने के कारण ह्रास अधिक होता है। आहार से केवल उसकी पूर्ति मात्र ही होती है, इतना अधिक आहार वह पचा नही सकता जो ह्रास की पूर्ति करने के अतिरिक्त शारीरिक वृद्धि भी हो सके। वृद्ध पुरुष जितना आहार पचा सकते हैं उससे उनकी ह्रास की पूर्ति भी नही हो पाती, दूसरे उनकी पाचन-शक्ति भी क्षीण होने लगती है। यही कारण है कि उनका शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण होने लगता है।

शरीर मे ताप भी भोजन से उत्पन्न होता है। जव तक हम जीते हैं हमारा शरीर सदैव गरम रहता है और हर समय थोडी वहुत गर्मी शरीर से वाहर भी निकलती रहती है। चाहे हम शीत-प्रधान देश मे रहे, चाहे उष्णता-प्रधान देश मे, चाहे ग्रीष्म ऋतु हो अथवा जाडे का मौसम, परन्तु शारीरिक ताप मे कोई विशेष अन्तर नहीं पडता। तापमापक यत्र से परीक्षा करने पर स्वस्थ मनुष्य का तापक्रम प्राय ९८$\frac{2}{5}$ फार्नहाइट पाया जाता है। ऋतु आदि का तथा प्रकृति-भेद के कारण थोडा बहुत अन्तर मनुष्यो के शारीरिक तापक्रमो मे रहता है।

हमारे शरीर मे सदैव एक प्रकार की दहन क्रिया होती रहती है। आहार इस दहन क्रिया मे ईधन का काम देता है। भोजन का एक अश औपजन नामक वायु से मिलकर अप्रत्यक्ष रूप मे जलने लगता है, जिससे गर्मी उत्पन्न होकर हमारे शरीर को गरम रखती है और सदैव थोडी वहुत शरीर से वाहर भी निकलती रहती है।

इस प्रकार आतरिक दहन क्रिया से जो ताप उत्पन्न होता है उसका ही दूसरा रूप शक्ति है जो हमे कार्य करने मे समर्थ करती है।

इस प्रकार शरीर मे जाकर आहार—१—शारीरिक ह्रास की पूर्ति २—शारीरिक ताप की वृद्धि, ३—शारीरिक वृद्धि तथा ४—कार्यकारिणी शक्ति या वल की उत्पत्ति, यह चार काम करता है और इन्ही कार्यों के लिये आहार की आवश्यकता है।

आहार-मात्रा

हम आहार की आवश्यकता पर ऊपर विचार कर चुके है और यह निर्णय कर चुके कि विना उपयुक्त आहार के दीर्घकाल तक मनुष्य का जीना असभव है। अव हम स्वास्थ्य के लिये आहार की उचित और पर्याप्त मात्रा पर विचार करेगे। आहार के कम मिलने पर जिस प्रकार शरीर शीघ्र ही दुर्बल-क्षीण और कृश हो जाता है, उसी प्रकार आवश्यकता मे अधिक भोजन करने से मदाग्नि, वद्धकोष्ठ, पेचिश आदि अनेक रोग हो जाते है। प्रत्येक मनुष्य के लिये उसके शारीरिक सगठन, दैनिक श्रम और कार्य-विभिन्नता के अनुसार आहार की भी भिन्न-भिन्न परिमाण मे आवश्यकता होती है।

खाद्य-सामग्री के परिमाण पर विचार करने के साथ ही यह भी अत्यन्त विचारणीय है कि हमारे दैनिक भोजन मे प्रोटीन, स्नेह, कार्वोज, आदि उपादान किस-किस परिमाण मे होने चाहिए। क्योकि आहार मे पूर्वोक्त उपादानो का यथोचित परिमाण न होने से भी स्वास्थ्य ठीक नही रह सकता। किसी एक उपादान का काम अन्य उपादान से नही चल सकता।

शरीर मे आकर कौनसा पदार्थ कितनी शक्ति उत्पन्न करता है, यह नापने के लिए एक विशेष यत्र का आविष्कार हो चुका है और भिन्न-भिन्न पदार्थो की वलोत्पादक शक्ति पर विचार करके विद्वानो ने परिश्रम भेद के अनुसार भिन्न-भिन्न आहार तालिकाएँ भी निर्धारित की है। यद्यपि यह तालिकाएँ वहुत सोच समझकर सिद्धातानुकूल ही वनाई गई है, तथापि कृत्रिम तराजू वाट से आहार मात्रा के प्रश्न का सही-सही निर्णय नही हो सकता, पहले तो यही सभव नही

कि समस्त ससार के सब व्यक्तियो के लिये पृथक्-पृथक् ऐसी आहार तालिकाएँ बनाई जा सके। और यदि यह सभव भी हो जाय तो यह तालिकाएँ केवल उन व्यक्तियो के लिए ही हो सकती है जिनका शरीर पूर्णतया स्वस्थ हैं और पाचनशक्ति मे तनिक भी विकार नही है। परन्तु आजकल ऐसे स्वस्थ मनुष्य कम से कम भारत मे तो शायद ही मिलें।

अतएव आहार की मात्रा का निर्णय करने के लिए हमे स्वाभाविक तराजू से काम लेना पडेगा। उस स्वाभाविक तराजू मे कि जो प्रत्येक मनुष्य को ही नही, प्राणीमात्र को जन्म लेते ही प्राप्त हो जाती है। ऋषि आत्रेय आहार-मात्रा का निर्णय करने के लिये उस सच्ची तराजू के उपयोग की कैसी सीधी-सादी और सुगम बातें बतलाते हैं—

मात्राशीस्यात् आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी।
द्रव्यापेक्षया त्रिभागसोहित्यमर्द्धसोहित्य च गुरुणामुपदिश्यते।
लघुनामपि च नातिसोहित्य अग्नयुर्क्तमर्थम् ॥

— चरक

अर्थात् "मनुष्य को भोजन मात्रानुसार करना चाहिये और आहार-मात्रा पाचक अग्नि के बलानुसार होनी चाहिये, अर्थात् जितना आहार सुखपूर्वक पच सके वही आहार-मात्रा है।"

कुक्षेभागंद्वय भोज्येस्तृतीये वारि पूरयेत्।
वायो सचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥

—भावप्रकाश

अर्थात् "आमाशय के दो भाग भोजन से और एक भाग पानी से पूर्ण करना चाहिये तथा चौथा भाग वायुसचरण के लिये खाली छोड देना चाहिये।"

मिताहार

हमारा भोजन स्वाद के लिये न होकर स्वास्थ्य के लिये होना चाहिये। इस विषय को अधिक स्पष्ट करते हुये राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी कहते हैं कि "यदि हम आवश्यकता से अधिक खाते हैं तो वह चोरी का खाते है। जितना हम स्वाद के लिए खाते है, वह कच्चे पारे की भाति किसी न किसी रूप मे फूट निकलता है हम उतने ही दुखी हो जाते हैं। हमारा स्वास्थ्य उतना ही बिगड जाता है।"

आयुर्वेद शास्त्र मे क्षुधा को एक स्वाभाविक रोग माना है। आहार इस रोग की औषधि है। परन्तु हम लोगो ने उसे औषध न मानकर रसनेन्द्रिय की तृप्ति का साधन वना रखा है। भूख लगे चाहे न लगे, दिन भर कुछ खाते ही रहते हैं। एकवार का किया हुआ आहार पचने भी नही पाता कि फिर भोजन पर जा डटते हैं। प्रतिदिन कम से कम दो वार डटकर भोजन कर लेना अनिवार्य-सा समझा जाता है।

इस प्रकार अधाधुन्ध भोजन करने से आमाशय और पाचक-यन्त्रो पर इतना अधिक भार पडता है कि वे उसे उठा नही सकते। इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर तो पाचनेन्द्रिय निर्वल हो जाती है,और दूसरी ओर उनके प्राणपण से चेष्टा करने पर भी जो आहार अच्छी तरह नही पच सकता वह आतो मे जाकर सडता है और उससे नाना प्रकार के विषैले पदार्थ उत्पन्न होकर रक्त को दूषित और स्वास्थ्य को नष्ट करते है। वह अधपचा आहार अतिसार, पेचिश, सग्रहणी इत्यादि का रूप धारण करके घोर कष्ट का कारण वनता है, अथवा सव रोगो का मूल अजीर्ण या कोष्ठवद्ध आ दवाता है।

ससार मे दो प्रकार के मनुष्य हैं, एक तो वह जो जीने के लिये खाते है और दूसरे वे जो खाने के लिए जीते हैं। दूसरी प्रकार के मनुष्यो को सदैव खाने की ही चिन्ता रहती है। पेट भर जाता है पर उनकी नीयत नही भरती। दिन भर, नाना प्रकार के पदार्थ खाते ही रहते हैं। ऐसे लोगो का जीवन थोडा है, और वह भी भाररूप वन जाता है। अपने हाथो से अपनी कवर खोदने वाले वही होते है कि जो मात्रा से अधिक, वे-हिसाव भोजन करते है।

जो आहार एक मिताहारी पुरुष को अधिक से अधिक शक्ति प्रदान कर सकता है वही अमिताहारी पुरुषो को निर्बल और रोगी वना देता है।

भारतीय माताएँ वच्चो को डाट-डपटकर अधिक से अधिक भोजन कराने का प्रयत्न किया करती है। वह वच्चो के मुख मे कुछ न कुछ ठेलती रहती है, और इसी मे उनका वडा उपकार और अपने स्नेह का परिचय देती है। परन्तु वास्तव मे यही वच्चो का सवसे वडा अपकार है। इसका फल उनकी आशा के सर्वथा विपरीत निकलता है। इसी प्यारपूर्ण अत्याचार के कारण कितनी ही माताएँ अपने वच्चो से असमय ही हाथ धो वैठती हैं। लडकिया जिनके साथ ऐसा लाड-प्यार नही किया जाता, लडको से अधिक हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ रहती हैं।

जिनको स्वस्थ रहने की अभिलाषा है, और जो रोगो से वचना चाहते हैं, उनको आहारमात्रा का अवश्य ध्यान रखना चाहिये। जब तक एकवार का किया भोजन पच न जाय तव तक पुन नही खाना चाहिये। थोडी भूख रहने पर ही थाली पर से उठ जाना चाहिये। कोई पदार्थ इसलिए न खाना चाहिये कि वह वहुत स्वादिष्ट है या उसके खाने के लिये मन चाहता है, वल्कि उदर से परामर्श लेना आवश्यक है। जिस समय उदर खाने की अनुमति न दे उस समय अमृत को भी विप के समान त्याग देना चाहिये।
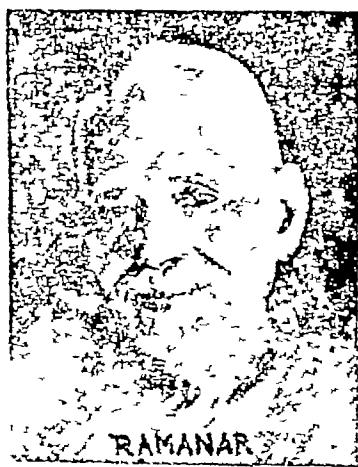
जिस प्रकार भूख से अधिक खाना हानि करता है, उसी प्रकार वहुत कम खाना भी ठीक नही। आवश्यकता से कम भोजन करने पर दुर्वलता, ग्लानि, अनिद्रा रोग और वायु के रोग उत्पन्न होते हैं। भोजन की मात्रा के लिये कोई तोल नियत करना ठीक नही। वल्कि आहारमात्रा का भूख के हिसाव से जो अन्दाजा बतलाया गया है, वही ठीक है। अत जितना भोजन सुख से पच सके उतना ही खाना चाहिये, चाहे वह सेर भर हो या पाव भर।

●●

सर्वोत्तम नियम :

"सीमित मात्रा मे सात्विक-भोजन पर वधे रहने के पथ्य-नियम का निर्वाह सभी नियमो मे सर्वोत्तम है। मस्तिष्क के सात्विकगुणो के विकास मे यह अधिक सहायक होता है। आत्म-विचार के अभ्यास मे अथवा 'स्व' की खोज मे ये अपने क्रम मे सहायता करते हैं।"

—रमण महर्षि

पूर्व ऋषिप्रणीत भोजन मे चावल, दाल, जो, गेहूँ, मूग, उडद, घी, तेल, दूध, शक्कर, खाड, मिश्री आदि उचित मात्रा मे लेना श्रेयस्कर है।

—बुद्ध

क्या यही गति है हमारे विकास की जो एक कारतूस मे गतिमान होकर मूक और निरीह प्राणी को मरण सौंपती है ? धन्य है हमारी मारक-शक्ति, धन्य है हमारे अन्वेषण ! धन्य है बुद्धि का यह सदुपयोग !

कावस, कबूतर और रंजन !

—राजेन्द्र नगावत
[नई पीढी के कवि व गीतकार]

ठाय ! ठाय !

गुम्बद पर बैठे कबूतरो मे से एक-एक कर पाच कबूतर टपक पडे।

वे सब लोग चिहुँके। कावस का निशाना अचूक था। पाँच कबूतर धराशायी हो चुके थे। कोई निशाना खाली नही गया।

अचूक निशाने की सराहना करते वे भूल चुके थे, कबूतर धराशायी कर देना जहाँ एक ओर खेल है, वही दूसरी ओर वह एक जघन्य-कृत्य होता है और इस हत्या-प्रसग मे वे सब साझीदार थे। उनकी आँखो मे दमक थी, वे उल्लास से भरे पूरे थे। सच, कितना निर्मम होता है कभी-कभी उल्लास का अनुभव।

प्रसन्नता से कूदते-फादते, हाथो मे कबूतर थामे वे अपने कमरे मे लौट आए। कुछ रोज पहले ही उन्हे यह कमरा मैट्रिक की परीक्षा की

विशेष तैयारी के लिए 'अलाट' हुआ था। व्यवस्था का दुरुपयोग वे अपने मनचीते उपक्रमो द्वारा कर रहे थे और खुश हो रहे थे। कुछ क्षणो पहले जो कबूतर गुम्वद पर सजीव किल्लोल करते इधर-उधर उछल रहे थे, अव उनकी निष्प्राण देह उनके हाथो मे झूल रही थी। उनकी मुट्ठियाँ भीची हुई थी। शायद उन्हे डर था, कवूतर फिर उड़ न-छू न हो जाएँ।

वे लोग 'मेस' मे साध्य-भोजन के लिए मना कर चुके थे। आज वे अपने साध्य-भोज को 'फीस्ट' का स्वरूप देना चाहते थे। मास-भक्षण मे भी एक पर्व जैसा उत्साह, वैसी ही ललक उन सवमे झलक रही थी। एक चेहरा अवश्य कुछ खिचा-खिचा था। कुछ उदासीन-सा, लेकिन अपने साथियो के उल्लास मे उसे भी शामिल होना ही पडा। व्यवहार का यह निर्वाह उसे वोझिल लग रहा था। वह चेहरा था रजन का। रजन एक ऐसे परिवार की इकाई था जहा माम-भक्षण की कल्पना भी नही की जा सकती थी। लेकिन उम दिन उसका मन एक जिज्ञासा से भर उठा था। वह सोच रहा था क्या माम-भक्षण वास्तव मे मुखप्रद अनुभव है ? वह एक ऐसे सुख की तलाश मे भाग रहा था जो उसे अनभोगे भोग से परितृप्त कर देने को आमत्रित कर रहा था। एक ओर उसकी आत्मा उसे रोक रही थी, दूसरी ओर उसके साथी उसे सुख प्रदान करनेवाले फरिश्ते लगते। वह समझ नही पा रहा था, वह क्या करने जा रहा है। वह एक ऐसे रास्ते का पथिक वन चुका था, जिसके गतव्य के प्रति खुद उसे सन्देह था।

कमरे मे पहुँचकर उन्होंने कवूतरो को वेरहमी से फर्श पर फेंका। रजन ने अपने हाथ का कवूतर धीरे से कवूतरो के उस ढेर मे रख दिया। रजन एकटक उस ढेर को देख रहा था। वह सोच रहा था अभी कोई करिश्मा होगा और ये उड जायेंगे। लेकिन ऐसा कुछ हुआ नही। खून के कुछ कतरे कवूतरो के पख पर उभर कर तेजी से काले पडते जा रहे थे। वाहर आकाश पर भी अधकार का आवरण ढुलकता चला जा रहा था। रजन को अपने साथियो के चेहरे वडे घिनौने लग रहे थे। उनके कुटिल अट्टहास मे वह साथ नही दे पा रहा था।

वे सव कवूतरो के पास वैठ गये। रजन को लगा कि जैसे उसकी हड्डियो मे सडन व्याप गई है और वे गल-गल कर गिरने लगी हैं। उसे लगा जैसे वह मात्र एक आकार रह गया है, भीतर से विलकुल खोखला हो चुका है। तभी एक साथी ने उसके सकोच को भाप लिया और एक भद्दी-सी गाली देते हुए उसके वनियेपन को धिक्कारा, सव लोग हँस पडे। वह खिसिया गया।

वे सब कबूतरो के पख नोचने लगे। इस राक्षसी-कृत्य मे रजन को भी जुटना पडा। करुणा और ममत्व के उनके स्रोत सूख चुके थे। किसी के प्रति आर्द्र हो उठने की उनकी सवेदना शून्य हो चुकी थी। रजन शून्य होने के प्रयास मे सफल नही हो पा रहा था।

कुछ ही क्षणो मे रजन यह देखकर विस्मय से भर उठा कि अभी-अभी पाँच कबूतर थे, वहाँ पखो का बहुत बडा ढेर तैयार हो गया। कितना सरक्षण प्रदान किया है प्रकृति ने प्राणी को, लेकिन मनुष्य ने कैसी तीक्ष्ण बुद्धि इजाद कर उसे झुठला दिया। क्या यही गति है हमारे विकास की, जो एक कारतूस मे गतिमान होकर मूक व निरीह प्राणी को मरण सौपती है। धन्य है हमारी मारक शक्ति, धन्य है हमारे अन्वेषण और धन्य है बुद्धि का यह सदुपयोग।

रजन के पास बैठे साथी ने एक कबूतर की गर्दन को थाम कर रजन से छुरी फेरने को कहा। जैसे ही गर्दन से आवरण हटा ज्वार के कुछ पूरे के पूरे दाने छिटक पडे। रजन चौका, साथी हँस पडा। उसने जब रजन के चौंकने की बात दोहरायी तो सब रजन का परिहास करने लगे।

दो-एक साथी चूल्हा जलाने मे मशगूल थे। एक ने खपच्ची बजा-बजाकर गाना शुरू कर दिया और एक ने कबूतरो के पख हाथो मे लेकर नाचना प्रारम्भ कर दिया। वे लोग रजन को लक्ष्य करके कुछ भद्दे सकेतो द्वारा उसे छेडने लगे।

सहसा रजन को लगा कि उसकी गर्दन पर कोई तीक्ष्ण प्रहार हुआ है या कोई नस चटक गई है। उसे लगा कि गर्दन पर खून बहने लगा है। वह दहल उठा और जोर से चीखा। उसका बदन थरथर काप रहा था।

उसके साथी उसके इर्दगिर्द इकट्ठे हो गये। सहमा हुआ वह उन्हे निरख रहा था। बार-बार पूछे जाने पर उसने अस्पष्ट आवाज मे केवल" खून
खू न" कहा। गर्दन से बहता हुआ एक रेला हाथो मे लिपटाकर उनके सामने कर दिया। वे सब हँस पडे—

"अरे यह तो पसीना है।" वे ठहाके मारकर हँस रहे थे। उनके पेट मे हँसते-हँसते बल पड गये। उनके चेहरे बहुत विकृत हो उठे।

अब रजन का एक पल भी वहाँ रुक पाना सभव नही था। वह उठा, भागा और भागता ही चला गया। गुम्बद तक पहुच कर उसके पाव ठिठक गये। उसने नजर उठाकर देखा—गुम्बद चाद-प्रकाश से दीप्त था। उसकी स्मृति मे एक बार फिर कबूतर कौंध गये, वह सुबकने लगा।

तभी उसका अभिन्न मित्र गोविन्द उधर से गुजरा। उसे इस स्थिति मे देखकर वह आश्चर्य से भर उठा। पूछा—

"कहाँ था दिन भर से ? मैंने तुझे बहुत ढूंढा !"

उसने कोई प्रत्युत्तर नही दिया। बस, सिसकियाँ भर रोते ही चला जा रहा था। गोविन्द ने उसे दिलासा दी व जानना चाहा कि आखिर बात क्या है ? जितना अधिक वह दिलासा देता, रुलाई का वेग उतना ही बढ जाता। रजन हिचकियाँ भर रहा था, उसका कण्ठ अवरुद्ध हो चुका था। वह कुछ भी व्यक्त नही कर पा रहा था। एकबार उसने फिर गुम्बद की ओर देखा और गोविन्द के काँधे पर सिर रखकर रोने लगा।

[सुभाष मार्ग, रतलाम (म० प्र०)]

●●

अहिंसक समाजरचना और शाकाहार

अहिंसक समाजरचना का अर्थ ही यह है कि जिस समाज मे मनुष्य को ही नहीं, प्राणियो को भी सुख-शान्ति से जीने का अवसर मिले, सबको रोटी, रोजी, सुरक्षा-शान्ति प्राप्त हो। सबका यह जीवन सह-अस्तित्व की भावना पर टिका हो, और ऐसा तभी हो सकता है, जब समाज मे शाकाहार का अधिक प्रचार-प्रसार हो। शाकाहार से ही समाज में सह-अस्तित्व, न्याय, सुरक्षा और शान्तिपूर्वक जीने की मनोवृति बन सकती है।

—मुनि श्री नेमिचन्द्र
(अहिंसक समाज-रचना के प्रयोग मे व्यस्त, सर्वोदय विचार के सक्रिय समर्थक)

हमारे सामने दो तरह के समाज हैं। एक समाज ऐसा है, जिसमे लोग बडे ही ऐशोआराम की जिंदगी बिताते हैं। उन्हे बात-बात मे क्रोध आ जाता है। जरा-सी बात पर वे झल्ला उठते हैं। वे अपनी जाति से भिन्न जातिवालो से या कई बार तो अपनी जाति में अपने परिवार के अतिरिक्त परिवार से घृणा, ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिस्पर्धा करने लगते है। उन्हे अपने बच्चो तक से भी कई बार नफरत हो जाती है। वे मास, मछली और अडे खूब खाते हैं, पर उनकी तदुरुस्ती बिगडी रहती है। प्राय उनका स्वभाव चिड़चिडा रहता है। शराब के नशे मे चूर रहना और मौका लगने पर परस्त्री को छेड बैठना तो उनका स्वभाव बन गया है। उनका दिमाग क्रोध से उत्तेजित हो उठता

है। हत्या, दगा, मारपीट, हुल्लड ये तो ऐसे समाज के लोगो के रोजमर्रा के काम है। आवेश मे आकर तुरन्त दूसरे पर हमला कर बैठना, मरने-मारने को तैयार हो जाना, लडाई के विना वात न करना, ये सव चीजे ऐसे समाज के अग वन गए है। इस समाज मे परम्परागत नई पीढी भी इसी प्रकार की झनूनी और खूख्वार वनती जाती है। परन्तु इतना सव उखाडपछाड करने के वावजूद भी इस समाज के लोगो मे शान्ति का अभाव है, उनके चेहरे और मन पर वेचैनी छाई रहती है।

दूसरा समाज ऐसा है, जिसमे लोग सात्त्विक आनन्द और आमोदप्रमोद की जिदगी वसर करते हैं। उनमे क्रोध भी भडकता है तो कारणवश और वह भी धैर्य तथा गाम्भीर्य की कई मजिले पार करने के वाद। जरा जरा सी वात पर वे भडकते नही। हर मसले को शान्ति से निपटाने का प्रयत्न करते है। वे दूसरी जातिवालो से घृणा, द्वेष, ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा न करके अपनी जाति या समाज को ही सुधारने और अच्छा वनाने की कोशिश करते है। अपने वालको से वे प्यार करते है, उनमे आपस मे मेलजोल के सस्कार भरते हैं, किन्तु जो वालक अवारा है, मासाहारी है, शरावी है, ऐसे खराव वालको की सगति से वचाने का जरूर प्रयत्न करते हैं। वे फल, दूध, वनस्पति, अनाज सागभाजी आदि शाकाहारीय पदार्थो का ही सेवन करते हैं। जिनके सेवन से उनकी तदुरुस्ती सहसा विगडती नही। उनमे कार्य करने की स्फूर्ति वनी रहती है। उनमे अपनी जाति, समाज और राष्ट्र के प्रति प्रेम कम नही होता। समय आने पर वे जाति, समाज और राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व होमने को तैयार रहते हैं। वात-वात मे उत्तेजित हो जाना, सहसा किसी पर हमला कर बैठना, मरने-मारने को उतारू हो जाना आदि वातें ऐसे समाज के लोगो के स्वभाव मे नहीं होता। सात्त्विक आहार के कारण ऐसे समाज के लोगो की दृष्टि मे मद्यपान, मासाहार, परस्त्रीगमन, शिकार, जूआ, चोरी आदि चीजे भयकर अपराध हैं। इन अपराधो के करने की उनके जी मे भी नही आती। उनकी प्रकृति शान्त और गम्भीर होती है और तदनुसार उनकी आकृति भी सौम्य और वात्सल्यमयी होती है। उन्हे मनुष्यो पर ही नहो, पशुपक्षियो पर भी हार्दिक प्रेम होता है। वे उन्हे मारने-पीटने या उनकी हत्या करने की भी नही सोचते। अपनी नई पीढी को भी वे अपने ही जैसी सुसस्कारी वनाते है। क्रूरता और निर्दयता उनमे नाममात्र को नही होती। न वे समाज या राष्ट्र के प्रति द्रोह करने या उसमे दगे-फिसाद करने की सोच सकते हैं। इस समाज के लोगो मे मस्ती है, शान्ति है और सतोष है।

इन दोनो समाजो के चित्र मैंने प्रस्तुत किये है। इनमे से पहला आसुरी-समाज है। इसे पूर्णतया हिंसक-समाज तो नही कह सकते, क्योकि पूर्ण हिंसा से किसी भी समाज का जीवन चलना असभव है। अहिंसा को किसी न किसी रूप मे अपनानी ही पडती है, लेकिन अहिंसा इतनी कम है कि आटे मे नमक की तरह वह छिपी और हिंसा के साथ ही मिली रहती है। हिंसा तो इस समाज मे प्रगट है। दूसरी समाज को हम अहिंसक-समाज कहते है।

मांसाहारी समाज—अशान्ति का घर :

• मनुष्य चाहता तो है, सुखशान्ति से जीना ही। लेकिन वह जिस प्रकार का तामसिक आहार करता है, प्राणियो की जिंदगी को लूटकर उसके मास पर अपना जीवन चलाता है, उससे भला सुखशान्ति कैसे मिल जायगी? दूसरो को अशान्ति पहुचा कर शान्ति चाहना मृगमरीचिका से पानी पाने के समान है। यही कारण है कि दूसरे प्राणियो के मास के सेवन से उनकी प्रकृति क्रूर, उद्दण्ड और विद्रोही बन जाती है। आपस मे लडने और एक दूसरे पर प्रहार करने की मनोवृत्ति बनने का मूलकारण उनके द्वारा तामसिक और प्राणियो को मारकर बने हुए आहार का सेवन करना है। अपनी तामसिक प्रकृति के कारण ही उन्हे शान्ति नही मिलती। अपराधी मनोवृत्ति के कारण ही उनके मन पर भय, आतक, बेचैनी और उन्माद छाया रहता है। और अपराधी मनोवृत्ति बनने का प्रमुख कारण मासाहार है। मानसिक अशान्ति के अलावा आसुरी-समाज के लोगो को आत्मिक-शान्ति भी नही मिलती। उनकी आत्मा भी परलोक मे अपने कुकृत्यो के फलस्वरूप भयकर दण्ड मिलने की आशका से कापती रहती है। मामाहार करते समय भी कई लोगो की आत्मा मे ऐसा भय छा जाता है कि हमे इन प्राणियो के मास खाने का बदला इमी रूप मे चुकाना होगा। कई मासाहारी लोग, जो मास के लिए स्वय प्राणियो का शिकार करते हैं, उस समय भी उन प्राणियो द्वारा सामना करने और उनके प्राणहरण करने का डर बना रहता है। क्रूर जिंदगी के फलस्वरूप उन्हे प्राय ऐसे डरावने स्वप्न भी आते है, जिन्हे देखकर उनकी आत्मा काप उठती है। शारीरिक अशान्ति भी मासाहारी आसुरी-समाज के लोगो को कम नही होती। क्योकि मासाहार से शरीर मे कई भयकर बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, जिनका इलाज भी मुश्किल से हो पाता है। कई दफा ऐसे रोगी प्राणियो के मास का सेवन करने से उस प्राणी का रोग उस मासभोजी को लग जाता है। बीमारी शारीरिक अशान्ति का मुख्य कारण है ही।

वौद्धिक-दृष्टि से पिछड़ा समाज ·

वौद्धिक-दृष्टि से भी मासाहारी समाज प्राय पिछडा होता है, क्योंकि तामसिक भोजन करने से वुद्धि मे जडता आ जानी स्वाभाविक है। इसलिए मामाहार करनेवाले और उनकी सन्तान भी व्यवसायात्मिका, सात्त्विक और स्थिरवुद्धि की नही वनती। प्राय देखा गया है कि जिन लोगो मे मासाहार का रिवाज है, उनमे किसी भी समस्या पर न्यायोचित और शुद्ध निर्णय करने की वुद्धि नही होती। वे वहुधा उलटा और ऊटपटाग निर्णय ही किया करते हैं। इसलिए वौद्धिक-दृष्टि से मासाहारी समाज प्रगतिशील नही होता। वह प्राय युद्ध, कलह या वादविवाद से ही किसी मसले का हल सोचता है।

वौद्धिक-दृष्टि से प्रगतिशील समाज :

अहिसक और शाकाहारी समाज प्राय वौद्धिक-दृष्टि से प्रगतिशील मिलता है। ऐसे समाज के लोगो की वुद्धि उतावली मे आ कर गलत निर्णय नही करती। केवल अक्षरज्ञान पढा लिखा या वैज्ञानिक,डाक्टर, वकील ही वुद्धिमान नही माना जाता। वुद्धिमान और स्थिरवुद्धिवाला वही समझा जाता है, जिसकी वुद्धि किसी भी मसले के हर पहलू पर विचार करके शान्ति से न्यायसगत निर्णय कर लेती हो। भारत के गाँवो के सात्त्विक शाकभोजी लोग वहुत-से ऐसे मिलेंगे, जो पढेलिखे वहुत कम है, लेकिन उनकी सूझवूझ, निर्णयशक्ति, स्फुरणाशक्ति निरीक्षणपरीक्षणशक्ति और तर्कशक्ति गजव की है। और उनमे ऐसी शक्ति उनके शाकाहारी होने के परिणामस्वरूप होती है। उपनिषद् मे स्पष्ट कहा गया है—

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।'

'आहार की शुद्धि होने पर अन्त करण की शुद्धि होती है और अन्त करण की शुद्धि होने पर स्मृति अचल हो जाती है।'

यही कारण है कि शाकाहारपरायण अहिसक-समाज वौद्धिक-दृष्टि से वहुत उन्नत पाया जाता है।

शाकाहार से ही अहिसक-समाजरचना ·

अहिसक-समाजरचना का अर्थ ही यह है कि जिस समाज मे मनुष्यो को ही नही, दूसरे प्राणियो को भी सुखशान्ति से जीने का अवसर मिले, सवको रोटी, रोजी, सुरक्षा शान्ति प्राप्त हो, सवका जीवन सहअस्तित्व की भावना पर टिका हो। और ऐसा तभी हो सकता है, जव समाज मे शाकाहार का

अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो। शाकाहार से ही समाज मे सहअस्तित्व, न्याय, सुरक्षा और शान्तिपूर्वक जीने की मनोवृत्ति वन सकती है।

मनुष्य जव से वर्वर,नरभक्षी एव अन्य-प्राणिभक्षी जीवन छोडकर सामाजिक वना है, तव से उसने हिंसकवृत्तियाँ हटाई हैं। परस्पर लडना भिडना, मारपीट और सघर्ष छोडकर अहिंसक ढग से समस्या को हल करना सीखा है। लेकिन मासाहार तो घृणा, द्वेष, शत्रुता, हिंसा, अनाचार, मद्यमान, अशान्ति, मार-काट, और वैरविरोध आदि हिंसक-वृत्तियो को प्रोत्साहन देता है, जो समाज मे शान्ति, प्रेम, सद्भावना, सहयोग और सहिष्णुता की भावना के विरुद्ध है। इसीकारण भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था—"यदि दुनिया से युद्धो को मिटाना है तो मासाहार को मिटाना होगा।" एडवर्ड एच० किरवी (चेयरमैन वेजीटेरियन सोसाइटी) ने इसी वात का समर्थन किया है—"शाकाहारी नीति का अनुसरण करने से ही पृथ्वी पर शान्ति, प्रेम और आनन्द चिरकाल तक वने रहेगे।" अत दुनिया की सवसे वेहतर समाजरचना अहिंसक है और उसे स्थापित करना है तो सामाजिकता के इस पहलू की दृष्टि से शाकाहार को अपनाए विना कोई चारा नही। मासाहार स्वय ही हिंसा की बुनियाद पर टिका है, उससे अहिंसक समाजरचना कदापि नही हो सकती। इसीलिए पाश्चात्य विद्वान् मोरिस सी० कीघली ने लिखा है कि "यदि पृथ्वी पर स्वर्ग का साम्राज्य स्थापित करना है तो पहले कदम के रूप मे मास भोजन करना सर्वथा वर्जनीय करना होगा।" इसलिए यह नि सदेह कहा जा सकता है कि मासाहार से अहिंसक समाजरचना नही हो सकेगी, वह तो शाकाहार से ही सभव है।

समाजवाद भी शाकाहारिता पर निर्भर

आज दुनिया के अधिकाश विचारक समाजवाद की ओर झुके हुए हैं। परन्तु सही माने मे समाजवाद तभी आ सकता है जव समाज मे सवके साथ न्याय और प्रेमभाव का व्यवहार किया जायगा। अपराधो मे वृद्धि कम होती जायगी, समाज मे क्रूर, स्वार्थी, उद्दण्ड, अन्यायी और अत्याचारी व्यक्ति कम होंगे, होगे तो भी दवे रहेगे। समाज के प्रत्येक व्यक्ति मे 'जीओ और जीने दो' की, परस्पर सहयोग की एव समाज को मानसिक, वौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत और विकसित वनाने की प्रवल भावना होगी। और ऐसी पवित्र भावना शाकाहारियो मे ही हो सकती है। उन्ही मे सामाजिकता और सह-अस्तित्व की भावना पनप सकती है। मासाहारी व्यक्ति निर्दोष प्राणियो की हिंसा पर जीनेवाले होने के कारण सामाजिकता के मूल पर ही
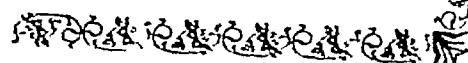
प्रहार करते है। मासाहारी समाज मे दूसरो को मार कर जीने की वृत्ति वाले हैं, इसलिए आज पशु-पक्षियो की हत्या पर जी रहे हैं, कल वे मनुष्यो की हत्या भी वेखटके कर सकते हैं। क्योंकि मासाहार की चाट न्याय-अन्याय को नही गिनती, वह मनुष्य को मनुष्य की हत्या के लिए विवश कर सकती है। कही-कही मासूम वच्चो को अपहरण करने या गायव करने की घटना के पीछे मासाहार ही कारण वताया जाता है। अत मासाहार सात्त्विक भोजन न होने से सेवन करनेवालो मे क्रूर भावना फैलाता है और क्रूरभावना का फैलाव समाजवाद को दूर ढकेलता है। सचमुच, मासाहार से मनुष्य समाजवाद के आदर्शो से दूर हटता जाता है, क्योकि मासाहार से तामसिकवृत्तियाँ वढती हैं, जिसके फलस्वरूप समाज मे अतिस्वार्थ, अतिस्वच्छदता, अनुशासन-हीनता तथा चोरी, हत्या, लूट आदि विभिन्न भयकर अपराधो मे वृद्धि होती जाती है, जिससे नागरिको का जीवन अशान्त, अव्यवस्थित और शकाग्रस्त वना रहता है। यही असामाजिकता के लक्षण है। अत राष्ट्र मे समाजवाद को लाने मे भी मासाहार वहुत वडा रोडा है।

शाकाहार : लोकतत्र को लोकलक्षी व धर्मलक्षी वनाने में सहायक

अहिसक समाजरचना मे लोकतत्रीय शासन-प्रणाली अहिसा के वहुत अधिक निकट है। एकतत्रीय राज्य मे भी हिसा का खतरा अधिक है तथा अधिनायकवादी राज्य (साम्यवादी-प्रणाली) मे तो अहिसा को विकसित होने को अवकाश ही नही है। वहाँ तो जिसने भी गलत शासन-नीति के खिलाफ आवाज उठाई या अपना मत प्रगट किया, उसे गोली का शिकार वना दिया जाता है। अत लोकतत्रीयप्रणाली मे व्यक्तिविकास और सामाजिकता दोनो को समानरूप से पनपने का अवकाश है, परन्तु लोकतत्र मे ये दोनो तभी पनप सकते हैं जव लोकतत्रीय शासन मे मासाहार के वदले शाकाहार जनजीवन मे स्थान पाए। क्योंकि शाकाहार से ही जनता मे परस्पर मिलजुल कर रहने, सवके स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझने और हितकर वातो को अपनाने का विचार पैदा होगा।

अत लोकतत्र को लोकलक्षी वनाने के लिए भी राष्ट्र मे शाकाहार को प्रश्रय देना आवश्यक है। इतना ही नही, लोकतत्र को सत्य-अहिसा आदि धर्मलक्षी वनाने मे भी शाकाहार का प्रसार आवश्यक है। अन्यथा, मासाहार से जनता अधर्मलक्षी (विविध अपराधो की आदी होकर मारकाट, झगडे, आन्तरिक विग्रह आदि ही फैलाएगी। राष्ट्र मे शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित नही हो सकेगी। शाकाहार ही एक ऐसा रसायन है, जिसके जरिये लोकतत्र को सही माने मे लोकलक्षी तथा धर्माभिमुख वनाने के जन-सस्कार वद्धमूल किये जा सकते है।

सामाजिक न्याय भी शाकाहार से

सामाजिक न्याय भी अहिंसक समाज का मुख्य अग है। वह भी शाकाहार से ही समाज मे पनप सकता है, क्योकि जैसे मनुष्य को जीने का हक है, वैसे ही अन्य प्राणियो को भी। बल्कि सर्वोत्कृष्ट प्राणी होने के नाते मनुष्य से यही आशा रखी जा सकती है कि वह सभी प्राणियो को न्याय दे। परन्तु सामाजिक न्याय की दृष्टि से देखे तो मासाहारी मानव दूसरे प्राणियो के प्रति अन्यायकर्ता और अपराधी की तरह दण्डनीय एव घृणित है।

सभ्यता और सस्कृति की रक्षा शाकाहार से

उत्तम-सभ्यता और उच्च-सस्कृति अहिंसक समाजरचना के प्राण हैं। यह मनुष्य की सभ्यता ही थी कि उसने गाय, हाथी, घोडा, ऊँट, भैंस आदि जगली जानवरो को अपना प्यार दे कर सामाजिक भावना से उन्हें पालतू बना लिया। वैसे ही उसे अपनी सभ्यता को सुरक्षित रखने के हेतु मासाहार का सर्वथा त्याग करना चाहिए। अन्यथा, मनुष्य के सभ्य बनने की बात पर कोई विश्वास नही करेगा। क्वीन विक्टोरिया ने ठीक ही कहा था—"जिस सभ्यता मे असहाय और मूक जानवरो पर दया और प्रेम का भाव न सिखलाया जाता हो, वह पूर्ण नही है।" मासाहार से मनुष्य की सभ्यता और सस्कृति धूल मे मिल जायगी, सामाजिकता का नामशेष हो जायगा और मानवजाति मे बर्बरता और जगलीपन का ही अस्तित्व रहेगा। सस्कृति की उच्चता भी समाज की धर्मभावना मे वृद्धि से सम्बन्धित है, जो शाकाहार से ही हो सकती है।

इन सब दृष्टियो से शाकाहार ही अहिंसक समाजरचना को सर्वांगपूर्ण बनाने मे अद्वितीय सहायक है।

[सम्मतिज्ञानपीठ—आगरा]

★

भोजन से पूर्व सोचिए :

त्यक्तेन भुञ्जीथा : —यजुर्वेद ४०।१

दूसरो के लिए कुछ छोडकर खाइए।

केवलाघो भवति केवलादी— —ऋग्वेद १०।१७।१६

अकेला खानेवाला केवल पाप का भोग करता है।

साहू हुज्जामि तारिओ— —दशवैकालिक ५।४६

अच्छा हो, मेरे भोजन मे से कुछ अश दूसरे ग्रहण कर मुझे अनुग्रहीत करें-तारें।

कम खाना और गमखाना अक्लमंदी है ।

दो लघु कथाएं—

अन्न और मन

—अक्षयकुमार रांका

[उदीयमान, लगनशील रचनाकार]

एक दिन लोगो ने निश्चय किया कि आज वे महात्मा का चमत्कार देखकर ही जाएंगे। दोपहर तक लोग चमत्कार की प्रतीक्षा मे बैठे रहे। महात्मा के विषय मे प्रसिद्ध था कि वे चनो की जलेबिया बना देते हैं और एक कटोरी चने के अलावा वे किसी से कुछ भी ग्रहण नही करते।

महात्मा ने दोपहर के बाद अपने शिष्य को पुकार कर कहा—वत्स माधव ! अब वे जलेबिया ले आओ !

माधव ने कटोरी भर भीगे चने उनके सामने लाकर रखे। वे चाव से खाने लगे।

एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया—"प्रभो ! आपने तो जलेबिया मगाई थी, किन्तु ये तो चने ही हैं ?"

"हा वत्स, जब तक मुझे भूख नही लगी थी तब तक ये मेरे लिये चने ही थे, किन्तु अब जबकि कडकडाकर तेज भूख लगी है तो ये मेरे लिए जलेबियो से भी अधिक मीठे व गुणकारी हो गये हैं। तेज भूख लगने पर किया गया भोजन ही गुणकारी होता है वरना वह शरीर के लिये पलीते का काम करता है।"

कई दिनो का अनुनय-विनय के बाद एक सिद्ध महात्मा राजा के प्रासाद मे पधारे। राजा ने उनकी खूब आवभगत की, अनेको प्रकार के मिष्ठान्न तैयार

करवाये। महात्मा ने कहा—मैं एक दिन सिर्फ एक ही अन्न ग्रहण करता हू राजा ने खीर का पात्र उनके सम्मुख रख दिया। खीर खाने के बाद महात्मा ने आराम करने की इच्छा प्रगट की, उन्हे एकात दिया गया।

सामने खूटी पर रानी का नौ-लखा हार टगा हुआ था। साधु की नजर हार पर गई—रत्नादिक-जटित आभूषण की जगमगाहट मे उनकी आंखे चु धिया गई वे उठे—हार उतारकर उन्होने अपनी झोली के सुपुर्द कर दिया और वापिस लेट गये।

कुछ देर बाद कोलाहल से उनकी आख खुली।

राजा आदि ने भीतर प्रवेश किया—उस कक्ष मे भी हार नही मिला। राजा ने प्रधान दासी पर आरोप लगाया और उसे कोडो मे पीटने की आज्ञा दी। दासी कोडो के आघात से चीत्कार कर रही थी—उसकी दारुण-वेदना और क्रदन से साधु के अतर मे करुणा प्रगटी। वे स्नान-गृह मे गये, गले मे अगुली डालकर उल्टी की—वापिस बाहर आये—"रुक जाओ मत मारो इसे, हार मेरी झोली मे है।" साधु ने ग्लानिमय स्वरो से कहा।

"महाराज— आप ?" विश्वास नही हुआ राजा को, उसने सोचा दासी को बचाने के लिए साधु चमत्कार दिखाना चाहते है।

'हा, मैं ही चोर हू।' तुमने मुझे चोरी का अन्न खिला दिया था, इसीलिए मेरी मति विगड गई थी, मुझमे चोर-वृत्ति जाग गई थी। "मनुष्य जैसा अन्न खाता है वैसा ही उसका मन हो जाता है" इसीलिए मैं तुम्हारा निमत्रण स्वीकार नही कर रहा था कि राजाओ के यहा जाने कैसे-कैसे अन्न आते हैं ? कहते हुए साधु ने हार निकाल कर फेंक दिया और वहा से बाहर निकल गये।

राजा ने तहकीकात करवाई तो मालूम हुआ कि सचमुच कुछ चावल के बोरे चोरो पर छापे मार कर बरामद किये गये थे और उन्ही चावलो की खीर बनाई गई थी।

[भारत जैन-महामण्डल, बम्बई—१]

एक बार खानेवाला महात्मा, दो बार संभलकर खानेवाला बुद्धिमान और दिनभर बिना विवेक खानेवाला पशु होता है।

—बुद्ध

क्षु | धा | की | आ | ग

—मुनिश्री मानमल (बीदासर)
[आचार्य श्री तुलसी के शिष्य, सुमधुर गीत रचयिता]

कोटि कोटि जन क्षुधा-आग मे, नित ही जलते है।
कुछ जन अति खाकर के, मृत्यु के पहले ही चल देते है।

भूखा कुछ भी कर सकता है
अरे! पाप का कोई काम!
मूक क्षणो मे जी न सकेंगे
ये दर्दीले धरती धाम!

युग के साथ अनेको यहाँ पर आहो के जत्थे जलते है।

दीप-शिखा पर गिरनेवाला
शलभ कहाँ तक जी पाता है?
अति का अन्त कहाँ सुखकर
कब अमृत वह पी पाता है?

अति भोजन को लेनेवाले, स्वयं-स्वय को ही छलते है।।

नई हवाएँ जो कुछ कहती
आवाजें उनकी सुन लेना!
अगडाई लेनी होगी अब
मोड शीघ्रता से दे देना!

गिरते ही वह ताप देखलो, हिमकण तेजी से गलते है।

आहार सम्बन्धी जैन-दृष्टिकोण

—अगरचन्द नाहटा

[प्राचीन साहित्य-गवेषक, सुप्रसिद्ध लेखक]

जैनधर्म मे आहार विवेक मे पहला दृष्टिकोण अहिंसा का है और दूसरा दृष्टिकोण है—स्वस्थ रहने का। प्राणीमात्र सुख चाहता है, किन्तु सुख केवल शारीरिक तुष्टि मे नहीं, आत्मा की उत्कर्ष अवस्था मे है⋯⋯।

भारतीय सस्कृति धर्म या आध्यात्मप्रधान है। इसलिए आहार शरीर और जीवन धारण का प्रधान अग है। पर उसमे भी भारतीय मनीषियो ने धार्मिक भावना को प्रधानता दी है। आयुर्वेद के ग्रन्थो मे भी लिखा है—"शरीरमाद्य खलु धर्म-साधनम्" अर्थात् 'धर्म साधन का प्रधान कारण शरीर है।' इसलिए शरीर की सुरक्षा और पोषण आवश्यक है। यह सही है कि शरीर आहार के बिना चल नही सकता, पर ऐसी वस्तुओ का आहार न किया जाये जिनसे धर्म-साधना मे बाधा पडे। जैसे मादक और उत्तेजक एव अभक्ष्य पदार्थ

खाने से शरीर और मन मे विकार उत्पन्न होते हैं, फलत धर्म-साधना ठीक से नही की जा सकती। इसलिए खाद्याखाद्य का विवेक बहुत जरूरी होता है। जैनधर्म का दृष्टिकोण इस विषय मे और भी स्पष्ट और उच्च-कोटि का है और इसी का परिणाम है कि जैन-समाज मास-मदिरा आदि अनेक अखाद्य वस्तुओ मे बचा रहा है। सात्विक और शुद्ध आहार, वह भी भूख से कम खाया जाय और समय-समय पर उपवास आदि तपस्या के द्वारा जो भी पेट मे मल जमा हो जाता है, उसका सशोधन कर दिया जाता है, जिससे शरीर स्वस्थ रहे, साथ ही मानसिक विकार भी न बढे। फलत धर्म-साधना समुचित रूप से होती रहे। खाना स्वाद या विकार बढाने के लिए नही होकर शरीर को सबल, स्वस्थ बनाये रखने के लिए ही किया जाये। शरीर एव आहार के साथ मन का घनिष्ट सम्बन्ध है और मन का आत्मा के साथ।

जैन-ग्रथो के अनुसार सभ्यता के प्रारभिक काल मे मानव-समाज शुद्ध फलाहारी था। भगवान ऋषभदेव के समय तक लम्बे अर्से से यही परपरा चली आ रही थी। युगलिक-पुरुष और नारी तत्कालीन १० प्रकार के वृक्षो से अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर लेते थे। उन वृक्षो को 'कल्पवृक्ष' की सज्ञा दी गई। फलाहार ही उस समय जीवन का आधार था।

वैदिक-सस्कृति के आधार से इस सम्बन्ध मे विपरीत बाते प्रचलित हो गई है कि प्राचीन काल मे भारतीय जनता मासाहारी थी। शिकार के द्वारा पशु-पक्षियो की हत्या करके वे अपना पेट भरते थे। यज्ञो मे पशु-बलि दी जाती थी वास्तव मे यह सब बातें जैन-ग्रथानुसार आदिम-युग की न होकर उसके बाद के युग की हो सकती है।

जैन-धर्म अहिसा प्रधान है। तीर्थंकरो ने स्पष्ट कहा है—कि "प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है, सुख चाहता है, दुख और मरण कोई नही चाहता।" अत. किसी भी प्राणी को किसी भी तरह से कष्ट देना, हिंसा करना अधर्म या पाप है। इस सिद्धात के अनुसार मासाहार तो विधेय हो ही नही सकता। प्रकृति ने अनेक तरह के फल-शाक अन्नादि खाद्य-पदार्थ उत्पन्न किये हैं। जिनसे हमारा शरीर पुष्ट और निरोग रह सकता है। आयुर्वेद मे भी औषधि के रूप मे वनो की जडी-बूटियो और काष्ठादिक औषधियो को ही प्रधानता दी गई है। इससे स्पष्ट है कि आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति का मुख्य ध्येय क्या रहा है? यदि रोगोपशाति, साधारण रूप से काम मे आनेवाले खाद्य-पदार्थों और जडी-बूटियों से हो सकती है तो शरीर की पुष्टि भी उनके द्वारा ही अधिक होगी।

हमारे ऋषियों ने वनों-जगलो और पर्वतो मे घूम-घूमकर हजारो ऐसी जडी-बूटियो को खोज निकाला और उनके अनुभूत प्रयोगो से सभी प्रकार के रोगो का निवारण कर स्वास्थ्य और वल मे चमत्कारिक अभिवृद्धि की।

जैनधर्म मे आहार के सम्बन्ध मे पहला दृष्टिकोण अहिंसा का है। दूसरा दृष्टिकोण स्वस्थ रहने का है। इसलिए जिन खाद्य पदार्थों मे हिंसा अधिक होती है, उन्हे त्याज्य वतलाया गया है। मासाहार मे पशु-पक्षी आदि की प्रत्यक्ष हिंसा पचेन्द्रिय जीवो की होती ही है पर वनस्पतियो मे भी यह विवेक रखा गया कि अनन्तकाय—आलू, मूली आदि न खाये जाय। जैन-ग्र थो मे वनस्पति दो प्रकार की वतलाई गयी है। एक 'प्रत्येक' वनस्पति और दूसरी 'अनतकाय'। प्रत्येक वनस्पति मे एक शरीर मे एक जीव रहता है अनतकाय मे एक शरीर मे अनन्त जीव होते हैं, इसलिए अनतकाय को अभक्ष्य माना गया है। इसी तरह मदिरा भी अन्न, गुड आदि को सडाकर वनायी जाती है उसमे भी असख्य जीवो का नाश होता है। और मादक होने से मनुष्य की बुद्धि और विवेक पर उसका वहुत बुरा प्रभाव पडता है। धार्मिक साधना मे इसलिए मदिरापान को भी जैनधर्म मे सर्वथा त्याज्य माना गया। सात दुर्व्यसनो मे मास-मदिरा को स्थान दिया गया है और उन व्यसनो को छोडना प्रत्येक धर्मप्रेमी व्यक्ति के लिये आवश्यक माना गया है।

इतना ही नही, मधु को आयुर्वेदिक चिकित्सा मे वहुत उपयोगी माना गया है, पर उसमे होने वाली हिंसा को लक्ष्य मे लेते हुए जैन-ग्र थो मे उसको भी अभक्ष्य माना गया है। उसी तरह वहू-वीज आदि वनस्पतियो मे भी जिनमे जीवो की हिंसा अधिक होती है उनको भी नही खाने का विधान है। इससे जैनधर्म का प्रथम दृष्टिकोण—आहार मे हिंसा कम से कम हो, यह वहुत ही स्पष्ट हो जाता है।

जैनधर्म का आहार सम्वन्धी दूसरा दृष्टिकोण है—तन और मन की स्वस्थता, क्योकि रोगी शरीर और विकारी मनवाले व्यक्ति धर्म-साधमा ठीक से नही कर सकते। इसलिए जिन मादक और उत्तेजक पदार्थो से शरीर मे रोग उत्पन्न होता हो, मन विकारग्रस्त होता हो, उन पदार्थों को नही खाना चाहिये।

जैन-मुनियो के लिए भोजन एक समय करने का ही विधान है, जिससे आलस्य और प्रमाद न वढे, किया हुआ आहार ठीक से पच सके और साधना के लिए अधिकाधिक समय मिल सके। जितनी भूख हो उससे कुछ कम ही खाया जाय, इसे 'ऊणोदरी' तप माना गया है। स्वास्थ्य की दृष्टि से आयु-

वैदिक ग्रन्थो मे भी अधिक खाना रोगो की उत्पत्ति का कारण माना गया है, क्योकि जब आहार ठीक से पच नही सकेगा, पेट मे मल जमा होता रहेगा, अजीर्ण और अपच से अनेक रोग उत्पन्न होंगे ही।

जैन-मुनियो के लिए गर्म जल लेने का विधान है, वह भी स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वहुत उपयोगी है। क्योकि साधु-साध्वी निरन्तर जगह-जगह घूमते रहते हैं और भिन्न-भिन्न स्थानो का जल अनेक प्रकार का होता है। इससे रोगोत्पत्ति की सम्भावना रहती है। जल को गर्म कर लेने पर उसके दोष नष्ट हो जाते है अत स्वास्थ्य के लिए उष्ण-जल काफी उपयोगी होता है। स्वास्थ्य के लिए जल छानकर पीने का विधान भी वडा उपयोगी है।

आजकल प्राकृतिक-चिकित्सा मे उपवास को वहुत महत्व दिया गया है। पुराने से पुराने रोगो को मिटाने मे उपवास रामवाण औषधि मानी जाती है। इससे जमे व सडे हुए मल आदि दोषो का सहज ही निवारण हो जाता है। पेट की शुद्धि होने से वहुत से रोग स्वय ही ठीक हो जाते हैं। जैनधर्म मे उपवास,आयम्विल एकासणा, पोरसी, नोकारसी आदि १० तरह के पच्चखाण वतलाये गये हैं और वर्तमान सभी धर्मों की अपेक्षा जैनधर्म मे ये वाह्यतप अधिक सख्या मे किये जाते है। वास्तव मे इनके द्वारा स्वास्थ्य काफी अच्छा रहता है।

वहुत से अखाद्य पदार्थों से वचे रहने के कारण भी शरीर स्वस्थ रहता है। अत केवल धार्मिक दृष्टि मे ही नही, स्वास्थ्य की दृष्टि से भी तप वडा लाभदायक है यद्यपि इसमे विवेक की आवश्यकता है ही। नियत समय पर परिमित एव सात्विक आहार ग्रहण ही स्वास्थ्य का मूलमत्र है।

जैनधर्म मे रात्रि-भोजन का निषेध विशेषरूप से किया गया है। पाक्षिक-सूत्र आदि मे तो साधु-साध्वियो के पाँच महाव्रतो के वाद छठा व्रत 'रात्रि-भोजन' के त्याग पर वहुत जोर दिया गया है। इसमे अहिंसा का दृष्टिकोण तो मुख्य है ही पर स्वास्थ्य के लिए भी यह नियम वहुत उपयोगी है। अनेक विद्वानो ने इस वात की पुष्टि की है कि सूर्यास्त के पहले खा लेने से स्वास्थ्य वहुत अच्छा रहता है। सूर्य की किरणो का प्रभाव आहार और शरीर के लिये अच्छा माना गया है। पहले जमाने मे तो प्रकाश के साधन वहुत कम और मद थे इसलिए रात के समय खाद्य-पदार्थो मे वहुत से जीव-जतु पड जाते और रात को खानेवाले खाद्यपदार्थो के साथ उन कीटाणओ का भी आहार हो जाता था, जिससे काफी उलझन होती है। वैसे आज भी सूर्यास्त से पहले

भोजन कर लेना स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभप्रद ही माना जाता है। भोजन का पाचन ठीक से होने के लिये आवश्यक समय मिल जाता है जो कि रात को खाकर तुरत सोनेवालो को नही मिल सकता।

इस तरह हम देखते हैं कि अहिंसा-विवेक और स्वस्थ रहने के नियम जैन-धर्म मे काफी अच्छे रूप मे प्राप्त है। जैन-विद्वानो ने चिकित्सा सम्बन्धी भी अनेक ग्रन्थ बनाये हैं उनमे मास-मदिरा को स्थान नही दिया गया है। अन्य अनेक तरह की औषधिया बतलायी गयी है जिनमे हिंसा कम से कम हो। प्रकृति ने अनेक खाद्य-पदार्थ वनस्पति फल-फूल शाक, अन्न आदि के रूप मे उत्पन्न कर रखे हैं और फल-शाक आदि का उत्पादन काफी बढाया जा सकता है। ये खाद्य-पदार्थ काफी पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं। शरीर को टिकाए रखने के लिए आहार तो जरूरी है पर वह कब, कैसे और क्या लेना चाहिए? इसका विवेक भी जरूरी है। तन और मन स्वस्थ रहेगा सात्विक भोजन मे। अत राजसिक और तामसिक आहार ग्रहण नही करना चाहिये।

[नाहटों की गुवाड़, बीकानेर (राजस्थान)]

●

★★
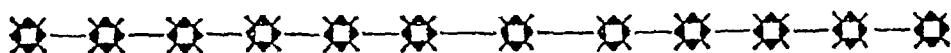
शाकाहार अधिक सस्ता

दस आदमियो के निर्वाह योग्य मास की प्राप्ति के लिए पशुओं को पालने और उन्हे हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए जितनी जमीन में यदि मटर, जौ, बाजरा, अनाज आदि की खेती की जाये तो सौ आदमियो के निर्वाह योग्य भोजन प्राप्त हो सकता है।

—हमबोल्ट

० हमारी नस्ल (मनुष्य-जाति) के लिए मांसाहार अनुपयुक्त है। अगर हम पशुओ से अपने को ऊचा मानते है, तो फिर उनकी नकल करने मे भूल करते हैं। यह बात अनुभव-सिद्ध है कि जिन्हे आत्म-संयम इष्ट हो उनके लिए मासाहार अनुपयुक्त है—नश्वर शरीर को सजाने के लिए, उसकी उम्र बढ़ाने के लिए हम अनेक प्राणियो की बलि देते है, उससे शरीर और आत्मा दोनो का हनन होता है।

—महात्मा गांधी
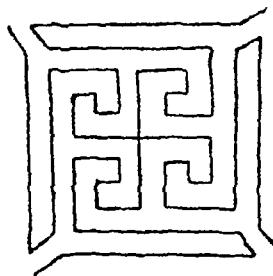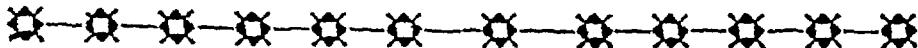
तीन छोटी कविताएँ

—नामवर
[लोकप्रिय कवि एव गीतकार]

आदमी :

एक जानवर—
बड़ा निराला।
दोस्तनुमा दुश्मन लगता है।
जो शब्दो मे—
प्यास चुराकर
पानी को गाली देता है।

समय :

सारे खिलौने—
धर्म-पुस्तको मे,
बदल गए।
देखते-देखते—
हम कितनी दूर—
निकल गए।
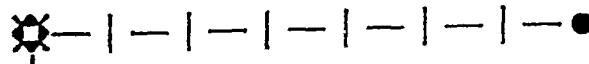
दु:ख :

आंखो मे मरघट,
भीतर भी—
मुंह-ढापें,
सिसक रहा है सूनापन।
टीस रहा है—
कुछ रह-रह कर,
बड़े जोर से रो लो मन।

o

[हंसराज मोरारजी पब्लिक स्कूल
अधेरी, बम्बई ५८]

- युक्तियुक्त आहार शरीर को निरोग बनाता है।
- अहितकारी प्रभाव से बचने के लिए हमे अपने आहार का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

आहार कैसा और कब ?

—सुरेश चतुर्वेदी

- स्वास्थ्य परामर्शदाता नवभारत टाइम्स
- प्राध्यापक : पुनर्वसु आयुर्वेदिक कालेज, बम्बई
- संचालक आरोग्यनिकेतन, बम्बई

हम सभी जानते हैं कि हमारा यह शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंचमहाभूतो से निर्मित है और इन पाचो ही महाभूतो के द्वारा ही दोषो की उत्पति होती है। यथा वायु और आकाश से वात की, तेज से पित की, पृथ्वी और जल के योग से कफ की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सूर्य और वायु अपने-अपने आदान-विसर्ग और विक्षेपरूप शक्ति से सारी सृष्टि को धारण किये रहते हैं और उसी प्रकार वायु, पित्त और कफ भी शरीर को स्थिर रखते हैं, लेकिन इनके विकृत होने पर शरीर मे अनेक प्रकार की व्याधिया उत्पन्न हो जाती हैं।

युक्तियुक्त आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य ये तीनो ही वात, पित्त, कफ इन तीनो दोषो को समान रखते हुए शरीर को आरोग्यता प्रदान करते हैं। अत. इनको उपस्तम्भ के रूप मे माना है। इन तीनो का सम्यक् योग हमारे शरीर मे आजीवन बल-वर्ण और पुष्टि करनेवाला होता है।

लेकिन इन तीनो मे आहार ही प्रमुख है। इसलिए उसे आदि स्थान भी मिला है। प्राणियो की उत्पत्ति आहार से ही होती है और इनका इस ससार

मे स्थिर रहना तथा आयु प्राप्त करना आहार के द्वारा ही होता है। शरीर की वृद्धि, पुष्टि, वल, आरोग्य, वर्ण और इन्द्रियो को अपने-अपने विषयो के ग्रहण की शक्ति का मूल आहार ही है।

समस्त प्राणियो मे अन्न ही प्राण है, क्योकि अन्न के द्वारा ही प्राणी जीवित रहते हैं और समस्त ससार अन्न की ओर ही दौडता है। शरीर वर्ण, प्रसन्नता, स्वर का ठीक रहना, जीवन, प्रतिभा, सुख, सन्तोष, पुष्टता, वल, वुद्धि ये सव ही अन्न के आश्रित हैं।

आज सारे विश्व मे आहार एक समस्या वन गया है। विभिन्न देशो मे विभिन्न प्रकार के आहार-द्रव्य उपयोग मे आते हैं। विभिन्न देशो के वैज्ञानिक उन्हे अनेक श्रेणियो मे विभक्त करते हैं। आहार-द्रव्यो मे प्रोटीन, वसा, कार्वोज, खनिज, नमक, जल आदि के अश का ज्ञान करके पूरक आहार-द्रव्य ग्रहण करने की सलाह दी जाती है। उसी प्रकार विटामिन्स का भी ए, वी, सी, डी, ई, के के रूप मे विभक्तिकरण किया है। अमुक-अमुक विटामिन की शरीर मे कमी होने पर उसकी पूर्ति के लिए उसी विटामिन से युक्त आहार-द्रव्यो के ग्रहण करने का परामर्श आधुनिक चिकित्सक देते हैं। हम यहाँ शरीर को मुख्यरूप से स्थिर रखनेवाली पाँच भौतिक धातुओ के अनुसार परामर्श देते हैं।

वायुनाशक :

वायु को नष्ट करनेवाले आहार-द्रव्यो मे गेंहू, उडद, कुलथी, तिल, सरसो सेम, केले के फल का शाक, नारियल, तरवूज, खरवूज, वैंगन, गाजर, गाय का दूध, मलाई, छाछ, तेल, आम, कटहल, खीरा, नारगी, फालसा, शहतूत, वादाम आदि के प्रयोग मे वायु नष्ट होती है।

पित्तनाशक ·

द्रव्यो मे चावल, गेंहू, मूग, मसूर, अरहर, अलसी, ककडी, सेम, ठिण्डे, गाय का दूध, मलाई, वडहल, वेर, सिघाडा, फालसा, शहतूत, सेव, दही, आलू-वुखारा, हरा धनिया और पोदीना की चटनी। इनके सेवन से शरीर मे वढे हुए पित्त को कम कर सकते हैं।

कफनाशक :

मूँग, मोठ, मसूर, चना, कुलथी, तिल, अलसी, सरसो, चौलाई, वैंगन, टिंडे, जमीकन्द और गाजर आदि कफ के रोग से मुक्त रखते है।

धातुवर्द्धक तथा वलवर्द्धक आहार

वुद्धि तथा वल का वढाना किसे अच्छा नही लगता? सभी चाहते हैं कि हमारी वुद्धि तीक्ष्ण हो तथा शरीर मजवूत वने। तिल, गाय का दूध, वकरी का

दूध, गाय का घी, शहद, बादाम, मीठा अनार, मक्खन, चावल, जौ, गेहू, उडद, राजमाष, वथुआ, सेम, आलू केले का कन्द, मावा, मलाई, दही, आम, कटहल, केला, नारियल, खिरनी, अगूर, खजूर, आवला, सेव, सिघाडा, शक्कर आदि से इन दोनो की ही वृद्धि होती है।

हल्के आहार

हल्के आहार की आवश्यकता हो तो चावल, मोठ, मूंग, मसूर, अरहर, कुलथी, वथुआ, जमीकन्द, चौलाई, गाजर, वकरी का दूध, गाय का घी, नारगी आदि खाने से पेट मे भारीपन अनुभव नही होगा।

खून बढानेवाला आहार

गाय का दूध, मीठा अनार, गाजर, केला, अगूर, दही, टमाटर, आम, नारगी, मौसबी, खजूर और सेव के उपयोग से रक्तवृद्धि होती है।

चर्वी बढानेवाला आहार :

उडद, तेल, घी, दूध, चर्वी, तिल, बादाम, मूँगफली आदि का सेवन करने से चर्वी की कमी आसानी से दूर हो जाती है।

कभी-कभी भोज्य-पदार्थो का सेवन करते समय कुछ नियमो का पालन करना नितान्त आवश्यक होता है। हमारा भोजन सतुलित होना चाहिए और भोजन के समय मे अन्तर अवश्य रखें और समय पर ही करे तथा विपरीत भोजन से अवश्य बचना चाहिए, यह हमारे लिए अत्यन्त हानिकारक होता है और शरीर मे उपद्रव पैदा कर देता है।

विरुद्ध-भोजन

आहार पदार्थो मे अनेक द्रव्य इस प्रकार के होते हैं जिनका दो-तीन द्रव्यो का आपस मे मिलना शरीर पर अहितकारी प्रभाव डालता है। इसे विरुद्ध आहार कहते हैं।

१—शहद और घी समान मात्रा मे मिलाकर सेवन नही करना चाहिए।

२—सहजिन, मूली, लहसुन, पोदीना और वनतुलसी का सेवन करके दूध नही पीना चाहिए, क्योकि इससे चर्मरोग की उत्पत्ति की सभावना रहती है।

३—पके हुए वडहल को उडद की दाल, गुड एव घी के साथ नही खाना चाहिए।

४—आम, आवला, विजौरा, नीवू, वडहल, करोदा, केला, वेर, कमरख, जामुन, कैथ, इमली, अमरूद, अखरोट, कटहल, नारियल, अम्वाडा, आदि द्रव्य दूध के साथ सेवन नही करने चाहिए।

५—कुलथी, उड़द, सेम इनका सेवन दूध के साथ नही करना चाहिए।

६—खीर का सेवन छाछ के साथ नही करना चाहिए, क्योकि यह कफ को बढाता है।

७—शहद पीकर गरम जल नही पीना चाहिए।

८—छाछ मे कमीला पकाकर सेवन करना निषिद्ध होता है।

इनके अतिरिक्त भी कुछ आहार एव औषधियां सिद्धान्तत. एक-दूसरे के विरुद्ध होती है, जैसे —

१—ठण्डे पदार्थो के गरम पदार्थो को साथ सेवन करना।

२—जिनका पेट सख्त हो उन्हे हल्की दस्तावर दवा नही लेना चाहिए।

३—जिमका पेट मुलायम हो उसे अति तीव्र दस्त की आहार औषध नही लेना चाहिए।

४—जो व्यक्ति अधिक परिभ्रमण कर चुका है या जिसने सभोग किया है, अथवा जो किसी भी प्रकार का व्यायाम कर चुका है, उसे वायु को बढानेवाले पदार्थ नही खाने चाहिए, क्योकि इससे वायु की वृद्धि होती है।

५—जो नीद से उठा है या आलस्य मे डूबा हुआ है, उसे कफ बढानेवाले भोजन नही करना चाहिए, क्योकि इससे कफ की वृद्धि होती हैं।

६—मलमूत्र का त्याग किये विना भी भोजन करना विपरीत प्रभाव डालता है।

७—जो चावल अधिक पक गया है या विना पके ही जल के अभाव मे जल गया है उसे भी आहार मे ग्रहण नही करना चाहिए।

उपद्रव

जो व्यक्ति जाने-अनजाने मे विरुद्ध-आहार का सेवन करते हैं उससे शरीर के बल की हानि तो होती है तथा नपुसकता, आँखो की ज्योति की कमी, शरीर मे चर्मरोग, जलोदर, पागलपन, भगन्दर, चक्कर, बेहोशी आना, पेट फूलना, गले के रोग, कुष्ठ रोग आदि पैदा हो जाते हैं। कभी-कभी सतान मे भी विकृति आ जाती है और कभी-कभी तो मृत्यु तक की सभावना रहती है।

उपाय

विरुद्ध-आहार के सेवन से यदि किसी भी प्रकार के उपद्रव पैदा हो गये हो तो दस्त की दवाएँ देनी चाहिए एव उल्टी लानेवाले प्रयोग भी करने चाहिए। इससे दूषित आहार निकल जाता है तदनन्तर शीतल एव शक्तिवर्द्धक उपाय करने चाहिए। ●

तली हुई चीजें जहर है, हलवाई की दुकान यम का घर है।
पाव रोटी भी विष है। —स्वामी विवेकानद

आहार के आश्रित ही सभी प्राणी हैं। प्राणी चाहे जिस जाति अथवा वर्ग का हो, वह थलचर या जलचर या नभचर ही क्यो न हो, कुछ न कुछ आहार के रूप मे अवश्य ग्रहण करता है। दूसरे शब्दो मे, यह ससार ही आहार पर आधारित हैं। आहार के विना कायम रहनेवाला जगत् कल्पना के क्षेत्र मे भले ही हो, लेकिन वास्तविकता के क्षेत्र मे नही हो सकता।

मांसाहार आर्थिक दृष्टि से कुछ महत्व रखता है, वैज्ञानिक दृष्टि से भी किंतु शाकाहार के पीछे आर्थिक, वैज्ञानिक, धार्मिक, नैतिक और मानवीय भावना काम करती है ....।

आहार : एक विवेचन

—डा० बशिष्ठनारायण सिन्हा
एम० ए० पी-एच० डी०
(दर्शनविभाग, काशी विद्यापीठ वाराणसी-२)

और 'प्रत्यक्षम् किम् प्रमाणम्'—हम देखते हैं—पक्षी सुवह मे घोसलो से निकलते ही चारा चुगना शुरू कर देते हैं। किसान सूर्योदय होते ही हल-बैल लेकर खेत की ओर प्रस्थान कर जाता है ताकि आहार के निमित्त वह अन्न पैदा कर सके। यहाँ तक कि घर-गृहस्थी को त्यागकर साधना के पथ पर प्रवृत्त सन्त-जन भी सुवह मे वालभोग का इन्तजार करते हैं। जल मे रहनेवाले मगरमच्छो का क्या कहना, वे तो अपने से छोटी मछलियो अथवा अन्य जीव-जन्तुओ को ही निगल जाते हैं। फिर कैसे हम मान सकते है कि आहार के विना भी कोई समाज या ससार हो सकता है? जिस समय किसी प्रकार की खेतीवारी नही होती थी, युगलियो का समाज था, उस समय भी 'कल्पद्रुम' से वे लोग आहार प्राप्त किया करते थे। वाद मे ऋषभदेव ने असि, मसि और कृषि की शिक्षा दी जिसके परिणामस्वरूप आहार की उपलब्धि एक सुव्यवस्थित ढग से होने लगी। इन वातो से हम समझ सकते हैं कि आहार तो हमारे जीवन का अग

क्या, हमारा जीवन ही है । फिर तो इस पर विचार करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है । विद्वानो ने आहार को विभिन्न दृष्टियो मे विवेचित किया है ।

वैज्ञानिक-दृष्टि

वैज्ञानिक-दृष्टि स्वास्थ्य की दृष्टि होती है । वैज्ञानिक लोग जब आहार सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत करते हैं तो उनका उद्देश्य मात्र इतना ही होता है कि वे इस बात पर प्रकाश डालें कि कौन-सी वस्तु हमे किस मात्रा मे जीवन प्रदान करती है । इस बात को ध्यान मे रखते हुए उन लोगो ने यह बताया है कि एक पौष्टिक आहार के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि रोटी अथवा चावल के साथ दाल, हरी सब्जी, शाक, दूध, मछली, अडा, आदि होना चाहिए । इन वस्तुओ के विषय मे उनकी जानकारी है कि किनसे कौनसा तत्त्व मिलता है, इसलिए किस मात्रा मे कौन-सी वस्तु ग्रहण करनी चाहिए ? दूध और अडा के के विषय मे वैज्ञानिको का कथन है कि ये दोनो ही चीजें समान ढग से जीवनी-शक्ति प्रदान करती हैं । यदि मासाहारी अडे का सेवन करता है, तो शाकाहारी दूध का सेवन करे । इन वस्तुओ से खानेवाले को शारीरिक बल मिलता है । यहाँ पर विचार नही किया जाता कि अमुक वस्तु खाने से धर्म अथवा अमुक वस्तु खाने से अधर्म होता है । यह विचार वैज्ञानिक क्षेत्र से बाहर की वस्तु है ।

धार्मिक अथवा नैतिक-दृष्टि

धर्म या नीति के क्षेत्र मे यह नही देखा जाता कि कौनसा भोजन हमे कितनी जीवनी-शक्ति प्रदान करता है ? बल्कि यह विचार किया जाता है कि कौनसा खाद्यपदार्थ हमारे मनोभाव को कहाँ तक धर्म या नैतिकता के मार्ग पर प्रवृत्त करता है । जो वस्तुएँ हमारी धार्मिक एव नैतिक भावनाओ को जागृत करती हैं या जो हमारी अनैतिक इच्छाओ को जगाने मे सहायक नही बनती, वे तो ग्राह्य समझी जाती हैं और जिनसे हमारी कुप्रवृत्तियाँ जाग उठती है, वे वस्तुए त्याज्य या अग्राह्य मानी जाती है । अन्न, कन्द, मूल, फल, दूध, दही, घी, चीनी आदि ग्रहण करने से हमे शारीरिक बल तो मिलता ही है, साथ ही सद्भाव भी दृढ होते हैं । अत धार्मिक दृष्टि से इन्हे ग्राह्य माना गया है । मास, मछली, अडा, मदिरा, प्याज, लहसुन, आदि के ग्रहण करने से हमे शारीरिक शक्ति मिलती है, इसमे कोई शक नही, लेकिन ये वस्तुएँ हमारी वासना को जागृत कर देती है, जिसके परिणामस्वरूप हम अनैतिक कर्मों की

ओर आकर्षित होते हैं। अतएव इन वस्तुओ को धार्मिक अथवा नैतिक-दृष्टि से बिल्कुल ही त्याज्य समझा गया है।

नैतिकता के क्षेत्र मे मास-मछली ग्रहण करना एक हिंसाजनक कार्य माना जाता है, क्योकि मास तो तभी प्राप्त किया जा सकता है जब किसी प्राणी की हिंसा की जाए। यद्यपि स्वाभाविक रूप से मरे हुए प्राणियो के शरीर से भी मास पाना सम्भव है, किन्तु मासभोजी जन जीवित प्राणियो को मार कर मास प्राप्त करना अधिक पसन्द करते हैं, क्योकि उनकी दृष्टि मे स्वस्थ जीव को मारकर प्राप्त किया हुआ मास अधिक पौष्टिक एव स्वादिष्ट होता है। पर नैतिकता के दृष्टिकोण से यह कार्य अनैतिक है। इसलिए जैन परम्परा मे मास-भक्षण का पूर्णत निषेध देखा जाता है। बौद्ध-परम्परा मे अपवाद स्वरूप दवा आदि के निमित्त मास अथवा खून सेवन करने की छूट दी गई है साथ ही यह भी कहा गया है कि भिक्षु यदि भिक्षाटन के लिए जाता है और गृहस्थ अपने लिए तैयार मास मे से भिक्षास्वरूप उसे मास ही दे देता है तो वह भिक्षु के लिए ग्राह्य है। यद्यपि सामान्य स्थिति मे इस परम्परा ने मासादि ग्रहण करने का विरोध किया है। वैदिक परम्परा मे मासादि के विषय मे जो विचार व्यक्त किया गया है वह अन्य परम्पराओ के विचार से सर्वथा भिन्न है। ब्राह्मणग्रन्थो मे यज्ञ का विधान है, जिसमे पशुओ की बलि देना और बलि दिए गए पशुओ के मास को ग्रहण करना हिंसाजनक, अथवा अनैतिक या अधार्मिक नही माना गया है। इसके विपरीत बलि देना और बलि दिए हुए पशु का मास खाना एक धार्मिक कार्य समझा गया है। इतना ही नही, बल्कि यज्ञ से प्राप्त मास ग्रहण न करनेवाला व्यक्ति दोषी कहा गया है। किन्तु समय के प्रवाह मे ऐसी धारणा बदलती हुई देखी जाती है। मनुस्मृति मे मनु ने यद्यपि यज्ञ की दृष्टि से मास-भक्षण का समर्थन किया है, लेकिन यह भी कहा है—

> **न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।**
> **प्रवृत्तिरेषा भूताना निवृत्तिस्तु महाफला ॥५६॥**
>
> —मनुस्मृति अ० ५,

अर्थात् न मास खाने मे दोष है, न मदिरापान करने मे और न मैथुन करने मे, क्योकि ये तो मनुष्य की प्रवृत्तियाँ हैं, लेकिन इनसे निवृत्त हो जाना महा-फलदायक होता है, श्रेयस्कर होता है। महाभारत और पुराणो मे यज्ञ मे बलि देने और उसके फलस्वरूप प्राप्त मास के भक्षण करने का विरोध किया गया है। यहा तक कि शान्तिपर्व मे यज्ञ सबधी विवेचन मे प्रयुक्त 'अज' शब्द का अर्थ 'बकरा' न करके 'अन्न' दिया गया है। इस प्रकार धार्मिक अथवा नैतिक

दृष्टि तो इसी निर्णय पर पहुंचती है कि आहार मे मासादि को सम्मिलित करना दोषपूर्ण है, अनैतिक या अधार्मिक व्यापार है। इससे हमे शारीरिक वल तो मिल जाता है, लेकिन आत्मिकवल नहीं मिल पाता।

दार्शनिक-दृष्टि

साख्यदर्शन मे प्रकृति और पुरुष के सयोग से जगत् के विकास का प्रतिपादन हुआ है। प्रकृति के तीन गुण माने गये हैं—सत्त्व, रज तथा तम। हर वस्तु मे ये तीन गुण मौलिक रूप मे पाए जाते हैं। पर किसी गुण की अधिकता तो किसी की न्यूनता भी होती है और उसी के आधार पर उस वस्तु की कोटि निर्धारित होती है। इसी आधार पर भोज्य-पदार्थों को भी तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जाता है—सात्विक, राजसी एव तामसी। सामान्य अन्न कन्द, मूल-फल आदि सात्विक भोजन के ग्रहण करने से मनुष्य की सात्विक प्रवृत्ति वढती है। घी, मिष्ठान, पकवान आदि ग्रहण करने से राजसी प्रवृत्ति वलवती होती हैं एव मास, मदिरा, वासी पदार्थ आदि तामसी वस्तुओ को खाने से तामसी प्रवृत्ति जगती है।

आर्थिक दृष्टि

सच पूछा जाए तो आहार पर 'अर्थ' को ध्यान मे रखते हुए विचार करना नितान्त आवश्यक है। यहा पर हम ऐसा विचार करते हैं कि कम से कम पैसे मे हमारे आहार की वस्तुएँ कितनी मिलती हैं? यदि भोज्य-सामग्री पर्याप्त मात्रा मे मिलती हैं तव तो हम सोचते हैं कि प्राप्त सामग्रियो मे कौनसी हमारे लिए ज्यादा उपयोगी हैं और कौनसी कम? लेकिन यदि आहार मे योग्य वस्तुओ की ही कमी हो, जैसा कि वर्तमानकाल मे अपने ही देश मे देखा जा रहा है, तव तो किसी भी मूल्य पर आहार प्राप्त करने की वात सामने आती है। हमारे आहार मे गेंहूँ और चावल प्रधान हैं, लेकिन उचित मूल्य पर इन्हे प्राप्त करना मुश्किल-सा हो रहा है। ऐसी हालत मे सरकार अपनी जनता की सहायता करने का प्रयास करती है। तत्काल तो सरकार इतना करती है कि जहाँ पर भोज्य-सामग्री की अधिकता है वहाँ से उन स्थानों को वे भेजी जाएँ जहा पर उनकी कमी है। किन्तु इसके स्थायी प्रवन्ध के लिए सरकार तथा जनता दोनो के ही कर्त्तव्य हो जाते हैं कि एक दूसरे की सहायता से खाद्यसामग्री उचित मात्रा मे उत्पन्न कर सके। कुछ दिनो पहले हमारे यहा अमेरिका से गेंहू आता था जो या कर्जरूप मे आता था या दानरूप मे। ये दोनो ही रूप किसी भी समाज के लिए हास्यापद हैं। हाँ! इसमे कोई शक नही कि विशेप परिस्थिति मे अपने मित्र अथवा पडोसी से हम कज लेते हैं, सहायता लेते है और ऐसा

करना कोई निन्दाजनक वात नही है। परन्तु कर्ज लेने की जव हमारी आदत-सी वन जाती है तव हम दूसरो के आश्रित हो जाते हैं। हम आलसी वन जाते हैं, श्रमदान से भागते हैं। हमारी प्रतिष्ठा दिन व दिन घटती चली जाती है और एक दिन ऐसा भी आता है कि हमे कोई व्यक्ति कर्ज देने को तैयार तक नही होता। इस वात पर सर्वप्रथम, हमारे द्वितीय प्रधानमत्री स्वर्गीय श्री लालवहादुर शास्त्री का ध्यान गया और उन्होने 'जय जवान-जय किसान' का नारा लगाया, जिसके परिणामस्वरूप वहुत अधिक हद तक आहार के मामले मे हम आत्मनिर्भर वन सके है और कर्ज लेने की हमारी आदत प्राय छूट-सी गई है। यह भारतीय समाज के प्रति उनका वहुत वडा उपकार है। परन्तु आज की सरकार ने खाद्य-सामग्रियो पर नियत्रण कर रखा है जिसके अनुसार एक व्यक्ति को एक माह मे दो किलो गेहू, एक किलो चावल और एक किलो चीनी मिलती है। इतना ही इनकी मात्रा कम-वेसी होती रहती है। कभी-कभी तो इन वस्तुओ की मात्रा घटकर आधा किलो तक आ जाती है। ऐसी स्थिति मे कोई क्या सोच सकता है कि उसके लिए गेहू ज्यादा पौष्टिक पदार्थ है अथवा चावल ?

देश और काल

किस स्थान पर और किस समय मे क्या प्राप्त है, उसके अनुसार ही व्यक्ति का आहार निश्चित हो सकता है। ऐसा न होने से आदमी के लिए जीवित रहना कठिन और कभी कभी तो असभव भी हो सकता है। यदि कोई उत्तरी अथवा दक्षिणी'ध्रुव के आस-पास रहता है और वहाँ पर वह मास-भक्षण न करे तो जिन्दा कैसे रह सकेगा ? क्योकि वहाँ के भोज्य-पदार्थो मे मास ही प्रधान है। ठण्डे देश मे यदि कोई काफी चाय आदि जैसी गर्म वस्तु का सेवन नही करता है तो उसके लिए भी जीवन कठिन हो जाएगा। यदि अकाल पडा हुआ है और अकालग्रस्त क्षेत्र का व्यक्ति कहे कि वह केवल पौष्टिक वस्तु ही ग्रहण करेगा अथवा जो कुछ भी वह खाएगा, अपने धर्म की और नीति की सीमाओ के अन्दर ही रहकर खाएगा, ऐसी परिस्थिति मे या तो उसे अपनी जान दे देनी पडेगी या धार्मिक एव नैतिक सीमाओ का अतिक्रमण करना पडेगा। महाभारत के शान्तिपर्व मे जैसा देखा जाता है,विश्वामित्र जैसे तपस्वी को अकाल के समय चाण्डाल के घर से कुत्ते की टाग चुराकर उसका मास खाना पडा था। ऐसा करके उन्होने नैतिकता की दो सीमाओ का उलघन किया, प्रथम—उन्होने चोरी की, जिससे अस्तेयव्रत भग हुआ और दूसरा—मास खाने से अहिसाव्रत भग हुआ। यहाँ तक कि चाण्डाल ने उन्हे चोरी

करते पकड लिया और उनके वेपभूपा को देखते समझाया भी कि मास-भक्षण करना आपके लिए दोपप्रद है, आपके कर्म के लिए दोपप्रद है, आपके धर्म के विपरीत है। परन्तु विश्वामित्र ने यह उत्तर दिया—

"येन येन विशेषेण कर्मणा येन केनचित्।
यावज्जीवेत् साद्यमानः समर्थो धर्ममाचरेत्॥६३॥"

—महा० शान्ति पर्व अ० १४६

यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम आदमी अपने जीवन की रक्षा करे, भले ही इसके लिए उसे कोई भी साधन क्यो न अपनाना पडे। कारण, जिन्दा रहकर ही कोई व्यक्ति किसी धर्म का पालन कर सकता है। इस प्रकार यह मान्यता वनती है कि आहार देश और काल के अनुसार होना चाहिए। इसी वात को ध्यान मे रखते हुए बुद्ध ने अपने शिष्यो को विशेप परिस्थिति मे मास-भक्षण की अनुमति दी थी।

●

○ मास आहारी मानवा, परतछ राक्षस अग।
तिन की सगति मत करो, परत भजन मे भग॥
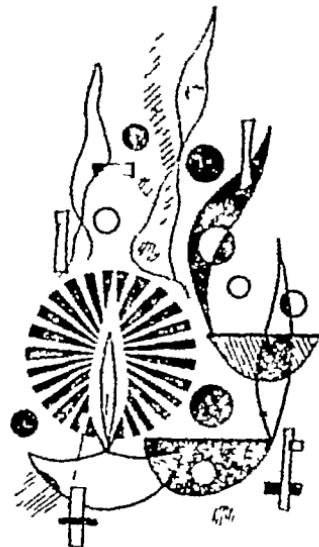
—संत कबीर

● ●

○ मेरे लिए कितने सुख की बात होती, यदि मेरा शरीर इतना वडा होता कि मासाहारी लोग केवल मेरे शरीर को ही खाकर सतुष्ट हो जाते, ताकि वे फिर दूसरो को मार कर न खाते। अथवा ऐसा होता कि मेरे शरीर का एक-एक अश काट कर मासाहारियो को खिला दिया जाता और वह अश फिर वापस हो जाता, तो मैं वहुत प्रसन्न होता। इस प्रकार मैं अपने शरीर से ही मांसाहारियो को तृप्त कर सकता।

—सम्राट अकबर (आइने-अकबरी)

स्वास्थ्यवर्द्धन के प्रति आधुनिक पथ्याचरण

—डा० बी० एन० बाइ
एम० बी-बी एस०, डी० टी० एम० एण्ड एच०
(इगलैण्ड डिप० न्यूट्री (लदन)

डा० वाई देश के एक अग्रगण्य आहारशास्त्रज्ञ हैं। हाल ही मे कोलम्वो (श्रीलंका) मे आयोजित वेजिटेरियेनिज्म कान्फ्रेन्स मे आपने हमारे आहार-चयन की वृत्ति मे एक नया प्रतिबोध प्रस्तुत किया। आप उसे प्रति-शाकाहार (प्रो — वेजेटेरियन) सिद्धात व पोषाहार स्वास्थ्य (Hutrıonal Health) नाम से सवोधित 'करते हैं। प्रस्तुत लेख मे आपने परिवारो मे आहार पोषण सन्दर्भ मे अपेक्षित सुधार के कुछ व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

१. वच्चो के भोजन मे प्रोटीन ·—

प्रस्तावना—जवकि सम्पन्नवर्ग पूरी तरह से अपोषण से ग्रस्त है, मध्यम वर्ग वह भोजन प्राप्त कर सकता है जो सामूहिक रूप से भूख को शान्त करने मे पर्याप्त होता है, यहा सक कि विभिन्न रूपो मे स्वाद को भी तृप्त कर सकता है। उनके वच्चे दूषित पोषण से इतने अधिक पीडित नही होते जितने अधिक सहायक पोषण से, परिणानस्वरूप सक्रमण को कम रोक पाते हैं। सहिष्णुता घट जाती है, थकावट और लम्वे समय मे स्वास्थ्य का सामान्य स्तर भी नाटे कद तक ही रहता है।

हाल ही मे वच्चो के दूपित पोषणसम्वन्धी विभिन्न स्तरो मे क्रियात्मक अध्ययन से विकासशील वच्चो की विशिष्ट आवश्यकताओ को भलीभाति

समझने मे पर्याप्त सहायता मिली है। उदाहरणस्वरूप हमारे देश के स्कूली वच्चो के स्वास्थ्य पर जलपान और दूध के प्रभाव पर अध्ययन से उनके लिए सन्तुलित आहार के नियोजन मे प्रभावपूर्ण भूमिका का निर्वाह हुआ है। हमारी चयापचनशील आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सन्तुलित आहार अपेक्षित है और उसमे विकास के लिए उत्तम प्रोटीन्स होने ही चाहिए। रक्त और हड्डियो के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण खनिज-तत्व और सुव्यवस्थित विकास के हेतु विटामिन्स कहे जानेवाले अल्प-पोषी तत्व भी। इन सव वहुत सामान्य के साथ पर्याप्त ऊर्जायुक्त तेल चर्वी, शक्कर और माडी तत्व भी।

पर्याप्त प्रोटीन—

इन सवमे प्रोटीन सर्वाधिक महत्व का है। सैद्धातिक दृष्टि से देश मे प्रति-प्रौढ व्यक्ति ५३ ग्राम प्रोटीन-वितरण लगभग पर्याप्त है। फिर भी कैलोरीज की सन्तोपप्रद प्राप्ति के अभाव मे प्रोटीन का एक भाग विकासशील वच्चो को पोपण देने की अपेक्षा ऊर्जा देने मे परिवर्तित हो जाता है।

प्रोटीन गुण—

रचनात्मक पद्धति मे ही भोजन-पदार्थों मे व्यापक प्रोटीन युक्त रहते है। इसी तरह विपुल क्षार अम्ल भी। प्रोटीन युक्त भोजन की श्रेष्ठता तो, शरीर कितनी कुशलता से क्षार-अम्लो का उपयोग कर सकता है—के द्वारा निर्धारित होती है। क्षार-अम्ल पद्धति की कोशिकाओ की क्षार-अम्लीय आवश्यकताओ के साथ जितनी अधिक नजदीकी सम्पृक्ति होती है, उतना ही मूल प्रोटीन का गुण वढता है। इस सन्दर्भ मे देखने पर दूध का स्थान सर्वोच्च रहता है। जवकि इसमे कुल प्रोटीन ४ प्रतिशत से अधिक नही होता। यह आयरन "खनिज" और विटामिन "सी" के अभाव के वावजूद भी सर्वाधिक पोपण देनेवाला तरल भोजन है। "टोन्ड दूध" कम खर्चीला होते हुए भी प्रोटीन्स और कैल्शियम ही नही वरन् विटामिन वी–२ और विटामिन वी–१२ का सर्वोत्तम साधन है। यह आसानी से खट्टा किया जा सकता है। परिणामत दही किसी भी तरह का अस्वाद नही देता और वच्चो द्वारा भी, जो सामान्यतया टोड दूध को नापसन्द करते हैं, आसानी से उपयोग कर लिया जाता है। एक आधुनिक मनोवैज्ञानिक ने सही पर्यवेक्षण किया है कि दूध के प्रति वच्चे की अरुचि प्राय मा से निराशा का अर्थ ज्ञापित करती है। चूकि मा के लिए कोई विकल्प नही होता। पोपणविज्ञ जमे दूध पाउडर की सलाह देते हैं जो अव वाजार मे खुला उपलब्ध है। इस अमूल्य स्वास्थ्य-वर्द्धक का एक चम्मच (७ ग्राम) ही रोटी अथवा चपाती में अद्भुत रूप से गेहू के आटे की

प्रोटीन क्षमता को वढा देता है। अक्षम होने के कारण दूव को नियमित रूप से रक्त की कमी को रोकने के लिए हरी पत्तियो से पूरक वनाएँ जाने की आश्यकता रहती है। खट्टे फलों से भी रक्त-रोग की रुकावट के लिए।

पालक और रवा किया गया गाजर दही के साथ खूव चलता है। परिणामत परिवार मे सभी लोगो द्वारा शानदार व्यजन के रूप मे रायता वहुत ही आनन्द से उपयोग किया जाता है। पत्ती जितनी अधिक हरी होती है उसमे विटामिन और आयरन भी बहुत होता है। कडवी होते हुए भी मेथी की थाली पीठ, ढेवरा अथवा मिस्सी रोटी वनाई जा मकती है। परम्परागत शकरपाले मेथी से युक्त किए जा सकते हैं। उवले हुए चावलो की इडली अथवा सादा ढोकला और उटद-दाल जलपान के लिए वहुत शक्तिदायक होते हैं। ढोकलो पर पिसी हुई गोल मिर्च हरी मिर्च स्वाद को वढाती है और विटामिन "ए" और "सी" भी देती है। वच्चे के पथ्य मे सन्तरे की सलाह तो सार्वभौमिक है। यदि मौसमी और सन्तरे की प्राप्ति हमारी आर्थिक सीमा से परे है तो विकल्प के रूप मे टमाटर स्वादिष्ट और सर्वोत्तम है। यह विटामिन "ए" और "मी" प्रदान करता है यदि इसका ताजा और कच्चे रूप मे उपयोग किया जाए। शिक्षित लोगो को कठोर रूप मे चेतावनी देने की आवश्यकता मानता हू कि टमाटर-चटनी किसी रूप मे विकरप नही है इस सन्दर्भ मे, ताजे टसीले टमाटर की तुलना मे भले वह सस्ती हो, तव भी।

२—सन्तुलित विकास के लिए विटामिन—

विटामिन ऐसा नाम है जिससे आज के स्कूली वच्चे तक परिचित हैं। अवतक अज्ञात, पर आवश्यक भोजन नियोगो के एक समूह को वर्णित करने मे लगभग पचास वर्प पूर्व यह शब्द घडा गया। उत्तरगामी वर्पों मे इनमे से १५ तत्व परम्परागत भोजन से अलग किए गए हैं। शरीर के विभिन्न आकारो के विकास मे इनकी निश्चित भूमिका रहस्य से मुक्त नही है। वे सर्वत्र विद्यमान रहते हैं, कारण कोई भी एक भोजन ऐसा नही है जो इन सबसे रहित हो, न ही कोई ऐसा भोजन है जिसमे ये सव (लगभग २०) उपलब्ध हो। शरीर और मस्तिष्क के व्यवस्थित विकास मे इनकी समस्त व्याप्त नियामकी भूमिका की तुलना की जाए तो किसी भी दिए गए विटामिन की आवश्यकता अल्प होती है। वास्तव मे तो इन सवकी दैनिक अनुमोदित स्वीकृतिया तो परम्परागत होम्योपैथ की छोटी-सी गोली मे समेटी जा सकती है। फिर भी व्यापक रूप से भिन्न भोजन का उचित सयोग मात्र ही उनके तत्पर और सन्तोषप्रद वितरण को निश्चित कर सकता है। इनमे प्रत्येक का विशिष्ट रासायनिक व्यक्तित्व है और पूरा करने का विशिष्ट कार्यतत्र है। इनमे से कोई हमेशा

उर्जा और कैलोरी नही देता मगर इनका बहुत बडा भाग शक्ति के निर्माण और सहिष्णुता की बनावट के लिए आवश्यक है। यही वह स्वास्थ्य का अमाप योग्य अगभूत है जिसका बीमारी मे परीक्षण होता है। कफ-खासी, जुकाम, भारीपन, आलस्य आदि छोटी बीमारियो को हटाने के लिए मल्टी-विटामिन तत्वो का लेना फैशन हो गया है। यद्यपि प्रचलित है ये। इन क्वाथो (काढा) का बहुत बडा भाग जो कि टॉनिक के रूप मे विज्ञापित रहता है स्वाद के आधार पर बिना खनिज तत्वो के विटामिन्स का वर्गीकृत मिश्रण होता है, सामान्य रूप से विकासशील बच्चे के लिए ये विशिष्ट लाभ के नहीं होते जबतक कि शरीर ऊर्जा सम्पन्न भोजन की पर्याप्ति प्राप्ति के प्रति आश्वस्त रहता है। पोषणिक दृष्टि से ऐसे भोजन का उपयोग अधिक विवेकपूर्ण है जो समानरूप से ऊर्जा और सहिष्णुता देता है। मात्र सुविधा के लिए शास्त्री उनके बारे मे विटामिन ए, बी, सी, डी जैसा बोलते रहते है जबकि वैज्ञानिक उनके रसायनिक नामो द्वारा सही तरह सन्दर्भित करते हैं जैसे एस्कोरबिक एसिड आदि।

विटामिन "ए"—

मुझे विटामिन "ए" से प्रारम्भ करने दीजिए। यह व्यवस्थित विकास और हल्के सक्रमण की बाधा को बनाने मे सहायता करता है और इस तरह अस्वास्थ्य से रक्षा करता है। यह विशेपरूप से धुंधले प्रकाश मे दृष्टि की वृद्धि करता है। सुकोमल और चमकीली चर्म की आश्वस्ति देता है और किसी दात के सुरक्षात्मक घेरे की स्वस्थ मीनाकारी के विकास मे सहायता करता है। मक्खनवाला दूध और मक्खन बच्चे के पथ्य मे सामान्य स्रोत होते हैं। यहाँ यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि घी प्राप्त करने हेतु मक्खन को पिघलाने से विटामिन नष्ट हो जाते हैं। बाजार मे खुले रूप मे उपलब्ध पाउडर दूध के प्रति सावधानी के लिए भी एक शब्द-आवश्यक रूप से स्किम्ड-प्रकार अर्थात् मक्खन आदि से रहित और इस तरह विटामिन "ए" से भी रहित। चीज (पनीर) उत्तम साधन है जिन्हें सम्पन्न माता-पिता वहन कर सकते हैं परन्तु आर्थिक दबावो से त्रस्त गृहिणी के विपय मे क्या ? उसके लिए, विशेष रूप से, हरी पत्तिया (सब्जिया) उपहार हैं। अधिक हरी पत्तिया का होना उनमे अधिक व उच्च पोपण तत्व होना है। इस प्रकार पालक, आलू, पुदीना, और इसी तरह अनेक प्रकार के उत्तम पदार्थ हल्के पीले रग की बदगोभी आदि। चूकि हरी पत्तियो को पकाए जाने की आवश्यकता रहती है, इस कारण किसी सीमा तक विटामिन "ए" नष्ट हो जाता है। इसलिए पथ्याचार विशेषज्ञ गाजर, आम, पपीता आदि का अनुमोदन करते हैं। चूकि विटामिन "ए"

सग्रहित किया जा सकता है, इसलिए शरीर के बैंक मे एक बचत-खाता खोला जा सकता है।

विटामिन "बी"—

क्रम मे विटामिन "बी" का स्थान दूसरा है। यह दस रसायनिक रूप से अलग सत्वो का समूह है जो अनाज, दाल जैसे पदार्थों, तेलयुक्त बीजो मे सामान्यरूप से सह-अस्तित्व बनाए रहता है, प्राकृतिक रूप मे अस्तित्व की इन सामूहिक परिवार की पद्धति और स्वास्थ्यकर खाने योग्य अनाज-धान और इसी प्रकार के दूसरे पदार्थ लीवर मे चयापचय सम्बन्धी सहज गतिविधि के पूर्वाकाक्षित रूप में सामान्य रूप से इन सबके वितरण की आश्वस्ति देता है। अकेले अथवा सामूहिक रूप से शारीरिक गतिविधि के लिए ये भोजन मे की इधन को मासल ऊर्जा मे बदलने का सूक्ष्म कार्य पूरा करते हैं। विटामिन का सभी प्रकार का गम्भीर अभाव असामान्य होता है। फिर भी सुविधा के लिए तैयार और मिलावटी भोजन खरीदने के अभ्यास से सामान्य रूप से विकासशील बच्चे के सभाव्य विकास मे बाधा पहुचती है। इसे स्पष्ट करने— अनावश्यक रूप चावल या गेहू का पालिश करवाना विशेष रूप से लाभदायक विटामिन"बी"के अनुपात को विश्रृखलित करता है। विटामिन"बी"प्राप्त करने फल, तेलयुक्त बीज, दाल आदि के अधिक उपयोग की आवश्यकता होती है। यह प्रकृति का कौतुक है कि कुछ विटामिन "बी" स्वस्थ आत के निचले भाग मे स्थित सूक्ष्म जीव-रचना द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं। ये कृपालु, सूक्ष्माणु "बेक्टिरिया" अपनी आवश्यकताओ से अधिक उन्हे बनाते हैं। वे अपने आतिथेय को शेष सारा दान दे देते हैं। सूक्ष्म रूप दृष्टव्य जीवन के पौधे की ओर से विराट मानव आतिथेय के प्रति कितना गरिमामय भाव है—अपने आतिथ्य के बदले के लिए। दो और सदस्य—फोलिक एसिड और विटामिन "बी १२" हाल ही मे ज्ञापित हुए हैं। ये रक्त-जीवत तरल की स्वस्थ-स्थिति का निर्वाह करते हैं, खनिज पदार्थों के साथ वे रक्त की कमी से भी बच्चे की रक्षा करते हैं।

विटामिन "सी"—

हमारी सूची का अगला क्रम विटामिन "सी" है। एक शिक्षित स्वास्थ्य-सजग गृहिणी रसायनिक रूप से एस्कोर्बिकएसिड रूप से ज्ञापित इस खट्टे बिटामिन के साथ सहज रूप से ही रसदार फलो को सम्बद्ध कर देती है। यह सुदृढ मसूडो के बनाने मे सहायक होता है और मासल रचना को शक्ति प्रदान करता है। इसी तरह कैपिलरीज कही जानेवाली रक्त-प्रवाहिनी छोटी नालियो को भी जबकि गभीर कमी की स्थिति रक्त रोग एक प्रकार से अब अतीत की बीमारी है। बहुत से बच्चो को अपर्याप्त मात्रा मिल पाती है और अत्यन्त विर

लता से आधी मोसम्बी ताजा सतरा प्रतिदिन रक्त-स्राव करते मसूडो के लिए पर्याप्त होगा। टमाटर भी उत्तम पदार्थ है इस सन्दर्भ मे। टमाटर की चटनी कोई विकल्प नही इसके कहने की भी आवश्यकता नही। आमला और गोआ बहुत ही उत्तम पदार्थ हैं जिन्हे कोई बहुत गरीब भी प्राप्त कर सकता है।

विटामिन "डी"—

प्रमुख विटामिन मे अतिम स्थान विटामिन "डी" का है— विकासशील बच्चे के लिए। अयनवृत्त सम्बन्धी वातावरण मे जैसा कि हमारा, सूर्य सशक्त अल्ट्रावायलेट किरणे छोड़कर हमे उपकृत करता है। इस प्रकार बच्चे को भोजन के रूप मे थोडे से विटामिन की भी जरूरत होती है जो धूप का उपयोग करता है। हड्डियो और दातो के पथ्याचार सम्बन्धी कैल्शियम और फास्फोरस के सग्रह मे सहायता करने का विशिष्ट दायित्व इस विटामिन का होता है जबकि ये खनिज-तत्व ककाल सुदृढ अग बनानेवाले होते हैं। विटामिन "डी" की कमी बच्चे को पहले ही समाप्त कर देती है अथवा लडखडानेवाले की लचीली हड्डिया बना देती है। विटामिन "इ" "के" "पी" आदि निश्चित रूप से पथ्याचार के लिए आवश्यक है पर व्यवस्थित विकास मे उनकी भूमिका नगण्य ही रहती है। पथ्याचार की व्यवस्था प्रधान विटामिन की स्वीकृतिया अनुमोदित करती हैं, निश्चित रूप से गौण विटामिन की आवश्यक मात्रा की पूर्ति करेगी। इस विषय पर प्रचलित प्रश्न का उत्तर देते हुए मैं इसे समाप्त किया चाहता हू।

रसायनिक प्रक्रिया से कृत्रिम रूप से निर्मित विटामिन क्या उतने ही उपयोगी हैं जितने प्राकृतिक ? एक तुलना के साथ मुझे इसकी व्याख्या करने दीजिए—ग्रीष्म ऋतु मे पतली रुई की पोशाक पर्याप्त रूप से सुरक्षात्मक होती है। वास्तव मे भारी ऊनी की तुलना के पतली महसूस करते हुए भी अधिक सुविधा जनक होती है। इसी तरह भोजन मे विटामिन भी भले वे अनुपात मे थोडे ही हो सभी ऋतुओ मे सामान्य रूप से विकासशील बच्चे को पर्याप्त रक्षण देते हैं तब अधिक जमे हुए, अधिक खचीले बोतलबन्द विटामिन की आवश्यकता कहाँ होती है ? क्या हमे गर्मी मे उतनी कपडो की आवश्यकता होती है ? यदि सामान्य रूप से विकासशील बच्चे को टानिक के जरिए अतिरिक्त विटामिन दिया जाता है तो इससे उसे अन्य सहायक लाभ नहीं होता है। वास्तव मे यह विचारणा ही उत्तम है कि शरीर को उन्हें हटाने के क्रम मे आशिक रूप से स्वत उद्योग करने की आवश्यकता होगी। शरीर मे विटामिन कठिनाई से ही सगृहीत किया जा सकता है।

प्रोटीन पोषण का अर्थ तन्त्र—

प्राथमिकशाला के चार पांच-साल के बच्चो के लिए पथ्याचार सम्बन्धी अनुमोदित स्वीकृतिया

	भोजन पदार्थ	मात्रा (ग्राम)	प्रोटीन मूल्य	प्रोटीन गुण	कीमत (पैसो मे)	पौषणिक श्रेष्ठता
१	दूध	300	10 0	+++	0 27	केल्शियम, विटामिन वी-२, बी-१२
२	फली, फल का गूदा	40	9 0	++	0 08	शक्ति, विटामिन वी कम्पलेक्स
३	मूंगफली	5	1 5	++	0 01	,,
४	गेहू का आटा	75	9 0	+	0 09	,,
५	ब्रेड (एक स्लाइस)	25	2 5	+	0 04	ऊर्जा युक्त
६	चावल (बिना पके)	50	3 5	++	0 08	,,
७	हरी पत्तियाँ	50	2 0	++	0·05	विटामिन, खनिज तत्व
८	कन्द-जड़ें	25	0 5	—	0 02	केवल माडी से ऊर्जा
९	अन्य सब्जिया	25	0 5	—	0 04	विटामिन, खनिज तत्व
१०	खट्टे फल	75	0 5	—	0 10	विटामिन ए व सी
११	शाक तेल आदि	15	0 0	—	0 07	केवल चर्वी से ऊर्जा
१२	शक्कर-गुड	50	0 0	—	0 10	कार्वोहाइड्रेटस से ऊर्जा
१३	सामान्य नमक	10	0 0	—	0 05	भोजन सयोग
१४	मसाले चटनी	10	0 0	—		स्वाद के लिए आवश्यक
	योग	3/4 किलो	28 50 ग्राम	++	1.00	

With Best Compliments

FROM

M/s

Kusumchand M. Jhaveri

Lalgate
SURAT

17, Champa Gali
BOMBAY-2

बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन बनाएँ

१—चावल-मूंग की खीर—

सामान—चावल—२०० ग्राम, मूंग की दाल—१५० ग्राम, गुड—१५० ग्राम, दूध—१ लीटर। पीसा हुआ खोपरा—१० चाय के चम्मच स्वाद के लिए इलायची।

विधि·

चावल और मूंग की दाल को उबालिये, दूध और गुड को दाल मे अच्छी तरह मिलाइये दस चम्मच पिसा हुआ खोपरा, सूखा अथवा गोला और इलायची पीसकर मिला दीजिये।

विशेष उपयोगी :

जिन बच्चो को मा का दूध पिलाना बन्द कर दिया गया है, इस खीर से उन बालको को अच्छा प्रोटीन मिलता है।

२—गाजर की खीर—

सामान—गाजर—४०० ग्राम, दूध १०० मि० ली०, शक्कर १८० ग्राम सूखा खोपरा—१० ग्राम।

विधि :

गाजर को धोकर पीसलें, दूध उबाल लें, पिसा गाजर मिलाकर मद आच से उबाल ले, पक जाने तक हिलाते रहे शक्कर डालकर-अच्छी तरह घोल दें, खीर को स्टोव से उतार कर खोपरा मिला दें।

विशेष लाभ—

जिन बच्चो को मा का दूध देना बन्द कर दिया गया है। इस खीर से प्रोटीन और विटामिन 'ए' प्राप्त होता है।

३—चटपट लड्डू—

सामान : गेहू का आटा—८० ग्राम, ज्वार का आटा—८० ग्राम, बेसन—८० ग्राम, गुड १५० ग्राम, वनस्पति या शुद्ध घी—६० ग्राम।

विधि

थोडा-थोडा घी डालकर सभी आटो को अलग-अलग सेकलें, फिर सबको मिलादें। ४।५ चम्मच घी डालकर गुड की चासनी बनालें, चासनी मे सभी आटो को डाल दें, बारीक पिसी इलायची डाल दें, फिर लड्डू बनाले।

विशेष गुण—

छोटे बच्चो के लिए यह कैलोरीयुक्त पौष्टिक भोजन है।

४—उड़द की सेव—

सामान : चावल का आटा—३०० ग्राम,

उडद की दाल—१७५ ग्राम,

जीरा—दो बडे चम्मच, नमक और शुद्ध तेल।

विधि :

उडद की दाल और चावल को मिलाकर बारीक पीस लें, जीरा, नमक और मोयन के लिए एक बड़ा चम्मच वेजिटेवल तेल मिलादें आटे को गूथ लें, तलने पर सेव करारी और हल्की पीली होनी चाहिए।

गुण :

इस व्यजन मे कैलोरी होती है। लोहे और कैल्शियम भी भरपूर होता है। दाल के साथ अनाज मिलाने से प्रोटीन की मात्रा वढ जाती है। ये सेव सप्ताह भर रखे जा सकते हैं।

५—दही भात—

सामान चावल—५०० ग्राम, दही—५०० ग्राम, ककडी—५०० ग्राम, टमाटर—५०० ग्राम, नारियल—१०० ग्राम, वनस्पति का तेल—१ कटोरी छोटी, हरी मिर्च—६ से ८, हरा धनिया—१० ग्राम, राई—१ चम्मच ५ ग्राम), नमक—स्वाद के लिये।

विधि :

चावल उवाल लें, दही मे नमक डालकर मिलालें, ककडी, टमाटर, हरा धनिया, मिर्च धोकर काटलें, नारियल को पीस लें, वनस्पति तेल को गरम कर राई और मिर्च डाल दे वाद मे चावल उडेल दे हरी कटी हुई भाजी और पिसा हुआ खोपरा डालकर मिला ले, परोसने से पहले अच्छी तरह मिला लें।

उपयोग

हमेशा वननेवाले चावल से अधिक स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है।

६—उसल-मिखल—

सामान · चना १०० ग्राम, भुनी हुई मू गफली २५ ग्राम, ताजा नारियल-१५ ग्राम, वनस्पति तेल २५ ग्राम, छोटा प्याज—२, धनिया पत्ती २० ग्राम स्वाद के लिए नमक और नीवू।

विधि · चने को एक दिन पहले पानी मे भिगो दें, पानी से निकाल, धोकर उवाल लें, मसाला, उवला चना और मू गफली मिलाले, नमक-मसालें मिलाकर अच्छी तर ढक दे, कटा प्याज और नारियल और धनिया मिला दें ऊपर से नीवू निचोडले।

विशेपता

सभी प्रकार के विटामिन मिलते हैं और पाण्डु रोग से रक्षा करते हैं।

डा० अल्बर्ट स्वाइत्जर

प्राणी—रचना विशेषज्ञ, अध्यात्मवादी अपने समय की रूढ़-धार्मिकता को चुनौती देनेवाले और एक वर्ष मे आठ सौ से भी अधिक शल्य-उपचार करनेवाले डा० स्वाइत्जर की दया असीमित है—

"जब कभी मैं किसी प्रकार के जीवन पर आघात करता तो हू मुझे दृढता से निश्चित होना चाहिए कि यह अपरिहार्य है, मुझे अपरिहार्य से परे भी नही जाना चाहिए—यहा तक कि समानरूप से महत्वहीन चीजो मे वास्तविकता से तो वह व्यक्ति आचारवान है जो बर्फ का बिल्लौर भी नष्ट नही करता जो धूप मे चमकता है, पेड से एक पत्ती भी नहीं तोडता।"

हमारी पीढी मे निर्दोष—गूगे पशुओ के लिए कोई भी व्यक्ति इतना प्रवाह पूर्ण नही बोला है जितना डा० स्वाइत्जर। उन्होने लिखा है—

"हे ईश्वर। हमारी विमम्र प्रार्थना सुनो, हमारे मित्रो के लिए, पशुओ के लिए, विशेष कर पशुओ के लिये जिन्हे दुख है, कम भोजन पाते हैं और निर्दयता से व्यवहृत होते हैं। हर एक के लिए जिनका शिकार किया जाता है, या खो दिये जाते हैं या भूखे रखे जाते हैं या डरा दिए जाते हैं। हम उन सबके लिए तुम्हारी दया और कृपा की प्रार्थना करते हैं और उनके लिए जो उनसे मुनाफा लेते है हृदय विनम्र हाथ और उपकारी शब्दो का निवेदन करते हैं हमे पशुओ का सच्चा मित्र होने योग्य बनाओ, ताकि हम स्वय दयापूर्ण आशीर्वाद बाटे।"

एक स्थान पर वे लिखते हैं—

"पशु जीव के रक्षण के धर्मकार्य की ओर मेरा बचपन से ही मन आकर्षित था, इसमे मुझे विशेष आनन्द मिलता था।"

आहार में हैं आज मजे के !

—डा० भोजराज छाबडिया [सन्चालक प्राकृतिक चिकित्सालय, इन्दौर]

ताजे फल व उनके रस, उवली हुई सब्जियो के रस, जो का पानी, छाछ, गाय या बकरी का दूध फटे दूध, का पानी व नारियल पानी हल्का व सुपाच्य आहार है।

प्राकृतिक चिकित्सा के दृष्टिकोण से यहा कुछ स्वादिष्ट व स्वास्थ्य-वर्द्धक भोजन की जानकारी प्रस्तुत है।

१—प्रोटीन रोटी –

जैसे कचौरी दाल डालकर तैयार की जाती हैं, वैसे ही रोटी के वीच मे नारियल का चूरा एवं थोडी-सी खाडसारी डालकर पकाई रोटी प्रोटीनरोटी कहलाती है। यह साधारण रोटी से अधिक पौष्टिक होती है।

२—वेजिटेबल (वनस्पति) रोटी—

पजावी लोग मूली को कद्दूकस पर कसकर थोडा-सा नमक मिलाकर आटे के बीच मे रखकर रोटी वनाकर खाते हैं। इसी प्रकार ताजी पालक को पीसकर उसमे आटा गूंथकर स्वाद के लिये थोडा-सा नमक एव काली या हरी मिर्ची डालकर रोटी वनाई जाती है। इस रोटी को क्लोरोफिल रोटी भी कहा जाता है। यह कब्ज मिटाने मे सहायक होती है।

३—ग्लूकोज रोटी—

पके हुए केलो के या नरम खजूर के साथ आटा गूंथकर रोटी वनाने को ग्लूकोज रोटी कहते हैं। यह रोटी वजन वढाने मे सहायक होती है।

४ सब्जियों की खिचडी—

सब्जिया जैसे फूलगोभी, आलूमटर, टिण्डे, गाजर, चुकन्दर, बैंगन, प्याज आदि चावल के साथ घी व मसाले एव नारियल और अदरक डालकर पानी मे पकाई जाये तो स्वादिष्ट सब्जियो की खिचडी तैयार हो जावेगी। यह अकेली खायी जा सकती है। इसके साथ खाने के लिए अलग से सब्जी पकाने की आवश्यकता नही पडती।

५. स्वास्थ्यवर्द्धक हलुआ—

साधारणत लोग घर मे आटे अथवा सूजी का हलुआ बनाते हैं, परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में गाजर, काशीफल (पीला कद्दू) आलू अथवा शकरकद का हलवा वनाकर खाना स्वास्थ्यवर्द्धक माना जाता है।

६ सब्जियों का सूप—

कोई भी तीन चार प्रकार की सब्जी जैसे कि पालक, चौलाई, बथुआ, गाजर, गोभी, कद्दू, आलू, टमाटर आदि वारीक काटकर अधिक पानी मे उवालने चाहिए। पकने पर रस छानकर पीना चाहिए। सब्जियो के रस को अधिक स्वादिष्ट वनाने के लिए हरे मसाले या अदरक, अजवाइन, निम्बू का रस, काली मिर्च अथवा जीरा डाल सकते हैं। पाचनक्रिया सुधारने और भूख वढाने के लिए यह एक उत्तम पेय पदार्थ है।

७. सब्जियो का कचुम्वर (सलाद)—

कोई भी तीन-चार प्रकार की कच्ची खाने योग्य सब्जिया जैसे कि गाजर, टमाटर, मूली, ककडी, चुकन्दर, पालक, पत्ता गोभी, सलाद की पत्ती, प्याज आदि वारीक काटकर इकट्ठी कर एक प्लेट मे रखकर खाने को कचुम्वर अथवा अग्रेजी मे वेजीटेवल सलाद कहते हैं। कचुम्वर को अधिक स्वादिष्ट वनाने के लिए नारियल का चूरा या दही अथवा जेतून का तेल मिलाकर खाना चाहिए। पुरानी कब्ज से छुटकारा पाने के लिए प्रतिदिन २५० ग्राम कचुम्वर खाने का नियम वनाना चाहिए।—

८. फलो का कचुम्वर (सलाद)

तीन चार प्रकार के ताजे फल जैसे कि केला, आम, चीकू, पपीता, अगूर, सेव, अमरूद नासपत्ती सतरा, मोसम्वी आदि पानी से साफ करके काटकर काच या चीनी के वर्तन मे रखकर खाने को फल कचुम्वर (फ्रूट सलाद) कहते हैं। इसको अधिक स्वादिष्ट वनाने के लिए दूध की मलाई अथवा आइसक्रीम या शहद डालकर खाना चाहिये। नियम से फलो का सेवन रोगमुक्त रहने मे सहायक होता है।

९. प्राकृतिक मिठाई—

यह मिठाई मैंदे, वेसन घी, तेल, शक्कर एव अग्नि के विना वनाई जाती है। विशेषकर सर्दी के दिनो मे खाई जाती है। एक भाग तिल या मूगफली के दाने या काजू या अखरोट या सूखा नारियल और दो भाग विना गुठली के खजूर अलग-अलग कूटकर आपस मे मिला दीजिए। थाली मे रखकर, वेलन से वेलकर चाकू से काटकर मिठाई के टुकटे वना लीजिए। आप चाहें तो यह मिटाई लड्डू के रूप मे भी वना सकते हैं। इस मिठाई को अधिक आकर्षक वनाने के लिए चादी के वर्क भी लगा सकते है।

१० प्राकृतिक शर्वत—

गर्मी के दिनो मे ठण्डे पानी मे और सर्दी के दिनो मे गर्म पानी मे नीवू का रस व शहद मिलाकर पीने से थकावट दूर होती है एव स्फूर्ति आती है।

११. स्वादिष्ट लस्सी—

दही मे गन्ने का रस डालकर लस्सी वनाना चाहिए। लस्सी के प्रेमियो को इस लस्सी के आनन्द का अनुभव करना चाहिए।

१२. स्वास्थ्यवर्द्धक पेय—

दूध मे आम का ताजा रस मिलाकर पीने से स्वास्थ्य, शक्ति एव वजन वढाने मे सहायता मिलती है।

१३ स्वादिष्ट चटनी—

हर प्रकार के हरे मसाले जैसे कि पोदीना धनिया व मैथी, आवले, हरी मिर्च, लहसुन, अदरक, लाल टमाटर, आलू बुखारा एव सूखी किशमिश पीसकर वनाई जाती है। भूख वढाने के लिए और रक्त की कमी दूर करने के लिए यह एक उत्तम चटनी है।

१४ सात्विक इडली—

दक्षिण भारत की इटली खाने की प्रथा उत्तर हिन्दुस्तान मे भी फैल रही है। मद्रासी होटलो अथवा परिवारो मे उर्द की दाल व चावल को पीसकर वाष्प द्वारा इडली वनाई जाती है। इडली के आटे मे यदि कोई भी सब्जी कद्दूकस से वारीक काटकर मिलाई जायेगी तो सात्विक इडली तैयार हो जायेगी। इस इडली को अधिक स्वादिष्ट वनाने के लिए थोडा सा नमक एव काली मिर्ची या हरी मिर्च डालनी चाहिए।

१५ अकुरित गेहू—

साफ किये हुए गेहू को वारह घण्टे के लिए पानी मे भिगोकर रखने के पश्चात् कपडे मे वाधकर टाग देना चाहिए। कपडे के ऊपर चौबीस घण्टे तक, हर तीन चार घण्टे वाद पानी के छीटे लगाने चाहिये। कुल छत्तीस घण्टे मे गेहू मे अकुर निकल आयेंगे, इससे गेहू नरम तथा खाने योग्य हो जायेंगे। अकुरित गेहू विना पकाये ही खाये जा सकते हैं। स्वाद के लिए थोडी-सी खाडसारी या सूखी किशमिश मिलाकर खाना चाहिए। २५० ग्राम आटे से वनी हुई रोटी खाने से जितनी तृप्ति अथवा शक्ति मिलेगी, उतनी ५० ग्राम अंकुरित गेहू खाने से मिल सकेगी। यह गेहू विटामिन 'ई' से भरपूर होने के कारण स्वास्थ्य एव शक्ति का भण्डार है। नपु सकता अथवा वाझपन मे अकुरित गेहू का सेवन लाभकारी होता है।

[—५०, पलसीकर कॉलोनी,
इन्दौर (म० प्र०)]

पेटू लोग नित्यप्रति ठूँस-ठूँसकर खाते ही चले जाते हैं, पर पेट कोई गड्ढा तो है नहीं, जिसे जो कुछ आया भर दिया। परिणाम यह होता है कि उन्हे असमय मे ही तड़प-तड़प कर जिन्दगी से हाथ धोने पडते है।

—साध्वी यशोधरा
[आचार्य श्री तुलसी की शिष्या]

आरोग्य और मितभोजन

एकबार चरक ऋषि कौवे का रूप धारण कर नदी तट पर जा बैठे। अनेक लोग वहा स्नान कर रहे थे। उन्होने मनुष्य की भाषा मे पूछा—"कोऽरूक्, कोऽरूक्, कोऽरूक् ?"

एक ने कहा—जो प्रतिदिन च्यवनप्राश का सेवन करता है, वह बात पूरी नही हुई कि दूसरे ने कहा—"मकरध्वज" की एक खुराक नित्य लेनेवाला कभी सुस्त होता ही नही, नई ताजगी उसे मिलती रहती है।

तीसरे ने कहा—"द्राक्षासव" पीने वाला सदा स्वस्थ रहता है। पाचनक्रिया को दुरुस्त करने एव अग्नि-दीपन मे इससे बहुत सहायता मिलती है।

उत्तर सुनकर ऋषि हैरान रह गये। मन ही मन कहने लगे मैंने शास्त्र इसलिए नही लिखा कि लोग औषधिया खा-खाकर स्वस्थ रहे, औषधियो का दिग्दर्शन मैंने रोग-निवारण के लिए किया है किन्तु इन लोगो ने तो पेट को ही दवाखाना बना लिया है।

निराश हो दूसरे तट पर गये और वही प्रश्न वृक्ष पर बैठ कर पुन तीन बार दुहराया।

वाग्भट स्नान कर रहे थे। उन्होने जिज्ञासा को समाहित करते हुए कहा—"हितभुक्"

पक्षी फिर बोला—"कोऽरूक् ?"

उत्तर मिला—"मितभुक्'

पक्षी ने फिर प्रश्न दुहराया।

समाधान मिला—ऋतभुक्—सच्चाई की रोटी खाने वाला।

उन्हे बडी प्रसन्नता हुई कि मेरे ग्रन्थो का मर्मज्ञ कोई है तो सही।

स्वास्थ्य और आहार का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। हित, मित और ऋतभोजी अस्वस्थ हो ही कैसे सकता है? खाने को खाते सब हैं पर खाने का विज्ञान कितनो को है कुछ कहा नही जा सकता। कुछ जीने के लिए खाते है तो कतिपय खाने के लिए ही जीते हैं। खाने के अभाव मे मरनेवालो की अपेक्षा अज्ञानपूर्वक खाकर मरनेवालो की सख्या कही अधिक है।

हाल ही मे अमेरिका मे डाक्टरो का एक सम्मेलन बुलाया गया। एक वडे डाक्टर ने बताया—हमारे रोगी तीन भाग खाते हैं और एक भाग खाली रखते हैं। जबकि होना यह चाहिए "एक गुना खाये, दुगुना पीये, तिगुना और चौगुना हसे।"

हमारे जीवन का महान् उद्देश्य है—चेतना का विकास, उन्नयन और उर्ध्वीकरण। इसके लिए शरीर धारण अनिवार्य तत्त्व है। चूकि "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ आत्मा निवास करती है। शारीरिक अस्वास्थ्य भी साधना का एक विघ्न है।

मास, अस्थिमय शरीर के लिए आहार आवश्यक है। भोजन से ही रस, त्वचा, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सात धातुओ का निर्माण होता है। आहार का शरीर और मन पर गहरा असर होता है।

इसलिए आहार क्यो, कब, कितना और कैसे करें? इसका सम्यक्परिज्ञान अत्यन्त अपेक्षित है।

कितना खाएँ? यह यहा चर्चनीय विषय है। अन्यान्य विधि-विधानो की तरह इस विषय मे कोई एक नियम नही हो सकता कि इतना ही खाना चाहिए या इतना नही खाना चाहिए।

इसके समाधान मे यही कहा जा सकता है कि—

सर्वकाल स्यात्, मात्रा ह्यग्ने. प्रवर्तिका।
मात्रा द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरुण्यपि लघून्यपि।

भोजन के विषय मे मात्रज्ञ होना जरूरी है। हीनमात्रा और अतिमात्रा—ये दोनो ही स्थितियाँ शरीर के लिए घातक है।

बहुत स्वल्प खाने से शरीर कृश हो जाता है और बल का उपचय नही होता। ओज क्षीण हो जाता है और सभी वायविक रोगो को उभरने का अवसर मिल जाता है। सोपक्रम आयुष्य-क्षय मे भी यह एक निमित्त है।

अतिमात्रा मे किया गया आहार सभी दोषो को शीघ्र प्रकुपित कर देता है।

आचार्य भिक्षु ने "शील की नववाड" नामक ग्रन्थ मे अतिभोजन के दुष्परिणामो का मार्मिक चित्रण किया है।

"अतिमात्रा मे आहार करने से रूप, वल और गात्र क्षीण होते हैं। प्रमाद, निद्रा तथा आलस्य की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। कहावत है–"सेर की हाडी मे सवा सेर डालने से वह फूट जाती है।" उसी तरह अधिक आहार करने से पेट फटने लगता है। अनेक रोग हो जाते हैं। विपय की वृद्धि होती है।"

अतिआहार से आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनो प्रकार के दोपो की उत्पत्ति होती है।

अति आहार से शरीर श्लथ हो जाता है। खाना शरीर को ताकत देता है, किन्तु अधिक खाना कमजोरी पैदा करता है। मात्रा से अधिक अमृत भी जहर वन जाता है। पक्वाशय भोजन पकाता है। खाते समय ऊर्जा का सारा प्रवाह पेट की ओर चला जाता है। अधिक खाने पर उसे पचाने के लिए अधिक ऊर्जा चाहिए। अतिरिक्त ऊर्जा दूसरे अवयवो से प्राप्त की जाती है। परिणाम यह होता है कि मस्तिष्क की ऊर्जा का उपयोग पचाने मे होने के कारण चिन्तन का दारिद्रय वढता है, शरीर स्थूल और शक्तिया क्षीण होती जाती है।

मनु ने तो इसके भयकर परिणामो से वचने के लिए वहुत वल दिया है—

"अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यंचाति भोजनात्।
अपुण्यं लोक विद्विष्ट तस्मात् तद् परिवर्जयेत्॥"

अधिक खाना मौत को वुलाना है। पेटू लोग नित्यप्रति ठूस-ठूस कर खाते ही चले जाते हैं, पर पेट कोई गड्ढा तो है नही जिसे जो कुछ आया भर दिया। परिणाम यह होता है कि उन्हे असमय मे ही तडप-तडप कर जिन्दगी से हाथ धोने पडते हैं।

वैज्ञानिको ने चूहो पर प्रयोग किये—

कुछ चूहो को गरिष्ठ भोजन और वह भी ठूस-ठूस कर कराया गया और कुछ को सामान्य भोजन खिलाया गया और वह भी एक दिन के अन्तर से परिणाम यह आया कि—पहलेवाले वहुत जल्दी मर गए और दूसरे उनसे दो वर्प वाद।

गरिष्ठ भोजन से आमाशय, पित्ताशय सभी विकृत हो जाते हैं। आते शिथिल हो जाती है। फलस्वरूप ६०-७० वर्ष की आयुवाला पचास मे ही अपनी यात्रा समाप्त कर देता है।

शरीर के लिए प्रोटीन, वसा, स्टार्च, क्षार, जल, विटामिन आदि सभी तत्त्वो की अपेक्षा होती है। आहार मे वीस प्रतिशत आम्ल तत्व रहने चाहिए

और अस्सी प्रतिशत क्षार—किन्तु रसगृद्धि स्वादवृत्ति और अज्ञान के कारण अधिकाश लोगो के भोजन मे क्षार तत्व कम होते हैं और आम्ल-तत्व अधिक। मिठाईयां, चरपरी और तली भुनी चीजो मे आम्लता अधिक होती है और फल, तरकारिया आदि मे क्षार-तत्व की बहुलता होती है।

"भाव-प्रकाश" मे भोजन के छह प्रकारो का उल्लेख मिलता है—

१ चूष्य २. पेय ३. लेह्य ४ भोज्य ५. भक्ष्य ६. चर्व्य—ये उत्तरोत्तर गुरु होते हैं।

कुछ पदार्थ मात्रा से गुरु होते हैं और कुछ प्रकृति से गुरु और कुछ सस्कारित होने पर गुरु हो जाते है।

मात्रा गुरु—मुद्‌ग (मू ग) आदि

स्वभाव गुरु—मास आदि

सस्कार गुरु—मिष्टान्न आदि

जो मंदाग्नि हो, उसके लिए भारी भोजन सर्वथा परिहार्य है। अन्यथा रही-सही पाचन शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जितना हल्का भोजन होता है उतना ही सुपाच्य होता है ।

स्वस्थ व्यक्ति के लिए सीमित मात्रा मे ये उपयोगी भी हो सकते हैं।

पर क्या हल्के और क्या भारी, सभी द्रव्य मात्रा की अपेक्षा रखते हैं? मात्रा मे खाये गये लघु और गुरु पदार्थ शरीर को पोषण देते है और अग्नि का उद्दीपन करते हैं। हीन या अतिमात्रा मे ये ही घातक बन जाते है।

मात्रा के माने इतना ही है कि जिस भोजन को कर चुकने पर पेट पर कोई दबाव नहीं पडता। भारीपन की अनुभूति नही होती। प्रमाद, आलस्य, तन्द्रा, उन्माद और वासना नही उभरती वह भोजन मित भोजन की कोटि मे आता है।

मित-भोजी दीर्घायु होता है। साध्वी श्रेष्ठा मातुश्री वदनाजी इसका ज्वलन्त निदर्शन है।

वर्षो से एकान्तर तपस्या और सन्तुलित आहार के कारण आज चौरानवें वर्ष की अवस्था मे भी वे पूर्ण स्वस्थ हैं और सानन्द सयम यात्रा कर रही है।

मात्रा के किए गए पथ्य आहार का भी चिन्ता, शोक, भय, क्रोध और अधिक जागरण आदि कारणों से सम्यक्‌परिपाक नही होता।

यदि मानव का मन और तन तनाव मुक्त हो और वह मितभोजी हो तो कोई कारण नही कि उसे अल्प अवस्था या असमय मे ही मृत्यु का मु ह देखना पड़े।

● बालकोवाजी भावे
(वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी, गांधीवादी-साधक, कार्यकर्ता)

नीरोगी शरीर :
आहार का स्वरूप

★

आहार के साथ आरोग्य का विशेष सम्बन्ध है। आहार-शास्त्र का ज्ञान और सयम दोनो जीवन मे है, तो शरीर निरोगी रह सकता है। दोनो मे से एक की कमी है तो शरीर रोगयुक्त हो जाएगा। हम पूज्य गाधीजी के साथ सावरमती आश्रम मे रहते थे तव हमारे खान-पान मे सयम था मगर आहार-शास्त्र का ज्ञान नही था। उपवास आदि का महत्व भी ध्यान मे नही आया था। इसलिये हम बीमारी से मुक्त नही रह सके।

आहार का शास्त्रोक्त ज्ञान, आहार-सयम और बीच-बीच मे निराहार रहने का विधान। शरीर को निरोग रखने के लिए इन तथ्यो पर बल देवें।

समाज मे आजकल जो आहार लिया जाता है उसका विश्लेपण करने पर मालूम होगा कि सामान्य लोगो के आहार मे क्षार की कमी रहती है। पत्ती वाली सब्जियो मे क्षार पूर्णरूप मे रहते है। मगर पत्ती की सब्जी हमारे भोजन मे प्राय नही रहती। यह वडी कमी हमारे भोजन मे रहती है। वैसे देखा जाय तो पत्ती की सब्जी और सब्जियो की अपेक्षा सस्ती रहती है। दूसरी कमी यह है कि हमारे भोजन मे मिर्च, नमक, मसालो का हद से ज्यादा उपयोग होता है। इससे पाचक रस कृत्रिम रीति से पैदा होने के कारण पाचनसस्थान मन्द पड जाता है। आतो मे सूजन या फोडे शुरू होते हैं। इसलिये मिर्च नमक मसालो का उपयोग वहुत मर्यादित प्रमाण मे करना चाहिये। लाल-मिर्च के वजाय हरी मिर्च का उपयोग किया जाय तो हानि कम होगी। लाल-मिर्च मे विटामिन की कमी रहती है। तले हुये पदार्थों को टालना अच्छा है। मैं पूर्व अफ्रीका गया था तव देखने मे आया कि वहां के लोग मिर्च, नमक, मसाला खाना जानते ही नही। यूरोप मे भी मिर्च मसाला दाल मे या सब्जी मे कभी डालते नही। बाहर अलग से रखते हैं। जिस किसी को उपयोग करना जरूरी लगता हो, वे उसका उपयोग करते हैं। हमारे यहा के लोगो को इन चीजो की इतनी आदत पड गई है कि दाल

या सब्जी मे नमक या मिर्च न डाला जाय तो हम भोजन करने के लिये ही तैयार नही होगे। पदार्थों मे मानो अपना कुछ रस रहता ही नही। सारा रस मानो मिर्च-मसालो मे ही समाविष्ट हो गये हो। इसके अलावा हमारे आहार मे मसालायुक्त उबली हुई सब्जी ही हम लिया करते हैं। उसके साथ कच्ची सलाद मे क्षार पूर्णरूप से सुरक्षित रहते है। इसलिये कच्ची सलाद का समावेश आहार मे होना चाहिये।

लोगो को चबाकर खाने की आदत प्राय नही रहती। साबरमती आश्रम मे पूज्य गाधी जी ने हमे चावल के साथ रोटी खाना सिखाया। स्वतन्त्र रूप से चावल चबाया नही जाता। मगर रोटी के साथ चावल खाने की आदत डालने से चावल अच्छी तरह से चबाया जाता है। और मीठा भी लगता है। रोटी का आटा आजकल हाथ से पीसा हुआ आटा नहीं रहता। चक्की की आटे की ही रोटी खाई जाती है। मगर चक्की के आटे मे जीवनसत्व यानी विटामिन काफी प्रमाण मे जल जाते हैं। इसलिये हाथ का पीसा हुआ आटा इस्तेमाल करना स्वास्थ्य की दृष्टि से जरूरी है। गेहू, दाल आदि को अकुरित करके पकाया जाय तो जीवन सत्व का लाभ कुछ अश मे सहज मे मिल सकेगा।

शरीर को जितने आहार की जरूरत रहती है उससे अधिक प्रमाण मे खाने की आदत भी समाज मे पायी जाती है। इस आदत से हमे मुक्त रहना है तो चबाकर खाने की आदत डाली जाय तो सहज मे ज्यादा खाना पेट मे नही जायेगा क्योकि चबाकर खाने से लार ज्यादा घुलमिल जाती है और उससे तृप्ति का अनुभव होगा व ज्यादा खाना सहज मे टल जायगा।

आहार मे सयम की आवश्यकता रहती है। उसी तरह पूरे उपवास की भी जरूरत रहती है। शास्त्रकारो ने समाज मे धार्मिक दृष्टि से एकादशी-व्रत का समावेश इसीलिए किया। मगर आजकल हम एकादशी के दिन मूगफली आदि गरिष्ठ खाना लेते हैं और यह मूगफली भी भूजी हुई यानि जिसमे से विटामिन यानी जीवनसत्व नष्ट हो गये हो ऐसी। मूगफली लेनी हो तो अकुरित करके और गिनकर २०-२५ दाने लिये जाएँ। मगर सही तरीका तो यह है कि उपवास के दिन सिर्फ पानी पीकर ही रहते हैं तो पचनेन्द्रियो को पूरा आराम मिल सकता है। रोजाना दिन मे तीन-चार दफा खाया हुआ अन्न हजम करने मे पचनेन्द्रियो को दिन-रात काम करना पडता है। उन पचनेन्द्रियो को आराम मिलने के लिये शास्त्रकारो ने व्रतो की योजना की है।

आरोग्य कायम रखने की दृष्टि से शुद्ध हवा का भी महत्व है। शुद्ध हवा का महत्व आरोग्य की दृष्टि से कितना है, सब लोग उसे नही जानते। रात

को प्राय सब लोग जहा सोते हैं वहां के दरवाजे खिडकिया बन्द करके सोते हैं। शुद्ध हवा फेफडो के लिये खुराक है। यदि फेफडो को शुद्ध हवा न मिले तो फेफडे कमजोर हो जाते हैं। अपने शरीर मे जो खून रहता है उसे शुद्ध करना यह फेफडो का कार्य है। यह कार्य फेफडे सतत मृत्यु पर्यन्त करते रहते है। फेफडो को शुद्ध हवा न मिले तो फेफडे कमजोर हो जाते है व खून शुद्ध करने का कार्य ठीक तरह न हो सकने से शरीर की गन्दगी बाहर ठीक तरह निकल न सकेगी। शरीर मे रोग जल्दी दाखिल होने की सम्भावना रहेगी। दमा, क्षय, जुकाम, सर्दी, इन्फलुएंजा—ये फेफडे के रोग है। इसलिये जहा हम रहते है वहा शुद्ध हवा का सचार बराबर चलना चाहिये। फेफडो की शक्ति बढाने के लिये रोजना दीर्घ-श्वसन पाच-दस मिनिट तक करना चाहिये।

हवा के जितना महत्व पानी का भी है। भोजन करते समय पानी पीने की आदत प्राय सबको रहती हैं। भोजन करते समय पानी पीने से पाचक रस पतले हो जाने से पचन क्रिया मे मन्दता आने की सम्भावना रहेगी। इसलिये भोजन के आधा या एक घण्टा पूर्व पानी पी लेना चाहिए। ताकि भोजन करते समय पानी पीने की जरूरत महसूस न हो। भोजन के बाद कम से कम एक घण्टे के बाद पानी पीने मे कोई हर्ज नही। सुबह उठकर मुँह धोने के बाद पानी मे थोडा-सा नीबू का रस डालकर उसमे थोडा शहद या गुड मिलाकर लेने से दस्त साफ होने मे मदद मिल सकेगी। गरमी के दिनो मे पानी पीने मे सावधानी रखनी चाहिये। उन दिनो बहुत पानी पीने से पचन मद हो जाता है। इसलिये अति धूप काल मे ठण्डा पानी थोडा पीना चाहिये। पानी जितना ठण्डा होगा उतनी प्यास थोडा पानी पीने से बुझ जायगी।

खुरदुरे कपडे से सारा शरीर माज कर स्नान करने से सारी त्वचा मे जो असख्य रध्र रहे हुए हैं वे सब खुलकर स्वच्छ हो जाते हैं। भीतर की गन्दगी बाहर निकालने का यह श्रेष्ठ साधन है। इससे शरीर को निरोग रखने मे काफी सहायता मिल पाती है। साबुन से स्नान करने से साबुन मे जो द्रव्य रहते हैं उसका परिणाम शरीर की चमडी पर अच्छा नही रहता। रोजाना कसरत करने का महत्व भी बहुत है। पूज्य गाधीजी काम मे इतने व्यस्त होते हुए भी सुबह आधा घण्टा और शाम को आधा घण्टा घूमने जाते थे। इसलिए रोजाना कुछ कसरत करने का खयाल हरएक को रखना जरूरी है आसन आदि का व्यायाम भी किया जा सकता है।

अन्तत आहार का शास्त्रीय-ज्ञान हो, आहार लेने मे सयम हो और बीच-बीच मे उपवास करने का विधान हो तो इन तीन मुख्य चीजो के सहारे शरीर निरोगी रह सकता है। ■

रसेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्व
अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे वडिस विभिन्नकाए
मच्छे जहा आमिस भोगगिद्धे ।

—उत्तराध्ययन ३२।६२

जो रस मे—स्वाद मे आसक्त होता है, वह अकाल मे ही विनाश को प्राप्त हो जाता है। जैसे मास के लोभ मे फँसी मछली (मत्स्य) मछेरे के काटो मे फँसकर अपने प्राण गवा देती है।

प थ्य स म्ब न्धी आठ भाव

—डा० पी० एम० मेहता

★ पथ्य चिकित्सा से उत्तम है।

★ बीमारी आधी मन की होती है।

★ पवित्र व्यवहार का आचरण करने से मनुष्य सभी दुःखो से मुक्त हो जाता है।

पथ्य और पथ्य सम्बन्धी नियमो के आठ भाग इस प्रकार हैं—

१—प्राकृतिक गुण, २—रचना, ३—सयोग, ४—मात्रा, ५—वासस्थान, ६—समय, ७—उपयोग के नियम, ८—उपयोग कला।

यही है पथ्य और पथ्याचार की अष्टपदी।

सर्वाधिक स्वास्थ्यकर पथ्याचार के नियम —

भोजन वही खाना चाहिए जो गर्म हो, चिकना हो, शक्तिवर्धन मे विरोधी न हो, माप मे उचित हो, पिछले भोजन का पूर्ण पाचन हो गया हो, अनुकूल स्थान सहायक उपकरणो से युक्त हो, न जल्दी मे बना हो और न ही अधिक अवकाश मे। विना बात करते या हँसे, पूर्ण एकाग्रचित्त और उसका उचित ख्याल रखते हुए हो।

किसी द्वारा खाया गया भोजन जो उद्विग्नता, दुःख, भय, क्रोध, दर्द, बैठने की आदत या रात भर जगाने को दिया जाता है भले वह निर्धारित पथ्य हो और तौल का पूरा ध्यान रखकर ही खाया जाता हो, वह उचित रूप से नही पकेगा।

भोजन के अलग रूपान्तर —

व्यक्तिगत पथ्य उम्र, यौन, शक्ति, प्रकृति, मानसिक विकास, जलवायु, मौसम, व्यवसाय, शारीरिक और मानसिक कार्य के अनुसार भिन्न होता है। पथ्याचार पर विशेषज्ञो द्वारा बडे विचार-विमश के बाद अध्यक्ष आत्रेय पुनर्वसु 'चरक सहिता' के लेखक अपने सारपूर्ण विचारो मे अच्छे पथ्य की अनिवार्य महत्ता को घोषित करते हैं।

मुझे अब आपके सामने सही कारण प्रस्तुत करना चाहिए। ये प्राथमिक तत्व हैं जिनका पूर्ण सयोग मनुष्य को अच्छी स्थिति मे होने का विकास देता है, अपने अपूर्ण सयोग मे वह अनेक प्रकार की बीमारियाँ लाता है। आयुर्वेद ने दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर विचार किया है —

१—शिक्षा की अवधि मे मस्तिष्क को शुद्ध और सही स्थिति मे रखा जाना चाहिए और इसी कारण शाकाहारी भोजन निर्धारित किया गया।

२—तपस्वी या आत्मानुशासित जीवन की अवधि मे मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान जाना चाहिए, इसीलिए कठोर शाकाहारी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया।

३—रसायन चिकित्सा की प्रक्रिया की अवधि मे मस्तिष्क की पवित्रता सर्वाधिक आवश्यक थी और इसी कारण केवल शाकाहारी भोजन स्वीकृत था।

४—शाकाहारी भोजन और मद्यसार का परहेज मानसिक अव्यवस्थाओ के निषेध के लिए पूर्णरूप से आवश्यक समझे जाते हैं।

हर व्यक्ति सर्वोच्च होने की माग करता है और जीवन के सभी कष्टो से मुक्ति चाहता है। आयुर्वेद मे वर्णित पवित्र पथ्य और पथ्याचार के नियमो के साथ पवित्र व्यवहार पर आचरण द्वारा ही मनुष्य सासरिक दु खो से मुक्ति प्राप्त करने के अपने अन्तिम लक्ष्य मे निर्भ्रान्त रूप से सफल होगा।

[लेखक के विस्तृत लेख "शाकाहारी सिद्धान्त और आयुर्वेद" से लिया गया सक्षिप्त अश]

[शारदा, 'ए' रोड, चर्चगेट, बम्बई-२०]

परसो उसके पिता की वर्षी है। ब्राह्मण भोग कराना होगा। मां, समाज, इर्द-गिर्द के सभी लोग इसका आग्रह करते हैं। मैले कुचेले अस्थिपजरों ने उसे नया बोध दिया। क्या इस भोग के स्वरूप को बदला नहीं जा सकता ? अपने नये विचार से उसका मन काफी हल्का हो गया। वह श्राद्ध की तैयारी मे जुट गया।

★

दीपू को आज पहली वार प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि अध-विश्वासो की जडें भारतीय जन-मानस के अन्तर मे कितनी गहरी जमी हुई है। स्वर्ग-नरक, भाग्य और विधाता के भावनामय स्वरूप का सासारिक गतिविधियो से कैसा अटूट सम्वन्ध है, वैयक्तिक क्रिया-कलापो पर उनका कितना नियन्त्रण है, इन सव वातो को उसने आज ही जाना। वह जानता था कि आध्यात्मिकता के अधकचरे ज्ञान एव भाग्यवादिता पर थोथी आस्थाओ ने समाज को पतन के गर्त्त मे डाला है और आज उसने अपनी आखो से इसका साक्षात्कार कर लिया। इतने दिन वह समझ रहा था कि समाज मे वैचारिक क्राति लाना कोई मुश्किल कार्य नही है, परन्तु आज उसे लगा कि उसके विश्वासो का रग उडता जा रहा है। उसके सिद्धान्त मजबूरी के पख लगाकर हवा मे छितरने को आतुर है।

दीपू सवेरे से ही पार्क आ गया। पार्क के पिछले कोने मे मौलसरि के वृक्ष के नीचे उसकी पेटेन्ट वैठक होती है। वह वही आकर जम गया। उसे वह जगह इसलिए पसन्द है कि उधर कोई फटकता नही था और उसे वहा एकान्त मिल जाया करता था। आज वह मानसिक उलझनो मे अति त्रस्त है। मन मे रह-रह कर उठने वाले आक्रोशयुक्त विचारो से वह वडा परेशान हो रहा है।

कहानी

ए | क | ख | त |

आ स्था के ना म

—पुरुषोत्तम छगानी
(हिन्दी तथा राजस्थानी के कवि एव लेखक)

वह जानता था कि उसकी मा की सारी वातें उसकी नजर मे हास्यास्पद थी, निरर्थक थी। तर्क की तराजू पर एकदम हल्की, धर्म के नाम पर सर्वथा दकियानूसी। तो क्या वह उनका विरोध कर सका ? नही। मगर क्यो ?

यही सोचकर दीपू सवेरे से उद्वेलित हो रहा था। उसने मा के समक्ष दर्शनों का हवाला देते हुए कई तर्क दिये थे, परन्तु मा को मना नही पाया। क्यो ? मा उसके विचारो से आश्वस्त क्यो नही हुई। दीपू नही समझ पा रहा था कि उसका सारा दर्शनज्ञान एक अनपढ के आगे क्यो नही टिक सका। मा ने उस पर नास्तिक का आरोप थोप दिया, भले ही वह यह न जाने कि नास्तिक की परिभापा क्या होती है। दीपू के मन ने तो वहुत चाहा था कि कह दे कि नास्तिक कौन है और आस्तिक कौन ? मगर पता नही क्यो वह ऐसा कह नही सका। हारें हुए जुआरी की तरह वह चारपाई से उठ गया था। अपराधी की तरह मा के उछाले हुए शव्दो को तन-मन मे लपेट कर घर से वाहर निकल गया था।

दीपू घास पर लेट गया। उसकी आखो के समक्ष सुवह की घटना फिल्म की तरह चलने लगी।

सवेरे चाय मा ही लेकर दीपू के कमरे मे आई थी। वैसे यह ड्यूटी उसके छोटे भाई सनू की होती है। पर आज मा खुद चाय लेकर आयी थी, इसलिए दीपू ने अनुमान लगा लिया था कि जरूर कोई विशेप वात है। मा कुछ कहने को भूमिका तैयार करे, उससे पूर्व ही उसने पूछ ही लिया— 'क्यो मा ! आज सनू नही आया चाय लेकर। तुम ।"

"सनू को राशन की दूकान पर भेजा है। अभी से लाइन मे खडा होगा तो शायद दस वजे तक कही वारी आ जाय। भाग्य का दोप है—ऐसा सडा गला अनाज भी सरलता से मिल नही पाता।" "मा ! यह भाग्य का दोप नही, हमारा है, हमारे कर्णधारो का है। लोगो की नजरो पर स्वार्थ का पर्दा पडा हुआ है। उनकी वदनीयत का फल हम सवको भुगतना पड रहा है।" दीपू एकवार ही मे अपने आक्रोश को उगल देना चाह रहा था, परन्तु मा ने चाय ठण्डी होने का अलार्म देकर प्रवाह मे अवरोध उत्पन्न कर दिया था। उसने एक ही घूट मे ठण्डी हो चली जाय को गले उतार दिया। उसे कुछ सयत देखकर मा ने कहा—"वेटा ! तू क्या जाने ! भाग्य के खेल वडे रगीन हुआ करते हैं।"

"भाग्य भाग्य भाग्य !" वह लगभग चीख पडा था।

दीपू एक झटके के साथ उठकर वैठ जाता है जैसे तन-मन पर चिपकी सुवह की वातो को झटके से झाडना चाह रहा हो। वह चारो ओर नजरें दौडाने लगता है। सडक के किनारे सीना ताने खडी वहु-मजली इमारते उसे उपहास करती हुई-सी लगने लगती है। उसके चेहरे पर कई भाव वनते

विगडते है। मन मे विचारो का ज्वार-सा उठता हुआ महसूस होता है और उसमे घिरा वह अपने को असहाय-सा पाता है।

जिधर देखो लोग भाग्य की दुहाई देते रहते हैं। अमीर, अमीर क्यो हैं ? भाग्य से। गरीव, गरीव क्यो हैं ? भाग्य से। नही नही '' नही ! सम्पन्न लोगो का यह नियोजित प्रपच है। समाज का यह परम्परागत समीकरण सभी जानते हैं कि झूठा है, भ्रातिमूलक है, फिर भी लोग अपनी सुविधानुसार इसका उपयोग करते रहते हैं। अमीर अपने कुत्तो को दूध पिलाये और निर्धनो के वच्चे दाने-दाने को तरसते रहे—यह भाग्य का खेल नही हो सकता है। वह चिल्ला-चिल्ला कर ऐसा कहना चाहता है, पर सुनता कौन है ? उसकी मा ने भी तो उसकी वात नही मानी।

चाय पीने के वाद मा ने याद दिलाया था कि परसो उसके पिताजी की वर्षी है और उसके लिए आवश्यक तैयारिया करनी है।

"परसो विरादरी के लिए जीमनवार का इन्तजाम करना है, साथ ही पच्चीस व्राह्मणो को वुलाकर पूजा-पाठ की रस्म करनी है।" मा ने कहा था।

"इतना सव किसलिए ? एक ओर, लाख-लाख भूख की ज्वाला मे स्वाहा हो रहे हैं और दूसरी ओर अनाज का अपव्यय क्यो ? इन अध-विश्वासो पर मुझे रोना आता है।"

"इसे तुम अधविश्वास कहते हो ? तुम कैसे वेटे हो जिसे अपने वाप का परलोक सुधारने की आकाक्षा न हो।" मा को जैसे आच लग गई थी।

"हा—हां—अधविश्वास। यह सव व्राह्मणो का पाखण्ड है। पिताजी की आत्मा को शाति क्या व्राह्मणो की तोद भरने से मिलेगी ? विरादरी के भरे-पेट मे लड्डू-पूडी ठूसने से क्या परलोक सुधर जायेगा ?" दीपू कह कर चारपाई से उठ गया था। मा क्रोध से तमतमाने लगी थी। दीपू ने मा का ऐसा रूप कभी नही देखा था।

"दीपू ! क्या वकवास कर रहा है। क्या तुम्हारा धर्म-पुण्य पर विश्वास नही है ? क्या तुम भगवान मे भी आस्था नही रखते ?"

"है ! मगर मानव-सेवा के धर्म मे। सत्य ही मेरा भगवान है। मैं श्राद्ध जैसी पाखण्डी परम्पराओ का तिरस्कार करता हू।"

"अरे नपूते—नास्तिक ! तुम्हारा दोष नही, मेरे ही भाग्य फूटे हैं।"

'मा—!" दीपू की चीख के साथ ही मा ने रोना शुरू कर दिया था। नीलू और पप्पी आकर मा से चिपट गये। विषाक्त वातावरण मे वह एक अपराधी की तरह न चाहते हुए भी घर से वाहर निकल गया था। वह समझ नही पा रहा था कि मा कुरीतियो से क्यो इतनी चिपटी हुई है।

दीपू वेमन से उठता है। नल पर जाकर हाथमु ह धोता है, रूमाल से उन्हे पोछता हुआ पार्क से वाहर आता है। सुवह से उसने कुछ नही खाया था, अत खोमचेवाले से दही वडा लेकर खाने लगता है। दोना नाली मे फेंक देता है तो दो अधनगे गदे लडके दोना उठाने को लपकते हैं। उनकी छीना-झपटी से दीपू का ध्यान भी उन पर चला जाता है। दोनो वच्चे दोने के टुकडो को चाटने लगे। फिर उसे फेंक कर मैली अगुलियाँ व कलाई भी चाटने लग गए यह देखकर दीपू को मितली-सी आने लगी।

दीपू फुटपाथ पर आ कर वे-मन से घर की ओर वढ चला। वह मा को नाराज भी नही करना चाहता और न ही अपनी अन्तरात्मा का भी गला घोटना चाहता था। थोडा आगे वढने पर चर्च के वरामदे मे देखता है कि एक सभ्रात महिला अपने अल्सेसियन कुत्ते को विस्कुट खिला रही है। कुत्ता कुछ खा रहा था—कुछ विगाड रहा था, पर महिला को कोई परवाह नही हैं। दीपू को लगा कि वह महिला मासूम वच्चो के मु ह का ग्रास छीन कर कुत्ते के मु ह मे डाल रही है। अगर इसे विस्कुट खिलाना ही है तो किसी गरीव भूखे वच्चे को अपनी गोद मे विठाकर नही खिला सकती ? वह सोचता है कि यदि सभी सम्पन्न लोग ऐसा करना शुरू कर दे तो क्या समाज का काया-कल्प नही हो जायेगा ?

दीपू अशात मन से आगे वढता गया है। कव आजाद मैदान आ गया, उसे पता ही नही। मैदान मे आजकल अकाल पीडितो की भारी भीड डरा डाले हुए थी। मैले-कुचेले अस्थिपजरो का जमघट, जिनके लिए रोटी-पानी मसीहा वने हुए हैं। दाने-दाने को मु हताज—वूद-वूद के लिए पराश्रित। तथा कथित भाग्य के नाम पर दु ख झेलने को मजवूर। उसने सोचा अकाल नियति का प्रकोप नही है—मानव-निर्मित है, जैसा कि एकवार महात्मा गाधी ने कहा था। अकाल के मारे विचारे खुले आकाश के नीचे शीत-घाम के थपेडे झेल रहे हैं, पर गगनचुम्वी अट्टालिकाओ के मालिक उनके लिए अपने द्वार नही खोलते। धन्ना सेठो की तिजोरियी के मु ह अभिनेत्रियो के कार्यक्रमो के लिए खुल सकते हैं, मगर भूखे पेटो को दो जून रूखी-सूखी प्रदान करने के लिए नही। इन लोगो की जिन्दगी कहा से प्रारम्भ होती है और कहा समाप्त होती है—कोई जानने की कोशिश भी करता है ? दीपू को समाज की सकीर्णताओ, मान्यताओ व मापदण्डो पर रह-रह कर क्रोध आ रहा था। मगर वह क्या करे ? कोई क्या करे ? साधनहीन व्यक्ति उस पखहीन पछी की तरह होता है जो उडने की सिर्फ कामना ही कर सकता है।

दीपू मैदान की पगडण्डी पर उतर आता है। कुछ आगे बढने पर वह रुक जाता है। उसके पास कुछ लोग जमा हो जाते हैं—जमा होनेवालो मे एक-दो काली युवतिया, दो युवक और कुछ वच्चे हैं। एक युवक गन्दी-सी गाली देकर वच्चो को भगाता है। वच्चे कुछ दूर जाकर टुकुर-टुकुर निहारते रहते हैं।

"वावूजी वढिया माल है। एकदम फस्क्लास।" एक युवक वोला। वह जानता है कि शाम के वाद यहा आनेवाले की क्या माग रहती है।

'कैसा माल ?' दीपू कुछ आश्चर्य से, कुछ रौव से पूछता है। युवक पहले तो किंचित् सकपकाया फिर साहस वटोर कर वोला—सिर्फ एक रुपया रेट है, साव ! इसकी घरवाली साव ! हुस्न की परी है।' दूसरा युवक सीटी वजाता-सा वोला। 'शर्म नही आती, नारकीय कीडे। अपनी पत्नी से वैश्यावृत्ति करवाते हो। पाप की कमाई पर जीना चाहते हो—क्या यही तुम्हारा पौरुष है ?"

'क्या करू साव ! नौकरी-धधा के लिए वडी दौड-धूप की, जगह-जगह चक्कर लगाये। मगर सव व्यर्थ। वूढे मा-वाप हैं—छोटे भाई-वहन हैं—उनका पेट तो भरना ही पडता है। भूखे कव तक रहा जाय। आखिर इसके सिवा हमारे पास चारा ही क्या रह गया है।'

युवक की आखो से आँसुओ की पतली धारा वहने लगती है। वह हथेली से पोछता झुग्गी की ओर मुड जाता है। दीपू किंकर्तव्यविमूढ उसका जाना देखता रहता है और फिर उसे आवाज देता है। वह युवक एक अपराधी की तरह उसके सामने आकर खडा हो जाता है। दीपू दो रुपये का नोट उसके हाथ मे थमाता है और लम्वे डग मारता सडक पर आ जाता है। उसे खुशी हैं कि कम से कम आज एक नारी अपने सतीत्व का घृणित सौदा करने से वच जायेगी।

भूख क्या नही कराती। इन युवको मे कई युवक होंगे जो भूख के हाथो विक गये होंगे, कई युवतिया सर्वस्व लुटा चुकी होगी, कई वच्चे असमय मे ही काल के ग्रास हो गये होंगे। दीपू ने आज भूख से साक्षात्कार कर लिया है। भूख ही सभी वुराइयो की जड है। यकायक उसके दिमाग मे एक विचार कोधता है—क्यो न श्राद्ध के नाम पर ब्राह्मणो व विरादरी के लोगो को भोजन कराने की वजाय इन गरीव भूखो को खिलाया जाये। कम से कम उस दिन तो ये लोग मजवूरी के चगुल से वचे रहेगे। भरे पेटवालो को खिलाने के स्थान भूखो का पेट भरने मे कही अधिक पुण्य है। मा अवश्य ही इससे सहमत

हो जायेगी। मा की आस्था कायम रहेगी, मगर उसे चोला बदलना पड़ेगा। उसे नये भावों के साथ पुरानी रूढ़िया मनानी होगी।

दीपू को जैसी नयी राह मिली। वह अपने को काफी हल्का महसूस करने लगता है। वह सोचने लगता है कि यदि समाज के सम्पन्न लोग इस प्रकार से जिम्मेवारी उठाले तो दुर्भिक्ष आदि की समस्याए समाज को खोखला नहीं बना सकती। दीपू हर आस्तिक की आस्था के नाम इस आशय का खत लिखना चाहता है कि वह समय-बोध के अनुसार अपने को बदले और नये भावो से अपना शृंगार करे।

दीपू लम्बे लम्बे डग मारता घर की ओर रवाना होता है। उसे अपने निर्णय की सूचना मा को देनी है। परसो के श्राद्ध की तैयारियो मे जुटना है।

[—खादी ग्रामोद्योग, प्रचार विभाग कुर्ला रोड, विलेपारले, बम्बई]

●

आज का मानव मरता नहीं, बल्कि धीरे-धीरे अपनी हत्या करता है। हम अपने रोजमर्रे के जीवन मे शरीर का ध्यान नहीं रखते और इस प्रकार अकाल में ही काल-कवलित हो जाते हैं।

—डा० सी वार्ड

जिसे हम बेकाम समझकर छोड़ देते हैं, वह ही कभी हमारे लिए-हमारे सुस्वास्थ्य के लिए सहायक हो सकता है। उचित यही है हम उसकी उपयोगिता समझें।

अपाच्य आहार अवश्य लें !

—विट्ठलदास मोदी

[प्रख्यात प्राकृतिक चिकित्सक, सम्पादक 'आरोग्य']

भोजन मे कोई ऐसी चीज खाना अनिवार्य बतलाना जो अपाच्य हो, विचित्र-सा मालूम होगा, फिर भी हम यही कहेगे, बल्कि यहा तक कहने के लिए तैयार हैं कि खाद्य-पदार्थों मे ऐसी चीजें शामिल किये बिना स्वास्थ्य बनाये रखना सम्भव नही है।

मानसिक अस्थिरता, प्राय होने और कुछ दिनो तक बना रहनेवाला सिर दर्द, चिडचिडापन और ये ही नही, वात अन्त्रपुच्छ वृद्धि, अन्त्रव्रण आदि रोग भी प्राय एक ही खराबी—कब्ज से उत्पन्न होते हैं।

कब्ज क्या है ?

आधुनिक सभ्यता के बहुत से रोगो का जनक होते हुए भी कब्ज स्वय कोई रोग नही है। यह आतो की वह अवस्था है जिसमे मल का निवास कठिनता से, अनियमित या अधूरा होता है, आत मे मल, जिसे पूरा-पूरा निकल जाना चाहिए था, कुछ-कुछ जमा होता है और कडा पडकर सडता रहता है। मलकी इस अवस्था के परिणाम स्वरूप उससे विष उत्पन्न होता है जो शरीर मे प्रविष्ट होकर उपर्युक्त विकार उत्पन्न किया करता है।

कब्ज होने के दो मूल कारण हैं। आदतन बारीक, जायकेदार और तल-भूनकर नि सत्व बनायी हुई चीजें खाना पहला और प्रधान कारण है, दूसरा कारण नाडी-सस्थान पर ज्यादा जो पडना, बहुत ज्यादा मेहनत करना और अन्य बातो मे अति। इन दोषो के कारण शरीर की शक्ति का ह्रास हो जाता है और आत की कृमिवत् आकुचन-क्रिया शिथिल पड जाती है इससे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि अगर स्वास्थ्य और सुख अभीष्ट हो तो नाडी-सस्थान पर जोर डालनेवाले कामो से बचने मे ही बुद्धिमानी है। हमारा विचारणीय विषय आहार होने के कारण हम इस विषय पर इस लेख मे

विचार नही करेंगे, यहा हमे केवल उस पथ्य या आहार पर विचार करना है जिसके द्वारा हम कब्ज या उससे होने वाले रोगो से बच या छुटकारा पा सकें।

प्राकृतिक सन्तुलन

प्राय देखा जाता है कि जगली या असभ्य कहे जानेवाले लोगो को कब्ज की शिकायत नही हुआ करती। इसका कारण जानने के लिए आपको ज्यादा माथा-पच्ची नही करनी पडेगी। कारण यह है कि उसका आहार प्राकृतिक होता है और बारीक, जायकेदार या नि सत्व बनाये हुए पदार्थ, जिन्हे हम लोग ज्यादा पसन्द करते हैं, उन्हें नही मिलते। प्राकृतिक खाद्य पदार्थों मे रेशे का बहुत अधिक अश रहता है। यही हमारे आहार का अपाच्य किन्तु अनिवार्य अश है जो आहार के प्राकृतिक सन्तुलन की रक्षा करता है और जिसे आँतें-पाचन क्रिया की विभिन्न अवस्थाओ मे ग्रहण कर अन्त मे मलमार्ग से निकाला करती है।

चीनी बारीक बनाने, गेहू का चोकर निकालकर मैदा बनाने, तरकारियो का छिलका निकालकर केवल भीतर का अश खाने के तरीको से हम इन मूल्य वान रेशो से वचित हो जाते हैं जो एक प्रकार से अपाच्य होते हुए भी सतुलित आहार के महत्वपूर्ण अग हैं। इन कडे और रूखडे पदार्थों के निकल जाने से हमारा आहार ऐसे बारीक और ठोस रूप मे परिणत हो जाता है, जो एकत्र होकर और पर्दे मे चिपक कर पाचन-मार्ग को अवरूद्ध कर देता है और वही खमीर बनकर शरीर को विपाक्त करता रहता है।

मूर्खता की बात

मिलवाले से गेहू का चोकर निकालने के लिए कहना और इसके परिणाम कोष्ठबद्धता होने पर प्राय उसी या वैसे ही पदार्थ से बनी दवा के लिए अच्छी रकम खर्च करना क्या मूर्खता नही है ? मिलवालो को तो दोहरा फायदा होता है—पहले तो वे चोकर निकालने के लिए पैसा लेते हैं और फिर वही चोकर बेचकर उससे भी पैसा कमाते हैं। साधारण बुद्धि का आदमी भी अगर इस पर विचार करे तो उसे यह मूर्खता की बात स्पष्ट हो जायगी। फलो, अन्नो और तरकारियो का यह छिलकेवाला अश आतो को कृमिवत् आकुचन-क्रिया मे ही सहायक नही होता, बल्कि खाद्य का अधिकाश विटामिन और खनिज लवण भी वही धारण करता है। इन मूल्यवान पदार्थों के अभाव मे, हमारा जीना कठिन हो जायगा। पहले इन्हे खाद्य-पदार्थ से पृथक् करने और बचे हुए भाग को बहुत ज्यादा पकाने या तलने-भूनने का अर्थ होता है आतो को ऐसे शक्तिदायक पदार्थों से वचित रखना जो रक्त शुद्ध और पाचन-प्रणाली साफ रखते हैं।

अति भोजन का दोष

स्मरण रखने की दूसरी वात यह है कि मैंदा, दानेदार चीनी, मिठाईया आदि वारीक चीजे खाकर हम अनजान मे अति भोजन के दोष के भागी भी होते हैं। शरीर अपनी आवश्यकता के ही अनुसार खाए हुए पदार्थ का अश अभिशोपित कर सकेगा। सतुलित आहार का एक वडा अश शरीर के अपना महत्वपूर्ण कार्य कर लेने पर वाहर निकल जाता है। भूख अधिक परिमाण मे खाद्य-पदार्थ ग्रहण करने की आवश्यकता सूचित करती हैं। अगर हम वारीक और सत्वहीन पदार्थो से इस परिमाण को पूरा करे तो हम उदर और आतो पर ऐसे पदार्थों का अत्यधिक भार डाल देते हैं जिनका कुछ ही अश शरीर के लिए आवश्यक होता है और अधिकाश अपने मार्ग से वडी सुस्ती के साथ आगे सरकता या विलकुल रुका रहकर सडता और खमीर पैदा करता है।

अनुभव से यह वात स्पष्ट हो गई है कि हम खाद्य पदार्थों को उनकी प्राकृतिक अवस्था मे अर्थात् रेशो आदि के उनमे मौजूद रहने पर उनकी अधिक मात्रा मे नही खा सकते, जितनी अधिक मात्रा मे वारीक वनाये हुए या गलत तरीके से तैयार किये हुए पदार्थ आमतौर से खाये जाते है। जो खाद्य-पदार्थ इन महत्वपूर्ण अशो से वचित नही किया गया है या ठीक तरह से तैयार किया गया है उसके अल्प परिमाण से ही हमारी क्षुधा पूर्णत शात हो जा सकती है। इस अवस्था मे शरीर की आवश्यकता विलकुल पूरी हो जाती है और हमारा स्वास्थ्य भी वना रहता है।

मेरा यह सन्देश उन लोगो के लिए है जो पूर्ण स्वास्थ्य के के अभिलापी हैं और विशेप रूप मे उन लोगो के लिए है जो घर के अन्दर रहकर बैठे-बैठे बौद्धिक कार्य करते है और सदोप आहार से उत्पन्न विकार पर्याप्त व्यायाम द्वारा शरीर से वाहर निकालने का अवसर नही पाते। बैठे-काम करने वाले ही प्राय कोष्ठवद्धता के शिकार हुआ करते है और विशेप कर वे ही ऐसे पदार्थ खाया करते है जो कोष्ठवद्धता का कारण होता है।

निवारण का उपाय

अगर आप कोष्ठवद्धता से ग्रस्त नही हैं और इस विकार का निवारण करना चाहते हैं तो कुछ सरल नियम हैं जिनका पालन करने पर आपको अच्छी सफलता मिलेगी। वरावर चोकरदार आटे की रोटी खाइए। उसमे उसका महत्वपूर्ण अपाच्य अश मौजूद रहता है—अपाच्य इस अर्थ मे कि शरीर उसका अभिशोपण नही करता, पर पाचन सवधी क्रियाओ से ठीक तरह से होने के लिए उसका मौजूद रहना अनिवार्य रूप मे आवश्यक है। फल और तरकारिया

भी जहां तक संभव हो विना छिलका निकाले खाइये । ऐसा ही खाना खाइये जो आवश्यकता से अधिक न पकाया गया हो और तरकारी उवालने पर जो पानी वचे उसका रसा वनाकर इस्तेमाल कीजिये । पकाने मे ज्यादा जलावन वर्वाद करने की जरूरत नही है । हमेशा स्मरण रखिये कि फलो और तरकारियो का सवसे अच्छा भाग पशु की नाद मे न जाने पाये । यथा सभव फल उसी रूप मे खाइये जिसमे प्रकृति ने उसे प्रस्तुत किया है । इससे न तो आपके स्वास्थ्य को कोई क्षति पहुँचेगी और न आपकी क्षुधा शात होने मे कोई त्रुटि रहेगी ।

अव प्रश्न यह है कि अगर आप पहले से ही कोष्ठवद्धता और सिर-पीडा, जीर्ण अन्त्रपुच्छवृद्धि आदि उसकी सहचरियो से ग्रस्त हो तो उनसे कैसे छुटकारा पायेंगे ? आप कह सकते हैं कि क्या तरह-तरह के रेचक नही है, जिनका उद्देश्य आत को साफ करना है ? है, और अवश्य है, पर आप भूलकर भी उनका इस्तेमाल मत कीजिये । उनसे आपकी समस्या हल होने की नही । उनसे आपकी आवश्यकता आशिक रूप मे ही पूरी हो सकती है, पर यह कार्य करते हुए भी वे आतो को और शक्तिहीन कर उन्हे अपना काम करने मे और भी सुस्त वना देते हैं ।

आरोग्य लाभ

आरोग्य-लाभ की दिशा मे अग्रसर होने के लिए पहले अपनी आतो को दो-तीन दिन पूर्ण विश्राम दीजिये, भोजन से परहेज करते समय कुनकुना पानी काफी मात्रा मे पीते रहिये और दो-तीन दिन शाम को कुनकुने पानी का एनिमा भी ले लीजिये । इससे आतो मे जमा हुआ मल निकल जायेगा ।

आत के साफ हो जाने पर भोजन, मेल, मात्रा आदि की दृष्टि से उपयुक्त रखिये । आरभ मे कुछ दिनो तक केवल रसदार और कुछ सूखे फल खाकर रहिये और तव चोकरदार आटे की रोटी और कुछ मक्खन वढा दीजिये । इसके कुछ दिन वाद धीरे-धीरे साधारण भोजन पर आ जाइये, पर यह हमेशा ख्याल रहे कि उसमे मैदे की कोई चीज, मिठाईया, आचार-मसाले या वहुत पकाई हुई कोई चीज न हो । तरकारिया तो वहुत थोडे समय मे ठीक तरह से पकजाती है ।

भोजन पर उचित ध्यान देते हुए खुलासा पाखाना लाने का भी कुछ उपाय कीजिये । रोज नियमित रूप से पाखाना जाइए और जोर मत लगाइये । इससे कुछ ही दिनो मे आदत पड आयेगी और आपका स्वास्थ्य ठीक हो जायगा । न पचनेवाले चोकर, रेशो आदि को कभी न भूलिये, क्योकि खाद्य पदार्थों के ये अश स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य रूप मे आवश्यक हैं ।

[—आम वाजार, पो० आरोग्यमन्दिर
गोरखपुर (उ० प्र०)]

●

अस्वस्थ न होने का अर्थ स्वस्थ होना नहीं है। स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हमारी इन्द्रिया प्रसन्न हो, मन प्रसन्न हो और आत्मा प्रसन्न हो। स्वस्थता के लिए आवश्यक है कि हम स्वास्थ्य की उपस्थिति महसूस करें।

क्या हमे स्वास्थ्य का अनुभव है?

● — मुनि रूपचन्दजी
[आचार्य श्री तुलसी के शिष्य, कवि-लेखक]

स्वस्थ जीवन से हम लोग वहुत कम परिचित हैं। या तो हम अस्वस्थ होते हैं या फिर अस्वस्थ नही होते हैं। किन्तु अस्वस्थ न होने का अर्थ यह नही कि हम स्वस्थ हैं। अस्वस्थ नही होने का केवल इतना ही अर्थ है कि हमारे शरीर मे प्रकट रूप मे कोई दर्द या वीमारी नही है। हम उस समय किसी डाक्टर या वैद्य की दवा नही खा रहे होते हैं। इसके सिवा स्वास्थ्य की हमे कोई अनुभूति नही है। स्वास्थ्य यानि अस्वस्थता की अनुपस्थिति। हमारा अनुभव वस इतना ही है।

किन्तु स्वास्थ्य क्या अस्वस्थता की अनुपस्थिति "Absence of Disease" ही है? क्या उसका कोई विधायक रूप नही है? यद्यपि हमारा परिचय स्वास्थ्य के विधायक रूप से वहुत कम है। हमे कोई पूछे, आप स्वस्थ है, इसका अर्थ क्या है? तो हम यही कहते हैं, इसका अर्थ यही है कि हमारे कोई वीमारी नही है। यानि हम स्वास्थ्य के नकारात्मक पक्ष से ही परिचित हैं। किन्तु जव अस्वस्थता का विधायक रूप है तो स्वस्थता का विधायक रूप भी अवश्य होना चाहिए। और जव तक हम स्वास्थ्य के विधायक रूप से परिचित नही होगे, हम स्वास्थ्य की आनन्दानुभूति की कल्पना ही नही कर सकते।

स्वस्थ कौन होता है, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए एक सस्कृत कवि ने लिखा है :—

"समदोषः समाग्निश्च समधातु - मलक्रिय
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना, स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥"

जिसके वात, पित और कफ ये तीनो दोप सम हो, अग्नि सम हो, धातु-क्रिया और मल-क्रिया सम हो और जिसका मन, इन्द्रिय और आत्मा प्रसन्न

हो, वह स्वस्थ है। मम-दोष, सम-अग्नि, मम-धातु क्रिया और मम मल-क्रिया ये सब शरीर-सापेक्ष है। किन्तु स्वास्थ्य केवल इतने से ही प्राप्त नही हो जाता है। स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि हमारी इन्द्रिया प्रसन्न हो, मन प्रसन्न हो और आत्मा प्रसन्न हो। यह है स्वास्थ्य का विधायक रूप।

अक्सर होता यह है कि हम शरीर की क्रियाओ को ठीक रखने के लिए अवश्य प्रयत्नशील होते हैं। शरीर की क्रियाओ की सुचारुता के लिए हम दवा भी लेते हैं, पोपक द्रव्यो का सेवन भी करते हैं, आहार-शुद्धि का ध्यान भी रखते है और व्यायाम और स्वच्छ हवा मे भ्रमण भी करते हैं। किन्तु इन्द्रिय और मन की स्वस्थता की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। परिणाम यह होता है—मन और इन्द्रियो की *अस्वस्थता* का प्रभाव शरीर पर जाता है। शरीर बीमार हो जाता है। हम डाक्टर के पास जाते है। डाक्टर हमारे शरीर की जाच करता है। शरीर के जिस कमजोर अग मे से वह मानसिक बीमारी प्रगट होती है, उसको ठीक करने के लिए डाक्टर दवा लिख देता है। हम दवा लेते हैं। वह अग ठीक हो जाता है और हम समझते है कि हम स्वस्थ हो गये हैं। जबकि उस समय वह मानसिक अस्वस्थता किसी दूसरे अग मे से बाहर आने का प्रयास कर रही होती है। बर्टेण्ड रसेल ने शाति की परिभापा करते हुए जैसे लिखा है—एक युद्ध की समाप्ति और दूसरे युद्ध की तैयारी, इन दोनो के अन्तराल को शाति-काल कहते हैं। मैं समझता हू हमारे स्वास्थ्य का भी यही हाल है। जहा एक बीमारी दब गई हो और दूसरी प्रगट होने की तैयारी मे हो, उस बीच के अन्तराल को हम कहते हैं, स्वास्थ्य। क्योकि इसके सिवा स्वास्थ्य का अनुभव हमे है ही नही।

यही कारण है समस्त मानव-जाति एक विचित्र रुग्ण मनो-दशा मे से गुजर रही है। उस रुग्ण-मनोदशा को स्वस्थ बनाने हजारो-लाखो चिकित्सा-शास्त्री और शरीर-शास्त्री प्रयोगशालाओ मे अहर्निश सलग्न है। नित नई-नई दवाओ का आविष्कार किया जा रहा है। फिर भी मानव-जाति अशान्त है, अस्वस्थ है, तनावग्रस्त है और एक बेचैनी का जीवन जी रही है। इसका एकमात्र कारण यही है चिकित्सा-शास्त्री केवल शरीर को ठीक करने मे लगे हैं। जबकि यह स्वीकार करते हैं कि निन्यानवे प्रतिशत रोग हमारे मन की उपज है।

अब प्रश्न यह है इन्द्रियो और मन को स्वस्थ कैसे बनाया जा सकता है। मैं समझता हू इन्द्रियो और मन को स्वस्थ बनाने की दवा हमारे ही पास है। दूसरा कोई भी चिकित्सक इसमे बिल्कुल सहयोगी नही बन सकता। सारे केपसूल, टेबलेट्स और इजेक्शन बेकार हैं यहा। केवल हम ही रुग्ण मन का इलाज कर सकते हैं, इसे स्वस्थ कर सकते हैं।

इन्द्रिय और मन की स्वस्थता का मूल आधार है आहार-शुद्धि। आप शायद चौंक गए होगे, मन की स्वस्थता के लिए आहार-शुद्धि की वात सुनकर। किन्तु यह अत्यन्त आवश्यक है स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए। आहार-शुद्धि से मेरा मतलव केवल भोजन या अन्न ग्रहण से नही है। भोजन-विवेक तो शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी आवश्यक है। किन्तु आहार से मेरा मतलव है कि हम जो भी वाहर से भीतर की ओर ले रहे हैं, वह सव शुद्ध और पवित्र होना चाहिए। इसकी शुद्धि पर ही इन्द्रिया और मन स्वस्थ हो सकेंगे?

हम केवल मुख से ही आहार नही लेते हैं। किन्तु आख से भी आहार लेते हैं, कान से भी आहार लेते हैं। आख एक सुन्दर फूल को देखती हैं, आहार ले रही है। सौन्दर्य आखो का आहार है। कान मधुर सगीत सुनते हैं, आहार ले रहे हैं। माधुर्य कानो का आहार है। हाथ किसी सुन्दर रूप का स्पर्श करते हैं, आहार ले रहे हैं। रूप हाथ का, त्वचा का आहार है। इस प्रकार हम शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय से आहार ले रहे हैं, शरीर के रोम-रोम से आहार ले रहे हैं, प्राण के कण-कण से आहार ले रहे हैं। जव हम इन्द्रिय, मन और आत्मा की स्वस्थता पर वात करते हैं, तव इस पर ध्यान देना पहले जरूरी है कि हम क्या देखते हैं, क्या सुनते है, क्या सूघते हैं, क्या चखते हैं और किसका स्पर्श करते है। इतना ही नही, यह भी जरूरी है हम किस प्रकार के वायु-मण्डल मे सास ले रहे है, किस परिवेश मे जी रहे है।

हम उसी रूप को देखना चाहते हैं, जिससे आखो को सुख मिले। वही सगीत सुनना चाहते है जिससे कानो को सुख मिले। आख और कान को जव तक मनोज्ञरूप और सगीत मिलता है, वे तृप्त रहते हैं। हमे उससे सुख की अनुभूति होती है। ज्योही वे मनोज्ञ रूप और सगीत मिलना बन्द हुआ, हम दु खी हो जाते है। हमारा सारा सुख छिन जाता है। तो फिर क्या मन और आत्मा को प्रसन्न करने के लिए मनोज्ञ वस्तुओ की प्राप्ति जरूरी है? नही, विल्कुल नही। मन और आत्मा की प्रसन्नता वस्तु-सापेक्ष है ही नही। सच्चाई यह है मनोज्ञरूप और सगीत से जो हमे सुखानुभूति होती है, वह आत्मा और मन की प्रसन्नावस्था है ही नही। वह तो मूर्च्छावस्था है। हमे जवतक मनोज्ञ-रूप प्राप्त होता है, हम मूर्च्छा मे रहते हैं। वह सुख मूर्च्छा का ही सुख है। ज्योही रूप का वियोग होता है, हमारी मूर्च्छा टूट जाती है। हम पहले से भी अधिक दु खी हो जाते है। इसलिए यह स्पप्ट है कि आत्मा और मन की प्रसन्नावस्था से इस मूर्च्छा-सुख का कोई सम्वन्ध नही है।

आत्मा और मन की स्वस्थता के लिए यह आवश्यक है कि हम वे ही रूप देखे जो सुन्दर तो हो ही, सत्य और शिव से समन्वित भी हो। ऐसे रूप जिनके वियोग और अति-योग मे हम दुःखित न हो। हम एक फिल्म देखते हैं। जब तक फिल्म चलती है, हम मूर्च्छा मे रहते हैं, अपने-आपको भूले रहते हैं। एक प्रकार के सुख का अनुभव होता है। ज्योही फिल्म पूरी हुई, हमारे हाथ केवल दु ख ही रहता है। वही घर-परिवार की उलझनें, अस्वस्थ इद्रिया और मन की आकुल प्यास, भीतर से आनेवाली डरावनी आवाजें। हमे नीद नही आती है। इन सबसे बचने के लिए हम शराब की घूट गले के नीचे उतार लेते हैं। फिर वही मूर्च्छा, नीद। सवेरे उठते ही वे आवाजें हमे फिर घेर लेती हैं। हम फिर किसी रूप, शब्द, गध, रस और स्पर्श मे अपने आपको मूर्च्छित कर लेना चाहते हैं। स्थिति यह है हम मूर्च्छावस्था मे ही जी सकते हैं। स्वस्थ और प्रसन्न अवस्था मे जी ही नही सकते।

इसके ठीक विपरीत हम एक फूल देखते हैं, हमारा मन भी ताजगी से भर जाता है। वह ताजगी हमे दिन भर एक स्फूर्ति देती है। हम कलकल बहती हुई नदी की धारा को देखते हैं, हमारा मन भी एक गति से भर जाता है। हम भगवान महावीर और भगवान् बुद्ध का चित्र देखते हैं, हमारा मन भी शाति से भर जाता है। एक अर्द्ध-नग्न युवती का चित्र मन मे जहाँ उद्वेग और अशाति पैदा करता है, वहा एक सहज समाधिस्थ योगी का चित्र मन मे एक अद्‌भुत शाति और आनन्द का सचार करता है। यही अन्तर है सुख और प्रसन्नता मे। मूर्च्छावस्था और आनन्दावस्था मे।

स्वास्थ्य की अनुभूति के लिए यह आवश्यक है कि अस्वस्थता की अनुपस्थिति का ही अनुभव नही करें, किन्तु स्वास्थ्य की उपस्थिति का भी अनुभव करें। हमारे शरीर की क्रियाए सन्तुलित और स्वस्थ हो, हमारी इन्द्रिया, मन और आत्मा प्रसन्न हो, यह स्वास्थ्य की उपस्थिति का विधायक रूप है। इस स्वस्थता को प्राप्त करने के लिए यह जरूरी होगा कि शरीर को पोषण देने वाला आहार सम्यग् हो, आख, कान, नाक, जीभ और हाथ का आहार सम्यग् हो, मन का आहार सम्यक् हो और आत्मा का आहार सम्यग् हो। जबतक ये आहार सम्यग् नही होंगे, पूरी मानवता रुग्ण होती चली जाएगी। इस रत्नगर्भा वसुन्धरा पर बीटल, बीटनिक, हिप्पी जैसे कोयले, ककर-पत्थर पैदा होते ही चले जायेंगे। ●

ठडो न्हावै, तातो खावै, तिण घर वैद कदै नहि आवै।

निर्ममता के विपरीत दयालुता, गन्दगी के विपरीत स्वच्छता, कुरूपता के विरोध मे सौन्दर्य, कठोरता के विपरीत सवेदनशीलता, कष्ट देने के विपरीत क्षमा, जीने का तर्क एव मानसिक शाति को प्रोत्साहित करता है। शाकाहारी सिद्धान्त का सही आधार यही है।

★

वास्तविक दया और अहिंसा ही शाकाहार का सही आधार

—पं० शिव शर्मा

(आयुर्वेदविद्, भारत के राष्ट्रपति के मानद् आयुर्वेदिक चिकित्सक। श्रीलका व महाराष्ट्र सरकार के मानद् आयुर्वेदिक सलाहकार, अध्यक्ष सेंट्रल कौंसिल आफ इ डियन मेडीसिन, चेयरमेन-साइ टिफिक एडवाइजरी बोर्ड (आयुर्वेद)।

●

प्रत्येक शाकाहारी गुण, दया और अहिंसा का सर्वोत्कृष्ट आदर्श नही होता। शाकाहारियो मे भी हृदयहीन, चोर-बाजारिये, ब्याज पर ऋण देनेवाले, कर चुराने वाले और हत्या-डकैती और बलात्कार के अपराधी होते हैं पर इतिहास ऐसी किसी घटना को उद्घाटित नही करता जहा शाकाहारी समुदाय अमानवीय हत्याकाण्ड, सामूहिक कत्ल और बलात्कार मे सलग्न रहे हो। शाकाहारी और मासाहारी पथ्यो के प्रभावो का तभी अध्ययन किया जाना चाहिए जबकि दो अलग समुदाय अनुरूप प्रभावो और दीर्घकालीन पृष्ठभूमि से सवधित हो।

यह विश्वास करना भारी भूल होगी कि वनस्पतियो का भोजन ही शाकाहारी जीवन पद्धति का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय जीवन-विज्ञान-आयुर्वेद मे मानसी-देहि मनुष्य जाति की दैहिक-मानसिक गतिविधि के आकारो पर

उनके प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए वनस्पति-खाद्य को अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया गया है। अधिक मिर्च-मसाले, तीखे और तले हुए भोजन का निरन्तर उपयोग मस्तिष्क को श्रेष्ठ और उच्च भावनाओ और गतिविधिक भावो से विकसित जडता की ओर ले जाता है। यहां तक कि भिन्न-भिन्न प्रकार के पशुओ के दूध के उपयोग का दूध-पथ्य भी शरीर और मस्तिष्क को अलग-अलग प्रभावित करता है। इस प्रकार गाय का दूध उत्तम ज्ञान विकसित करता है जबकि भैंस का दूध केवल बलिष्ठ शरीर ही बनाता है। शरीर और मस्तिष्क के विकास के लिए सर्वाधिक वाछित लक्षण बनानेवाले पथ्य का गुण बताने आयुर्वेद "सात्विक" शब्द का उपयोग करता है।

"तामसिक भोजन आलस्य, मूढता और जडता देता है, राजसी केवल शक्ति और तेजी जो कि सात्विक के साथ जुडकर वाछित और तामसिक के साथ मस्तिष्क और शरीर को अवाछित लक्षण देता है।

मनुष्य का मस्तिष्क परिपक्व हो रहा है पर धीरे-धीरे शाकाहार का सिद्धान्त बहुधा विवाद का विषय बन जाता है क्योकि अनुरागी शाकाहारी शाकाहारी सिद्धान्त के अभ्यास के आर्थिक और शारीरिक पक्षो पर अधिक बल देते हैं। इस तरह के तर्क वनस्पतियो-फलो की तुलना मे मास-पथ्य मे अधिकृत से प्रचुरता से उपलब्ध क्षार-अम्लो और पोषकतत्वो की ओर उन्मुख करते हैं। कुछ विशेषज्ञो ने शारीरिक शक्ति के स्रोत के रूप मे क्षार-अम्लो को अनुचित महत्ता दे दी है जो उन्हे स्पष्ट लगेगी जिन्होने हाथी को पेड उखाडते या भीमकाय मनुष्य को घडियाल की थूथन चीरते देख लिया है। यदि हम इन पशुओ और मनुष्य जाति मे परिवर्तन शील चयापचयशील भेद उपस्थित करें, हमे मानवीय परिवर्तनशीलता मे सामजस्य की सामर्थ्य स्वीकारनी पडती है।

कई आजीवन मासाहारी दुर्बलता और उदर-पीडा के लक्षणो का अनुभव करते हैं मगर एक निश्चित सघर्ष के पश्चात् चयापचय की प्रक्रिया अन्ततोगत्वा नई पथ्य-विधि से सामजस्य स्थापित कर लेती है।

दूध और दूध-पदार्थों से युक्त उचित रूप से सन्तुलित पथ्य प्रफुल्लित शारीरिक स्वास्थ्य, लचीलेपन, सजगता और दीर्घायु का ही नही व्यक्ति के मस्तिष्क की परिपक्वता का भी निर्वाह करता है। शाकाहारी सिद्धान्त का आर्थिक पक्ष सहजता से समझ लिया जाएगा, जब यह स्वीकार लिया जाए कि मासाहारियो को मास देते रहने के उद्देश्य से पोषित पशुओ के लिए धान

उपजाने की आवश्यक जमीन उतनी ही सख्या के मनुष्यो के लिए धान उपजाने के आवश्यक क्षेत्रफल की तुलना मे कई गुना वडी होती है।

"रिकवरी आफ कल्चर" के लेखक और "एक्सटेंसन सर्विस एमेरिटस विश्वविद्यालय, हैम्पशायर" के निर्देशक हैनरी वैले स्टीवेंन्सन के अनुसार "मास-भक्षण की दुराचारी आदत नि सन्देह रूप से जड-युग की अवशेष है जो सारे आचार और सौन्दर्य परक प्रामाणिको का ही उल्लघन नही करती वरन् जितनी कि मनुष्य के लिए सीधे रूप मे फसल पैदा करे उससे छह गुना अधिक जमीन इसके लिए आवश्यक होगी।"

शाकाहारी सिद्धान्त को शरीर के विस्तार और आर्थिक आधार पर लेना शाकाहारी सिद्धान्त का सही दर्शन नही है। हालाकि फिर भी जो शाकाहारी सिद्धान्त का समर्थन ही करता है जो कि प्राय अमैत्रीपूर्ण विवाद और अनिर्णित विमर्श का विषय वन जाता है, नैतिक, आचारिक और आध्यात्मिक व्यवहार के आधार पर ही शाकाहारी जीवन के अभ्यास की आवश्यकता को वल दिया जाना चाहिए। निर्ममता के विपरीत दयालुता, गदगी के विपरीत स्वच्छता, कुरूपता के विरोध मे सौन्दर्य, कठोरता के विपरीत सवेदनशीलता, दण्ड देने के विपरीत क्षमा जीने का तर्क और शाकाहारी सिद्धान्त का आधार निर्मित करती है। यही मानसिक और शारीरिक कौशल और मानसिक शाति को प्रोत्साहित करता है। शाकाहारी सिद्धान्त का सही आधार है अपने 'स्व" की अपेक्षा दूसरे 'पर' विचार—असहायो मे दु ख और भय का कारण वनने मे अरुचि—दूसरे को मारने की अस्वीकृति ताकि कोई अपने आप जी सके, सक्षेप मे गहराई और वास्तविकता तक दया और अहिसा।

[—वहारिस्तान, वम्मनजी पेटिट रोड
कम्वालाहिल, वम्वई–३६]

शाकाहारी

जार्ज बर्नार्ड शा

(महान साहित्यकार, दार्शनिक, नाटककार)

'आपको अपनी धारणा बनानी चाहिए कि, मैं आपके विश्वास का पात्र हू या नही। मैं इमे विश्वास कहता हू क्योकि मैं शरीर-विज्ञान सम्बन्धी तर्कों का कम आदर करता हू जिन्हें हम जडवादी सिद्धान्त से शिक्षित युग को सम्बोधित करते हैं। जब तक हम शुद्ध मनोविज्ञान का विज्ञान विकसित नही कर लेते हम अध्यात्म-विद्या तक नही पहुचेंगे

वह प्रत्येक वस्तु जो कभी मनुष्य ने खाई है, कल धरती से हटा ली जाए, यहा तक कि मनुष्य-भक्षण भी बाधित हो—हम भूख से नही मरेंगे। लाशों को खाना कितना अनावश्यक और मूर्खतापूर्ण है। सब पर विचारें जो इसमे अन्तर्निहित है—७० वर्ष से भी अधिक शाकाहारी रहने के विषय मे मुझे कुछ भी नही कहना है। परिणाम लोगो के सामने हैं।"

"" "यदि भोज्य-पदार्थ की गंध या रग मे किसी प्रकार की शका हो तो उसे चखने या परोसने का खतरा मोल नहीं लेना चाहिए ।

● खाने के टेवल की व्यवस्था और सज्जा इतनी आकर्षक होनी चाहिये कि भोजन और भी आकर्षक लगे।

● भोजन सुरुचिपूर्ण तरीके से एव क्रम से परोसा जाना चाहिये ।

● गरम भोज्य पदार्थ गरम ही और ठण्डे भोज्य पदार्थ ठण्डे ही परोसे जाने चाहिए, तापक्रम स्वाद के प्रकार और तीव्रताओ को कम करता है ।

● हमेशा ताजी वनाई हुई चीजें ही परोसी जानी चाहिए ।

प्रमिला सोनी
[समाजसेवा कार्यों मे सक्रिय, लेखिका]

आहार में ध्यान देने योग्य छोटी, किन्तु महत्वपूर्ण बातें

● भोजन के समय को सुखद वनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

उस समय व्यक्तिगत या सामान्य समस्याओ पर विवाद नही करना चाहिये, टेवल पर वच्चो को अनुशासन नही सिखाना चाहिए और नही उन्हे डाटना चाहिए और अव्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि किसी भी सदस्य को वार-वार उठाना न पडे ।

● सामान्य रूप से भोजन पर किसी भी प्रकार की टीका-टिप्पणी नही होनी चाहिए यदि करे तो केवल प्रशसा ही ।

● जहा तक हो मके पसन्दगी के भोज्य पदार्थ ही परोसे जाय ।

● पकाते समय वर्तन को खुला नही रखें। खुला रहने से भोजन वायु के सम्पर्क मे आता है जिसके परिणामस्वरूप विटामिन तथा भोजन की सुगन्ध नष्ट होने की सम्भावना रहती है ।

○ निश्चित् अवधि से अधिक देर तक भोजन पकाने से उसके पोषक तत्त्व नष्ट होते हैं तथा ऐसे भोजन को पचाने मे भी कठिनाई होती है ।

○ खाने को सोडा भोज्य पदार्थो मे डालने से विटामिन 'बी' नष्ट हो जाते हैं अत विटामिन 'बी' युक्त भोजन पदार्थों मे इसका उपयोग नही करना चाहिए।

○ जिस पानी मे चावल या हरी सब्जी उबाली गई हो उस पानी को फैंके नही, इस पानी मे पोषक तत्त्व विद्यमान रहते हैं अत चावल व सब्जियो मे उतना ही पानी डाले जितना वे सोख सकें ।

○ मसालो का अधिक मात्रा मे प्रयोग करने से भोज्य पदार्थों के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं तथा उनका स्वाभाविक स्वाद भी नष्ट होता है ।

○ भोजन को बार-बार गरम करने से भी पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं तथा उनका स्वाभाविक स्वाद भी नष्ट होता है ।

○ भोजन सदैव स्वच्छ, कलईदार बर्तनो मे बनाना चाहिए, नही तो भोजन पर विषैला प्रभाव पडता है । लोहा व ताम्बे के बर्तनो का प्रयोग न करें ।

○ शाक-भाजी को छीलना, रगडकर धोना, भिगोकर रखना और उसके पानी को फेकना सब्जी के छोटे छोटे टुकडे करना, बहुत पहले से सब्जी कतरकर रखना आदि सब क्रियाओ से भोज्य पदार्थों के पौष्टिक तत्व नष्ट होने की सम्भावना रहती है ।

○ सरक्षित भोज्य पदार्थ के टीन के डिब्बे, जिनका कोई भाग उठा हुआ हो या काच की बोतल जिसका ढक्कन ढीला करते ही तरल पदार्थ बाहर निकल आये तो पदार्थ बिना चखे ही फेंक देना चाहिए ।

○ यदि भोज्य पदार्थ की गध या रग मे किसी प्रकार की शका हो तो उसे चखने या परोसने का खतरा मोल नही लेना चाहिए ।

[सोनी सदन ११।१, डा० रोशनलाल भडारी मार्ग
इन्दौर–३ म०प्र०]

★

हियाहारा, मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा ।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाण ते तिगिच्छगा ।।

—ओघनिर्युक्ति (आचार्य भद्रबाहु)

—जो मनुष्य हिताहारी, मिताहारी और अल्पाहारी हैं, उन्हें वैद्यों की चिकित्सा की अपेक्षा नहीं होती। वे अपने आप ही स्वय के वैद्य होते हैं ।

यह भी अजीब उपक्रम है—एक बित्ता भर खड्ढा भरो और खाली करो। नित्यप्रति का यही क्रम। अर्जन और विसर्जन का खूब मेल बैठा है। विधाता! सब कुछ बेखटके बना डालना परन्तु पेट बनाने की भूल नहीं दुहराना!

पेट पुराण

—कमला भादानी

[महिला विकास परिषद् से सम्बद्ध]

कहे कोई यह दुनियाँ गोल, कहे कोई मधुमय संसार,
कहे कोई सुन्दर है सृष्टि, जगत अनुपम सुख का भडार,
नित्य के धुनधघो को देख-किन्तु उठता है और विचार,
सदा से खाली है लघुपेट, इसे भरने का जग उपचार॥

और यह पेट— कोई आखिरी दम तक हाथ-पाँव मारता रहे, भरता नही, खाली का खाली ही रहता है। शाम भरकर सोये तो सुबह खाली होकर उठे। इस वित्ते भर गड्ढे को भरने के लिए मनुष्य ने कितने-कितने अमाप्य खाई-खड्ढो को भरकर न पाट दिया होगा किंतु यह तब भी अधभरा रहा।

पेट को कब भरा जाय? कैसे और किससे भरा जाय? कितना भरा जाय? ये सब सतही प्रश्न हैं। बुनियादी प्रश्न है—पेट को बिना भरे ही कैसे रखा जाय? क्योकि कही भूख से मरने के किस्से सुने जाते हैं तो कही खाकर मरने के। सारी मुसीबतो का मूल यह पेट खाली रहने पर चीखता चिल्लाता है तो भरकर भी कम उपद्रव नही करता। न खुद चैन लेता है न औरो को ही लेने देता है। जबतक सास चलती रही यह भी हाय-तोबा मचाएगा ही। लगता है दुनिया को सक्रिय रखने के लिए ही इसका निर्माण हुआ। अगर पेट न होता तो यह दुनिया भी ऐसी न होती जैसा आज दिख रही है। छोटा बडा एक-एक काम गिनलीजिए उसका मुख्य हेतु यही पेट है। पेट से बाहर होते ही सबसे पहले पेट के लिए ही रोते है। जरा गहराई से विचार कर देखिए—माता, पिता, भाई, बहन, पति, पत्नी या अन्य कोई भी रिश्तेदार, वही आपका अत्यधिक प्रिय हुआ जो जितना ज्यादा आपकी पेटपूर्ति मे मददगार बन सका।

कोई लिखता पढता है वह भी इसलिए कि पेट की खिदमत का कोई आसान रास्ता निकल आये। गरज यह कि दुनियाँ मे कोई कुछ भी करे, दूसरे के लिए वरन् पेट के लिए मरता खपता है। सवाल उठ सकता है कि— जीवन मे कुछ करने-बनने की महत्त्वाकाक्षा भी व्यक्ति से कुछ करवाती होगी ? किन्तु, महत्त्वाकाक्षा भी तो पेट की चिन्ता के साथ जगती है। हा, आगे चलकर वह दूसरा रूप ले ले यह और बात है। वैसे पेट को सूखी रोटी से भी भरा जा सकता है और तैतीस तरकारी बत्तीस भोजन से भी, इसलिए भरनेका प्रकार बदलता है तो महत्त्वाकाक्षा भी बढ-चढ कर बोलने लगती है।

पेट भरने के प्रकारो पर भी आजतक कम चिन्तन नही हुआ है। बडी-बडी व्याख्याओ के साथ यह खाओ, वह मत खाओ की हिदायतो से एक नही अनेको ग्रन्थ अटे पडे हैं और ग्रन्थो से अलमारिया। परन्तु पेट जबतक रोटियो से न अटा हो, कुछ देखना-पढना याद ही नही आता "पेट लिखा तो लेता है, पढने नही देता।" किसी ने झूँठ थोड़े ही कहा है—"भूखे भजन न होई गोपाला।" हुए होंगे कोई महावीर, जिन्होने बिना खाये महीने गुजार दिये वरना महीने क्या दो-चार दिन मे ही अतडिया बाहर आने को हो जाती हैं। ईधन के बिना आग और पेट्रोल के बिना गाडी की तरह पेट भी बिना कुछ भेंट-पूजा लिए टस से मस नही होने देता। धक्के देकर कोई कब तक चलाये ?

चाहे कोई माने या न माने पर यह सोलह आने, माफ कीजिए सौ पैसे सत्य है कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूर्णन करती हुई दिन-रात बनाती है और पृथ्वीवासी पेट के लिए घूर्णन करते हुए दिन-रात काटते हैं। वैसे कहने को भले कोई आख को सर्वोपरि बतादे अथवा हाथ-पैर को, लेकिन हैं ये सब इमारत के ऊपरी झिलमिलाते कोट-कगूरे। नीव का पत्थर तो यह पेट ही है जो इन सबको देखने, चलने-फिरने या कुछ भी करने का बूता देता है वरना सब होकर भी अनहुए होते। धन्य है उन तपस्वियो को जिन्हे भूखे रहकर भी तारो की जगह शाति दीख पडी। अवश्य ही उन्होंने पेट को वश मे रखने का कोई गुर सीख लिया था। काश, वही कोई भूख-भजन नुस्खा लिख जाते। हा तो इस तथ्य को स्वीकार करते जरा भी क्यो हिचकिचाएँ कि पेट के सामने हम बिलकुल 'सरेण्डर' हैं। बडी-बडी बातें, बड़े-बडे कार्य भी इसी की बदौलत सूझते हैं। बिना इसकी मान-मनोवत के होश हरिण हो जाते और अक्ल गायब। अत "पहले पेट पूजा फिर काम दूजा।"

वात सिर्फ पूजा अर्थात् पेट भरने की ही होती तो कुछ वनता, मगर भरने के साथ ही पुन खाली होने की प्रतीक्षा भी काया के साथ छाया की तरह पीछे लगी रहती है। चार-छह घण्टे वीतने पर भी पेट भरा-भरा प्रतीत होता रहे तो वडी परेशानी होती है और फौरन डाक्टर का द्वार खटखटाते है कि कुछ मदद करो ताकि खाली महसूस कर सके, तो जाहिर है खाली या भरा दोनो स्थितिया निरापद नही हैं।

यह तो हुई पेट के साधारणतया खाली भरे होने की वात। अव जरा 'पेट' शब्द के सकीर्ण दायरे को छोडकर हम इसके व्यापक अर्थ मे चलें तो व्यक्ति के पेट से लेकर परिवार, समाज और देश से होते हुए पूरी दुनिया को एक वृहदाकार पेट के रूप मे देख सकते हैं। "काल के गाल मे समा जाना"—की तरह परिवार, समाज और देश के पेट मे समा जाना का प्रयोग भी कोई गैरवाजिव नही लगता। तो जव भी कोई परिवार, समाज अथवा देश अपने पेट की चिता से मुक्त हुआ, भर गया तो वहा विस्तारवादी मनोवृत्ति का जन्म हुआ और भरे पेटो ने खाली पेटो की विवशता का मनचाहा लाभ उठाया। फलत कितने ही पेट पीठ से लग गये तो कितने ही उभर कर फटने को हो आये।

इन्ही खाली भरे पेटो की आवश्यकता और उन्माद ने विज्ञान के माध्यम से अनेक आश्चर्यकारी साधन जुटाए तो अणुवम और उद्जनवम जैसे प्रलयकारी शस्त्रास्त्र भी। किन्तु पेट को विना भरे ही कैसे रखा जाय ताकि दोनो स्थितियो से वचकर सयत रह सके—इस छोटे से प्रश्न का हल विज्ञान किंवा इन्सान तो क्या शायद भगवान भी न दे पायें।

वुनियादी समस्या पेट की भूख मिट जाये तो फिर 'न रहे वास और न वजे वासुरी" फिर कुछ भी करना-कराना शेप न रह जाय। आवश्यकता ही न रहेगी तो कोई आविष्कार भी क्यो होगा? ये हलचल, ये भागदौड, ये अच्छाइयाँ- वुराइयाँ कुछ भी न रहे अगर पेट न हो। और तव कुम्भकर्ण की तरह वडे आराम से भले ही घोडे वेचकर या फिर तोंद न होने पर खूटी तानकर सोते, कोई भला क्यो जगता जगाता? तो इस अनुत्तरित प्रश्न के लिए विधाता से ही क्यो न प्रार्थना करें कि—कभी फिर दुनिया वनाने की हौस लगे, वतौर पेट की महरवानी के यह दुनिया तो कभी न कभी मिटनी ही है।" तो एक वडी कीमती वात हमारी भी मद्देनजर रखें। वह यह कि और कुछ भी वेखटके वना डालें पर भली चाहे तो पेट वनाने की भूल दुवारा न करें। ★
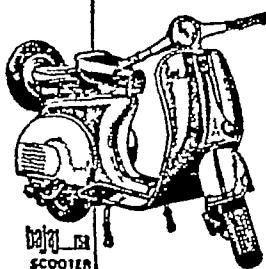
—महिला विकास परिषद् श्री डूंगरगढ़ (राजस्थान)

FOR ECONOMY
AND RELIABLE SERVICE
bajaj
bajaj
SCOOTER
bajaj THREE WHEELER
AUTORICKSHAW
bajaj THREE WHEELER
PICK-UP VAN
bajaj THREE WHEELER
DELIVERY VAN
bajaj auto limited
CHINCHWAD, POONA-19
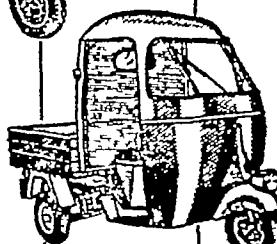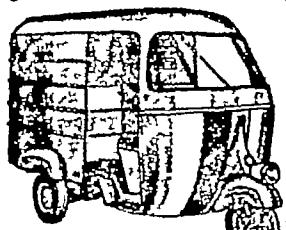
यदि योग्य रूप से ग्रहण किया जाए तो शाकाहार पर्याप्त प्रोटीन व चर्बी की पूर्ति करता है। एक शाकाहारी शारीरिक व मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है। भलाई व न्याय की भावना वाला समाज निरीह प्राणी को मारने का जघन्य कृत्य कभी नहीं कर सकता।

मांसाहार का दुष्परिणाम

— डा० मोहन बोरा

[प्राकृतिक चिकित्सक]

यह एक नितान्त थोथी धारणा है कि मास-भक्षण से शरीर बलवान होता है। प्रोटीन और चर्बी की पूर्ति मे इसे अनिवार्य तक माना जाने लगा है। किन्तु एक प्राकृतिक चिकित्सक के नाते मैं इसे बिल्कुल आवश्यक नही मानता तथा इसे हेय और घृणित मानता हू। मनुष्य को इतने अधिक प्रोटीन व चर्बी की आवश्यकता नही होती जितनी मास मे होती है। इस तरह प्रोटीन और चर्बी की अधिकता पाचन क्षेत्र मे विखण्डन और दुर्गन्ध पैदा करती है और इस तरह अपच होता है। परन्तु शाकाहार यदि उचित रूप से लिया गया हो तो शरीर के लिए पर्याप्त प्रोटीन और चर्बी दे सकता है। ससार के बहुत से मनुष्य जिनका आहार शाक-सब्जी है, मासाहार पर जीवित रहनेवाले व्यक्तियो की तुलना मे शारीरिक और मानसिक दोनो ही तरह से अधिक स्वस्थ रहते हैं। मासाहारी होने की अपेक्षा शाकाहारी होना अधिक स्वास्थ्य-प्रद और मितव्ययी भी है।

जो भोजन हम करते हैं उससे शरीर बनता है, इसलिए ऐसे भोजन का गुण नम्र और सयमित होना चाहिए। यदि भोजन पशु के मास से सग्रहित किया जाता है तो निश्चित रूप से उसका प्रभाव भी विपरीत होता है। इस सन्दर्भ मे मेरा विचार यह है कि हमे अपने बच्चो के आहार मे किसी पशु का दूध भी नही रखना चाहिये। भावी पीढी के नैतिक पतन को रोकने के लिए उनके मस्तिष्को का निर्माण पशुओ के प्रोटीन (गाय, भैंस, भेड, बकरी) से निर्मित न होने पाए यद्यपि असीमकाल से उत्तम गुणो के कारण दूध को शाकाहार माना जाता है पर यह भी मासाहार जैसी अज्ञानता से मुक्त नही हो

सकता। निसन्देह यह समुचित शोध का विषय है। निश्चित रूप से कुछ शाकाहारियो के लिए यह एक भयावह और दु खद प्राकट्य है।

भलाई और न्याय की भावनावाला सभ्य समाज का आदमी अपने मन मे भोजन के लिए निरीह प्राणी को मारने की अनैतिकता नही पोप सकता। वह वहुत ही प्रिय पशु का गला नही काट सकता। अगर ऐसा करने के लिए किसी पर दवाव डाला जाता है तो मासाहारी स्वय को दोपी अनुभव करेगा और मास खाना छोड देगा। जहा तक परिणाम और मानवी चेतना पर प्रभाव का सम्वन्ध है, हत्या और कत्ल मे कोई अन्तर नही है। पशुओ के भी मास हड्डिया और नाडी सस्थान आदि होते हैं ठीक मनुष्य की तरह और इस तरह भोजन के लिए पशु का कत्ल और आदमी की हत्या मे क्या अन्तर है ?

पालतू सूअर जमीन की हर गन्दी चीज खाते है यहा तक कि आदमी और पशुओ का मलमूत्र भी। अपने गदे भोजन के कारण सूअर ससार मे सवसे गदा पशु माना जाता है। उनकी कोशिकाएँ पराान्नभोजी होती है यह गिद्धो से भी अधम होता है, पर कुछ मासाहारी इन सूअरो के मास को भोजन मे सम्मिलित करते हैं।

पशु मास के पित्त सम्वन्धी तत्व रक्तचाप, कैंसर, गठिया और रक्तनलियो मे रक्त का जमाव आदि वीमारिया पैदा करते है। मासाहार का यही परिणाम होता है। पश्चिमी देशो मे भी शाकाहारी सस्थाएँ हैं और वहा भी शाकाहारी आन्दोलन प्रगति कर रहा है। यहा यह कहना हास्यास्पद है कि वुद्ध-गाधी व अन्य शाकाहारी ऋपियो की हमारी धरती पर मासाहारी दिन-व-दिन वढ रहे हैं। हमारी राष्ट्रीय सरकार भी वेकारी और खाद्य समस्याओ का हल निकालने के लिए देश मे मुर्गी-फार्म, सूअर-फार्म, चरागाह-फार्म खोलने का प्रचार करती है।

[नेचर क्योर इस्टीटयूट शिवसागर (असम)]
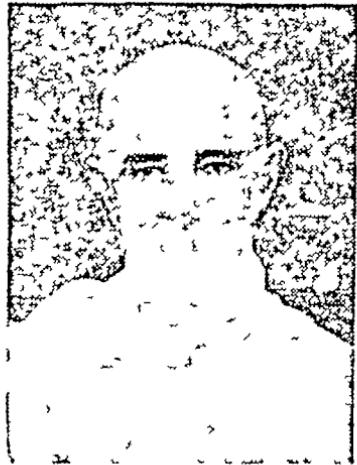
जैनधर्म में आहार-विवेक

● श्री मधुकर मुनि

[स्थानकवासी जैन परम्परा के विचारक विद्वान संत, जैनकथासाहित्य के लेखन मे विशेष रूप से संलग्न,]

आहार-शरीर की अपरिहार्य आवश्यकता है। यह सत्य है कि आहार के विना शरीर नही चल सकता, किंतु क्या हम शरीर को चलाने के लिए ही आहार करते है? यदि शरीर यात्रा को सुखपूर्वक चलाना ही आहार का उद्देश्य है तो यह उद्देश्य कोई बुरा नही हैं। किंतु मैं देखता हूँ शरीर के लिए, स्वाद के लिए ही अधिकतर लोग भोजन करते हैं। जीवन जीने के लिए भोजन नही, किंतु भोजन के लिए, अधिक से अधिक स्वादिष्ट, रसीले और चटपटे पदार्थ खाने के लिए ही लोग जीवित रहना चाहते हैं—भोजन का यह उद्देश्य गलत है। अस्वास्थ्यकर है।

भगवान महावीर ने वार-वार हमारे विवेक को जगाया है—**जवणट्ठाए भुंजिज्जा**—जीवन यात्रा को सुखपूर्वक चलाने के लिए आहार करो। शरीर धारण का पवित्र उद्देश्य है—मोक्ष-साधना। **मोक्ख साहण हेउस्स साहुदेहस्स धारणा**—मोक्ष का साधन होने को कारण ही देह को धारण करना है। यदि आहार मे विवेक न रखा गया तो वह मोक्ष का साधन देह; रोग-पीडा और क्लेश का घर वनते देर नही लगेगी, अत भोजन की थाली पर बैठने से पूर्व भोजन करने से पूर्व अपने आहार-विवेक को जागृत कीजिए, निम्न शिक्षाओ पर विचार कर लीजिए, मेरा विश्वास हैं यदि ५ मिनिट मे ही आप इन शिक्षाओ को पढ़ लेंगे तो भी आपके भोजन के बहुत से दोष दूर हो जायेंगे, और आपका व्याधि-मन्दिर शरीर, आरोग्य-मन्दिर वना रह सकेगा। लीजिए ये कुछ अमृत विचार हैं—

१ तहा भोत्तव्वं जहा से जाय माता य भवति,
न य भवति विब्भमो, न भसणा य धम्मस्स ।

—(भगवान् महावीर) प्रश्नव्याकरण २।४

ऐसा हित—मित भोजन करना चाहिए, जो जीवनयात्रा एव सयम-यात्रा के लिए उपयोगी हो सके, और जिससे न किसी प्रकार का विभ्रम हो और न धर्म की भ्र सना ।

२ हियाहारा मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा ।
न ते विज्जा तिगिच्छति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा ।।

—(आचार्य भद्रबाहु) ओघनिर्युक्ति ५७८

जो मनुष्य हितभोजी, मितभोजी एव अल्पभोजी हैं, उसको वैद्यो की चिकित्सा की आवश्यकता नही होती । वे अपने-आप ही अपने चिकित्सक (वैद्य) होते हैं ।

३ काल क्षेत्र मात्रा स्वात्म्य द्रव्य-गुरुलाघव स्वबलम् ।
ज्ञात्वा योऽभ्यवहार्यं, भुङ्क्ते किं भेषजैस्तस्य ।।

—(आचार्य उमास्वाति) प्रशमरति १३७

जो काल, क्षेत्र, मात्रा, आतमा का हित, द्रव्य की गुरुता-लघुता एवं अपने वल का विचार कर भोजन करता है, उसे दवा की जरूरत नही रहती ।

४ बुभुक्षाकालो भोजनकालः ।

—(आचार्य सोमदेव) नीतिवाक्यामृत २५।२६

भूख लगे, वही भोजन का समय है ।

५. यो मित भुङ्क्ते, स बहुभुङ्क्ते ।

—नीतिवाक्यामृत २५।३८

जो परिमित खाता है, वह वहुत खाता है ।

६. तथा भु जीतः । यथा सायमन्येद्युश्च न विपद्यते वन्हिः ।

—नीतिवाक्यामृत २५।४२

वैसे खाना चाहिए, जिससे सध्या या सवेरे जठराग्नि न बुझे ।

७. अतिमात्रभोजी देहमग्नि विधुरयति ।

—नीतिवाक्यामृत १६।१२

मात्रा से अधिक खानेवाला जठराग्नि को खराव करता है ।

८ मोक्खपसाहणहेतू, णाणादि तप्पसाहणोदेहो ।
देहट्ठा आहारो, तेण तु कालो अणुण्णातो ।।

—(क्षमाश्रमण जिनभद्र) निशीथभाष्य ४१५४

ज्ञानादि मोक्ष के साधन हैं, और ज्ञान आदि का साधन देह है देह का साधन आहार है। अत साधक को समयानुकूल आहार की आज्ञा दी गई है।

९. अप्पाहारस्स न इंदियाइं विसएसु संपत्तति।
नेव किलम्मइ तवसा, रसिएसु न सज्जए यावि॥
—(क्षमाश्रमण जिनभद्र) वृहत्कल्पभाष्य १३३१

जो अल्पाहारी होता है, उसकी इन्द्रिया विषय-भोग की ओर नही दौडती। तप का प्रसग आने पर भी वह क्लात नही होता और न ही सरस भोजन मे आसक्त होता है।

१० हृन्नाभिपद्मसकोच-श्चण्डरोचिरपायत।
अतो नक्तं न भोक्तव्य, सूक्ष्मजीवादनादपि॥
—(आचार्य हेमचन्द्र) योगशास्त्र ३।६०

आयुर्वेद का अभिमत है कि शरीर मे दो कमल होते हैं—हृदय-कमल और नाभिकमल। सूर्यास्त हो जाने पर ये दोनो कमल सकुचित हो जाते हैं। अत रात्रि-भोजन निषिद्ध है। इस निषेध का दूसरा कारण यह भी है कि रात्रि मे पर्याप्त प्रकाश न होने से छोटे-छोटे जीव भी खाने मे आ जाते हैं। (प्रकाश होने पर अन्य जीव भी भोजन मे गिर पडते हैं) इसलिए रात्रि मे भोजन नही करना चाहिए।

(लेखक की 'जैनधर्म की हजार शिक्षाएँ' से सकलित)

स्वादिष्ट भोजन हमेशा ही पुष्टि-कारक नहीं होता, पर पुष्टिकारक भोजन को स्वादिष्ट वनाया जा सकता है। यह सत्य नहीं है कि महगा भोजन ही पुष्टि कारक होता है पर भोजन मे विद्यमान पौष्टिक तत्वो के गुण और अनुपात ही उसे पुष्टिकारक वनाते हैं।

सन्तुलित आहार

—प्रो० सरोज माणकचन्द पोरवार
एम एस सी "फूड-न्यूट्रीशन"

[एस० बी० टी० कालेज आफ होम साइस की प्राध्यापिका कुमारी सरोज पोरवार आहार व पोपण विषय मे निष्णात है। प्रस्तुत लेख इसी विपय का सारगर्भित विश्लेपण प्रस्तुत करता है।]

उपलब्ध इतिहास से अव तक भौतिक वातावरण मे भोजन मनुष्य का प्रारम्भिक विपय रहा है। प्रत्येक व्यक्ति भोजन का आनन्द लेता है। मनुष्य को जीवित रहने हेतु खाना चाहिए और वह जो कुछ भी खाता है, अच्छी तरह रहने, काम करने, प्रसन्न रहने और लम्वी उम्र जीने की उसकी क्षमता को ऊँचे स्तर तक प्रभावित करेगा।

वैज्ञानिक तथ्यो की पूर्ण जानकारी और उसके अनुकूल व्यवहार के पर्यवेक्षण से ही सन्तोपप्रद भोजन की रूपरेखा सफलतापूर्वक वनाई जा सकती है। आजकल खाद्य-पदार्थों की कीमतें वहुत वढ रही है और कोई भी सन्तुलित भोजन की प्राप्ति मे कठिनाई अनुभव कर सकता है।

स्वादिप्ट भोजन हमेशा ही पुष्टिकारक नही होता, पर पुष्टिकारक भोजन को स्वादिप्ट वनाया जा सकता है। यह सत्य नही है कि महँगा भोजन ही

पुष्टिकारक होता है पर भोजन मे विद्यमान पौष्टिक तत्वो के गुण और अनुपात ही उसे पुष्टिकारक वनाएँगे।

भारत मे सर्वेक्षण किये गये है और यह मालूम किया गया है कि सामान्य रूप मे कैलोरीज, प्रोटीन, लौह (खनिज तत्व) कैल्शियम, विटामिन "ए" और "वी कम्पलेक्स" की कमी देखी गई है। अनेक तथ्य इसके कारण हो सकते हैं, यथा —

१—जानकारी का अभाव

२—आर्थिक अक्षमता

३—भोजन विपयक आदतें

यही कारण है कि सन्तुलित आहार को विशेप महत्व दिया जा रहा है और प्रारम्भिक ज्ञान भी जिसे व्यक्ति सुविधा से प्राप्त कर सके।

सन्तुलित आहार वह है, जिसके अनेक खाद्य-पदार्थों में इस तरह का अनुपात हो कि कैलोरीज (उष्मिक तत्व), प्रोटीन (रसायनिक तत्व) विटामिन (जीवन तत्व) और खनिज तत्वो की आवश्यकता पर्याप्त रूप से पूरी हो जाती हो और अतिरिक्त पोपण का भी थोडा-सा प्रावधान वन जाता हो।

आहार सम्वन्धी सुविधाएँ :

विशिष्ट पोपक तत्व के अभाव को रोकने और स्वस्थ व उत्साहपूर्ण जीवन को वनाए रखने सम्वन्धी शर्तो मे विभिन्न प्रकार के आवश्यक पोपक तत्वो के परिणाम को जान लेना आवश्यक है। स्पष्ट रूप से यह जरूरत उम्र, काम की प्रकृति और सम्वन्धित व्यक्ति की विशिष्ट स्थिति के साथ वदलती जाएगी। पथ्य सम्वन्धी सुविधाओ की सूची से एक व्यक्ति की कम से कम पोपण सम्वन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति तो करनी ही होगी। इस प्रकार की सूची उचित भोजन के चयन मे सहायता करती है जिससे वताए गये योग में पोपक तत्व उपलब्ध होंगे। औपधिक अनुसधान की भारतीय परिषद् (इंडियन कांउसिल आफ मेडीकल रिसर्च) ने "अनुमोदित आहार सम्वन्धी सुविधाओं" की सूची निर्धारित की है जो किसी भी व्यक्ति द्वारा सन्दर्भित की जा सकती है।

पर्याप्त और व्यवस्थित भोजन की व्यवस्था के लिए निर्देश :

शाकाहारी भोजन धान, दाल, छिलकेवाले फल, तेल-वीज, दूध, दूध की वनी चीजो, सब्जियो और फलो का होता है। कौनसे खाद्य-पदार्थों और उनमे प्रत्येक की कितनी मात्रा पर्याप्त भोजन के लिए आवश्यक होती है को जानने की सरल विधि 'भोजन-समूह' के आधार पर विकसित की जाती रही है।

प्रारम्भिक पाच भोजन-समूह एक दिन के भोजन का आधार देते हैं और इसमे भोजन-रुचिया भी शामिल हैं जिससे, मौसम सम्वन्धी, क्षेत्रीय और आर्थिक विचारणाओ के कारण लचीलेपन की सुविधा भी प्राप्त होती है। एक विधि के लिए इन पांच समूहो का चयन किया गया है, क्योकि सम्पूर्ण आहार मे प्रत्येक का महत्वपूर्ण पोपण सम्वन्धी योग होता है।

मुख्य पाच भोजन-वर्ग

भोजन वर्ग	दैनिक योग	मुख्य पोषणिक योग
१—प्रोटीन वर्ग		प्रोटीन, कैल्शियम, रिवो-फ्लाविन।
दूध	२ वार	'वी कपलेक्स' विटामिन्स
दाल	२ ,,	,, ,, ,,
फल-तेल-वीज		
२—रक्षात्मक वर्ग		
१ खट्टे फल	१ वार	विटामिन सी
२ हरी पत्ती-पीली शाक-सब्जिया	१ वार	विटामिन 'ए', खनिज तत्व, कैल्शियम।
३—अन्य सब्जिया फल कद आदि	२ अथवा अधिकवार	
४—धान आदि	४ अथवा अधिक वार	प्रोटीन, खनिज तत्व, कार्वो-हाइड्रेट विटामिन 'वी' कम्पलेक्स
५—शक्ति 'ऊर्जा'		
तेल-घी		'ऊर्जा' शक्ति
शक्कर		

सभी भोजन शरीर को आवश्यक 'उर्जा' (शक्ति) देते है। कुछ खाद्य-पदार्थ जिनमे चर्वी का आधिक्य वहुत होता है और कैलोरीज मे कार्वोहाइड्रेट भी बढा हुआ होता है, पानी के अधिक अनुपातवाले दूसरे खाद्य-पदार्थ जैसे फल और सब्जिया आदि अनुपातन कैलोरीज मे कम होती है।

दूध प्रोटीन का सर्वोत्तम साधन है और दात व हड्डियो के लिए किसी दूसरे पदार्थ की तुलना मे इससे कैल्शियम अधिक प्राप्त होता है और रिवो-फ्लाविन नामक पदार्थ की प्रचुर मात्रा देता है। दूध को सर्वाधिक पूर्ण भोजन मानने का विचार गलत है, क्योकि यह सभी पोपक तत्वो का आशाजनक योग

निश्चित नही करता । एस कार्विकएसिड अथवा विटामिन "सी" और खनिज तत्व दूध मे कम होते है । दूध धान सम्वन्धी प्रोटीन की उत्तम विधि मे पूर्ति करता है । यह क्षार-अम्ल, लाइसिन, ट्रिपटोफान आदि पदार्थ भी प्रदान करता है जो धान आदि मे सीमित होते है । जव गेहू के आटे मे दूध मिलाया जाता है तव गेहू के आटे मे प्रोटीन का शारीरिक गुण वढ जाता है और इसलिए ही दूध और धान के सयोग से वनाए गए व्यजन पौष्टिक दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ माने जाते हैं । दाल, फल, फली, छिलकेवाले फल, तेल-वीज, मूँगफली, तिल, काजू आदि प्रोटीन, खनिज तत्व विटामिन 'वी कंपलेक्स' आहार को स्तर देते हैं । पालक-मैंथी आदि हरी सब्जियो मे खनिज तत्व कैल्शियम और विटामिन "ए" व "सी" होता है जवकि गाजर, कद्दू आदि पीली सब्जियो मे विटामिन "ए" होता है । शाकाहारी आहार मे प्रतिदिन अथवा प्रति दूसरे दिन पत्ती की सब्जियो को उनसे ऊँचे स्तर के खनिज तत्वो के कारण जोडना आवश्यक है । कुछ समुदायो मे भ्रमात्मक विश्वास के कारण यह छोड दिया जाता है, पर इसकी महत्ता को ध्यान मे रखते हुए हमे इसका दैनिक उपयोग करना चाहिए ।

खट्टे फल वे होते है जिनमे ऊँचे दर्जे के विटामिन "सी" के तत्व होते हैं और वे हैं नारगी, टमाटर, आमला, अमरूद आदि । आमला और अमरूद विटामिन "मी" प्राप्त करने के अच्छे और सस्ते साधन है जिन्हे दैनिक आहार मे आसनी से जोडा जा सकता है । शरीर की निरोधक शक्ति के लिए विटामिन "सी" आवश्यक होता है और इसके अतिरिक्त भी इसके कई प्रकार के कार्य होते हैं ।

फनसी, गवार, वैंगन, मटर आदि सब्जिया जो आहार के रग, गध और रचनारूपी विभिन्नता का योग देती हैं । इन फलो के अलावा केला, नारगी, अगूर आदि दूसरे विटामिन प्रदान करते हैं और खनिज तत्व भी देते हैं । आलू कन्द, चुकन्दर, आदि मे कार्वोहाइड्रेट वहुत होता है और इस कारण आहार को 'ऊर्जा' देते हैं । भारत मे धान ही प्रमुख भोजन है । गेंहू ज्वार, बाजरा, चावल अलग अलग राज्यो के उपयोग किए जानेवाले मुख्य धान हैं । आहार मे कैलोरीज प्राप्त करने का यही सहज साधन है । इससे शक्ति प्रोटीन, मिलती है जो प्राणिज प्रोटीन, कार्वोहाइड्रेट, खनिज तत्व फासफोरस और विटामिन 'वी कपलैक्स की तुलना मे निचले दर्जे का होता है ।'

तेल और घी से शक्ति वनती है । आहार मे सामान्य मात्रा मे चर्वी का होना आवश्यक है क्योकि घुलन योग्य चर्वी विटामिनो को सोखने के लिए आवश्यक होती है । ये विटामिन "ए" "के" और "डी" है ।

शक्कर और गुड आसानी से उपलब्ध शक्ति के स्रोत है क्योकि ये १०० प्रतिशत कार्वोहाइड्रेट होते हैं, ये दूसरे प्रकार का प्रशसनीय पोषक तत्व नही देते । गुड से थोडा खनिज तत्व प्राप्त होता है ।

दैनिक आहार के लिए 'मुख्य पाच भोजन-वर्गो" से ही भोजन-पदार्थों का चयन किया जाना चाहिए। इस कारण आहार की पद्धति तो एक-सी रहेगी पर खाद्य-पदार्थों में विभिन्नता अवश्य लाई जा सकती है। प्रत्येक भोजन-वर्ग से चुना गया भोजन का योग व्यक्ति की विशेष स्थिति, उसकी उम्र और उसकी गतिविधि पर निर्भर रहेगा। यदि दिन भर के खाद्य-पदार्थ इन पाच भोजन-समूहो मे से पर्याप्त अनुपात मे चुने जाते हैं तो कोई भी व्यक्ति आवश्यक पोपक तत्वो को प्राप्त करने में निश्चिन्त हो सकता है और किसी भी प्रकार की कमी से पीडित नही होगा।

पोषणिक गुण-सूचियां (द न्यूरिटिव वेल्यू टेवल्स)—उपलब्ध हैं और भोजन को आयोजित करने के बाद कोई भी सशोधन कर सकता है कि अनुमोदित दैनिक सुविधाओ के अनुसार उसकी पोपणिक आवश्यकताओ की पूर्ति हुई है अथवा नही।

अव यह आयोजन पोषण की दृष्टि से ही है पर इसके साथ ही यह प्रेरक, आकर्पक और स्वादिष्ट भी होना चाहिए। यह गृहिणी द्वारा थोडे से ज्ञान से ही किया जा सकता है।

मिले-जुले आहार का परामर्श ही उचित है। हमे कम से कम सलाद की तरह एक सव्जी कच्चे रूप मे अवश्य लेनी चाहिए। तापमान पर निर्भरता से व ताप की अवधि मे विटामिन "सी" और "वी कम्पलेक्स" का और पकाने के लिए मिलाए गए पानी का भी ह्रास हो जाता है। पानी कम मात्रा के साथ ही भोजन पकाना श्रेयस्कर है और सव्जियो दाल और चावल आदि के सम्वन्ध मे इसे नही त्यागा जाना चाहिए। इसलिए थोडे समय पकाने वाली प्रेसर कूकर जैसी विधि का विटामिनो की रक्षा के लिए अभ्यास किया जाना चाहिए। चर्वी, घुलनशील विटामिन तलने के समय कुछ परिणाम मे नष्ट हो जाते हैं इसलिए गृहिणीया को इन तथ्यो के प्रति सजग रहना चाहिए। विकासशील वच्चो, गर्भिणी महिलाओ और वृद्ध पुरुपो की विशिप्ट जरूरत को ध्यान मे लाया जाना चाहिए परन्तु, मूल आयोजन एक ही प्रकार का होना चाहिए।

भोजन मे विभिन्नता होनी चाहिए और विभिन्नता का अर्थ स्वीकृति से हैं। यह विभिन्नता रग, वनावट, गन्ध वदल कर और वनाने के तरीके से लाई जा सकती है। भूख के प्रति पहला आकर्पण आखो से होता है। आकर्पक रगो के योग महत्वपूर्ण होते हैं। गध और वनावट के रूपान्तर भी समानरूप से

महत्वपूर्ण होते हैं। खट्टे, मसाले, मीठे, मुलायम और कुरकुरे भोजन एक साथ ही होने चाहिए। पकाने के अनेक तरीकों द्वारा विभिन्नता लाई जा सकती है। उदाहरण के लिए सलाद के रूप मे कच्चा टमाटर, पक्की भाजी, तले कंद के टुकडे आदि।

इस तरह हम अच्छी तरह से सन्तुलित पौष्टिक आहार प्राप्त कर सकते हैं—पाच भोजन वर्गों को अपने ध्यान मे रखते हुए और ऊपर निर्देशित तथ्यो पर विचार करते हुए भोजन को अधिक आकर्षक और स्वादिष्ट वना सकते हैं और हमेशा स्वस्थ, प्रसन्न और उत्साही रह सकते हैं।

सकेत-स्वरूप प्रौढ पुरुप के लिए एक दिन की योजना इस प्रकार है जो कि महँगी नही है और उसका मूल्य भी मात्र ३-०० रु० प्रतिदिन का है—

[पृष्ठ २०५ पर चार्ट देखिए]

अनुमोदित दैनिक सुविधाएँ

	विवरण	कैलोरीज	प्रोटीन ग्राम	केल्सियम ग्राम	आयरन मि. ग्रा	विटामिन 'ए' आइ यू	थायमाईन	रिबोफ्लेविन मि. ग्रा	नाइसिन मि ग्रा	विटामिन 'सी' मि ग्रा
पुरुष	बैठक का कार्य	२४००					१ २	१ ३	१६	
	मध्यवर्ग का कार्य	२८००	५५	० ४-०·५	२०	३०००	१ ४	१ ५	१९	५०
	भारी कार्य	३०००					२·०	२·२	२६	
स्त्री	बैठा कार्य	१६००					१·०	१·०	१३	
	हल्का कार्य	२२००	४५	० ४-०·५	३०	३०००	१ १	१ २	१५	५०
	भारी कार्य	३०००					१·५	१ ७	२०	
	गर्भावस्था [उत्तरार्द्ध]	+३००	+१०	१·०	४०	३०००	+०·२	+० २	+२	
	स्तन पान कराते समय	+७००	+२०		३०	४०००	+०·४	+० ४	+५	
शिशु	प्रारभ से छह माह	१२०प्र.कि	१·८-२·३ प्रति किलो	०·५-० ६		१६००				३०—५०
	सात से बारह माह	१००प्र कि	१·५-१·८ प्रति किलो		१मि ग्रा प्रति किलो	१२००	० ६	० ७	८ ०	३०—५०
	एक वर्ष	१२००	१७	०·४-० ५	१५-२०	१०००	०·६	० ७	८·०	३०—५०
	चार से छह वर्ष	१५००	२२			१२००	०·८	० ८	१०·०	३०—५०
	सात से नौ वर्ष	१८००	३३	० ४-०·५	१५-२०	१०००	० ९	१ ०	१२ ०	३०—५०
	दस से बारह वर्ष	२१००	४१			२४००	१ ०	१·२	१४ ०	३०—५०
किशोर	तेरह से पन्द्रह वर्ष लडका	२५००	५५	० ६-० ७	२५	३०००	१·३	१ ४	१७ ०	३०—५०
	तेरह से पन्द्रह वर्ष लडकी	२२००	५०		३५	३०००	१·१	१·२	१४ ०	३०—५०
	सोलह से अट्ठारह वर्ष लडका	३०००	६०	० ५-०·६	२५	३०००	१·५	१·७	२१·०	३०—५०
	सोलह से अट्ठारह वर्ष लडकी	२२००	५०		३५	३०००	१·१	१·२	१४ ०	३०—५०

प्रौढ व्यक्ति के लिए आहार

(बैठा कार्य करने वाले)

भोज्य पदार्थ	तादाद	कैलोरिज	प्रोटीन	कैल्सियम	आयरन	विटामिन ए	थायमाइन	टिवेफ्लेविन	नियासिन	विटामिन सी मूल्य
	ग्राम		ग्राम	मि.ग्राम	मि ग्राम	आई.यू	मि ग्राम	मि ग्राम	मि.ग्राम	मि.ग्राम.
(१) प्रोटीन										
दूध	३००	३००	१२·९	६३०	—	४८०	० १२	० ३०	० ३०	—
मूंग की दाल	५	१६	१·२	—	—	—	०·०२	०·०२	० १०	—
मठ की दाल	२०	६६	४·७	४०	२ ०	—	०·०९	०·०२	०·३०	—
तूर की दाल	२५	८३	५·६	२०	१·४	—	० ११	० १३	०·७०	—
मूंगफली	१०	५५	२ ६	—	—	—	० ०९	०·०३	१ ४	—
(२) रक्षात्मक										
नारंगी	१००	४०	—	२०	—	१८००	—	—	—	३०
टमाटर	१००	२०	—	४८	—	५८५	०·१२	० ०६	० ४	२७
मैथी भाजी	७५	३६	—	३००	१२ ०	२९२५	—	० १२	० ६	४०
गाजर	५०	२४	—	४०	११	१५७५	—	०·०१	० ३	—

(३) अर्थ											
भिण्डी	७५	२७	—	४२	१·२	—	० ०५	० ०७	० ४	—	
आलू	१००	९७	—	—	—	—	०·१०	—	१ २	—	
प्याज	५०	२५	—	—	—	—	—	—	—	—	
मटर	१०	१०	—	—	—	—	—	—	—	—	
सेव	१००	५५	—	—	१·०	—	० १२	० ०३	०·२	—	
(४) धान											
बाजरे का आटा	१५०	५४०	१७·४	६०	२००	३३०	०४ ९	० २४	४ ८	—	
गेहू का आटा	७५	२५५	९ ०	३६	९ ०	—	० ३६	० २१	३ १	—	
चावल	३०	१००	१ ८	—	—	—	—	० ०१	० ६	—	
रवा	१०	३५	१·०	—	—	—	—	—	०·१	—	
पोहा	२५	८६	१·६	५ ०	५·०	—	० ५	० ०३	१ ०	—	
(५) उर्जा (एलर्नी)											
तेल	४०	३६०	—	--	—	—	—	—	—	—	
शक्कर	४०	१६०	—	—	—	—	—	—	—	—	
योग	=	२३६०	५७८	१२३६	५००	७६६५	१·७२	१ २८	१५५	४७	रु०३ ००

खाद्य-पदार्थों की तालिका। दूध को लस्सी के रूप मे लिया जा सकता है अथवा सोने के समय अनुपात कटोरी नाप मे दिया गया है—

तालिका

सुबह का नास्ता— चाय—एक कप
पोहा—एक प्लेट
सन्तरा—एक

दिन का भोजन—भिण्डी भकोसी हुई—एक कटोरी
टमाटर कटे हुए—एक प्लेट
दही—एक कटोरी
फुल्के—४
गाजर-मटर पुलाव—१ वडी कटोरी
मेव—१ छोटी

जल-पान— चाय—एक कप
आलूचिप्स—१ प्लेट

भोजन—मूग की दाल के साथ पालक भाजी—१ कटोरी
गाजर सलाद—आधो कटोरी
हरी चटनी—
तूर की दाल—१ कटोरी
रवा खीर—१ वडी कटोरी
वाजरी-मकाई—२ मध्य आकार की

[प्राध्यापिका—एस० वी० टी० कॉलेज, आप होम साइन्स्ट, वम्वई] ●

न रसट्ठाए भुंजिज्जा जवणट्ठाए महामुणी
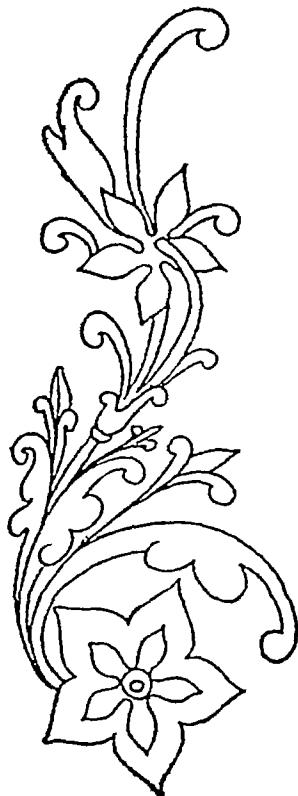
—उत्तराध्ययन ३५।१७

भोजन स्वाद के लिए नही, किन्तु जीवनयात्रा को सुखपूर्वक चलाने के लिए करना चाहिए। ●

मनुष्य—शेर, चीता आदि मासाहारी जानवरो की तरह पानी को "चप-चप" कर नहीं पीता है, इस आदत के कारण वह शाकाहारी प्राणी है।

—ज्योफ्रे एल० रइड्ड (सचिव वैजिटेरियन सोसाइटी-इगलैण्ड)

● खाने को आधा करो, पानी को दूना,
कसरत को तिगुना और हसना चौगुना।

दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।
यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥

— चाणक्यनीति

दीपक अंधकार का भक्षण करता है, परिणाम स्वरूप काजल उत्पन्न करता है। उसी प्रकार मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसी ही उसकी सन्तानें होती हैं।

शराव, घूम्रपान, चाय, काफी के व्यसन छुडवाना प्राकृतिक चिकित्सक के जीवन का अग है, किन्तु इन व्यसनो को छुडवाने की अपेक्षा मासाहार छुडवाना अधिक कठिन समस्या है ।

शाकाहार की उपादेयता का ज्ञान कर् लेना आसान है । शाकाहार के लाभ हृदय मे वैठ जाने पर भी शाकाहारी वन जाना कठिन होता है ।

मास का त्याग ही नही, किसी भी आदतन आहार मे परिवर्तन कर देना कई रोगियो मे प्राय असम्भव पाया जाता है ।

मैसूर के प्राकृतिक चिकित्सालय मे अनुभव आया कि रोगी चावल के वदले लम्वे समय तक रोटी अपना लेने मे कठिनाई महसूस करते थे ।

मांसाहार का विकल्प—कुकुरमुत्ता

डा० विनयकुमार जैन

[प्रमुख चिकित्सक नगर-निगम प्राकृतिक चिकित्सालय, जवलपुर]

[आयुर्वेद मे प्रतिनिधि (सवस्टीट्यूट) औषधि उस औषधि को कहते हैं, जो निर्देशित औषधि के अभाव मे काम मे ली जा सके, अर्थात् उसमे न्यूनाधिक वे सब गुण निर्देशित औषधि के पाये जाते हैं । प्रस्तुत लेख मे मांस के पौष्टिक आदि गुणो के प्रतिनिधि के रूप मे नये पदार्थ की खोज और उसके गुणों का वर्णन है ।

यह मांसाहार-व्यसन की समस्या का हल है । आदतन मासाहारियो के लिए और पोषण की दृष्टि से मासाहार का विकल्प खोजनेवालो के लिए लेख उपयोगी है । —सपादक]

रोटी को वे दक्षिणवाले 'उपवास' का भोजन मानते है । वे कहते 'आज तो उपवास है ।' भले ही पेट भर रोटिया खाली हो ।

वगाल के भयानक अकाल मे गुजरात और राजस्थान से वाजरा भेजा गया था, किन्तु चावल के आदी वगालियो की भूख की शाति इससे नही होती थी, न इससे उन्हे शक्ति ही मिलती थी ।

मांसाहारी से शाकाहारी बनने की समस्याए इससे कही अधिक कठिन है क्योकि—

१—मास एक उत्तेजक भोजन है। उत्तेजक आहार का त्याग कर देना अधिक कठिन है। जैसे तम्बाकू, शराब आदि छोडना।

२—आदतन आहार छोड देना भी कठिन है।

३—इसके पीछे 'शक्तिदायक' होने का मिद्धान्त है। मास को विज्ञान ने इसके प्रोटीनो के कारण शक्तिदायक मानकर मानसिक दृष्टि से 'पकड' स्थायी बनाने मे सहयोग दिया है।

आज के वैज्ञानिक युग मे इस समस्या को दया-धर्म के सहारे और स्वर्ग-मोक्ष के लोभ से हल नही किया जा सकता। मन बडा प्रबल है। जब हारने लगता है तो 'धर्म का' सहारा लेने पर 'बल से' अपना 'इच्छित' प्राप्त कर लेता है। 'तर्क' और 'विज्ञान' का सहारा लेकर इसकी 'उपयोगिता' सिद्ध करता है और न मिलने पर कमजोरी महसूस करता है। रोगी चिन्तन करते हैं वे शक्तिदायक और पौष्टिक आहार नही ले रहे है। उनका यह मन मे पैठा हुआ विचार उनकी कमजोरी को बढाने मे और अधिक कारणीभूत हो जाता है।

इस प्रकार यह समस्या मुख्यत मानसिक है। हर दूसरे, तीसरे या चौथे दिन इन्हे मास चाहिए ही। इस स्थिति मे इनकी चिकित्सा कैसे चलाई जाय?

इसी चिन्तन मे एकदिन एक रोगी ने बताया कि मे 'बीटन व्हीट (भिगोकर कूटकर चावल की तरह सफेद बनाया हुआ गेहू) उबाल कर उसे चावल के बदले चला लेता हू। इससे कमजोरी नही आती।' रोटी से इन्हे कमजोरी आती थी।

अर्थात् मन धोखे मे आ गया। उबले चावल की आकृति की चीज मिल गई तो मन मे समझ लिया वह चावल खा रहा है। और चावल जैसी ही इससे शक्ति मिल रही है।

यही सिद्धान्त काफी-चाय छुडवाने के काम आता है। काफी के बदले गेहू की काफी) जले गेहू का पिसा हुआ पावडर) पीकर काफी-चाय की आदत छोड देना आसान है। रोगियो पर ऐसे प्रयोग का हमने अनुभव किया है।

काफी के बदले गेहू की काफी पीकर मन ने सन्तोप कैसे कर लिया? वही काफी-सा कत्थई रूप, वह काफी की जली-जली-सी गध, वही कडवा-कडवा सा स्वाद गेहू की काफी मे मिला तो मन धोखा खा गया और काफी की आदत छूट गई—बिना कैफीन आदि उत्तेजक द्रव्यो के ही। देखिए, मन कैसे फुसलाया जाता है?

इसी सिद्धान्त पर, मासाहार के मामले मे भी मन को फुसलाया जा सकता है। तो ऐसा कौन सा पदार्थ है जो शाकाहारी हो, किन्तु उसमे मास की गध और मास का स्वाद भी मिले ?

'कुकुरमुत्ता'—साप की छतरी जिसका दूसरा नाम है—इस कसौटी पर खरा उतरा है। इसमे मास का स्वाद और गध है। यह केवल मानसिक सन्तोष या धोखा देकर ही मास का स्थान लेने मे सक्षम नही है, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टि से भी खरा उतरा है। इसमे वे तत्व पाये जाते है, जो इसे मास मे ऊची कोटि पर स्थान देते हैं, क्योकि इसमे वे सडाध पैदा करनेवाले तत्व नही है, जो मास मे है।

इसमे अधिक मात्रा मे प्रोटीन है। खनिज लवण है, विटामिन 'बी', 'सी', 'डी' आदि हैं। यह हृदय-रोग को ठीक करने मे लाभप्रद है।

इसमे नियासिन और पैंटोथिनिक अम्ल काफी मात्रा मे पाये जाते हैं, जो चर्म-रोग और हाथो-पैरो की जलन पर कारगर सिद्ध हुए हैं।

काफी मात्रा मे इसमे कैल्शियम, फासफोरस, लोहा, ताम्बा और पोटाश पाये जाते है। हड्डी के बनने और आंखो की रोशनी के लिए आवश्यक तत्व हैं।

इसमे खून की कमी की बीमारियो को दूर करने के लिए भारी मात्रा मे फोलिका है, अम्ल है।

स्टार्च के अभाव मे यह मधुमेही के लिए अच्छी तरकारी है। प्रोटीन बाहुल्यता के कारण यह कम वजनवालो के लिए वजन बढानेवाला सिद्ध हुआ है। पजाब, सिंध और हिमाचलप्रदेश मे रुचि के साथ इसकी सब्जी और अन्य पदार्थ बनाये जाते हैं। इसके अनुपम स्वाद के कारण ही पजाब से दूर रहने वाले प्रवासी पजाबी अपनी शादियो और पार्टियो मे इसके व्यजन अवश्य बनाते हैं।

इसकी उपादेयता के कारण ही इसकी कृषि को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रसघ के सहयोग से हिमाचल प्रदेश मे अनुसधान हो रहा है और उत्पादन मे वृद्धि हो रही है।

इसकी गध और स्वाद मास के समान होने से इसका सेवन कर मासाहारी व्यक्ति मास को भूल जाता है। मासाहार के बिना काम चलाया जा सकता है।

कुकुरमुत्ता की तरह कटहल के बीज का व्यजन भी मास का स्थान लेने मे समर्थ है।

●

इमे वै मानवा लोके नृशंसा मास-गृद्धिन. ।
विसृज्य विविधान् भक्ष्यान् महारक्षो गण इव ॥

—युधिष्ठिर भीष्म संवाद—महाभारत अनुशासन पर्व

—ये लोग जो तरह-तरह के अमृत से भरे शाकाहारी उत्तम पदार्थों को छोडकर घृणित-पदार्थ—माँस आदि खाते हैं। वे सचमुच राक्षस की तरह दिखाई देते हैं।

मांसभक्षैः सुरापानै मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः ।
पशुभिः पुरुषाकारै र्भारा क्रान्तास्ति मेदिनी ॥

—चाणक्यनीति

—मास खानेवाले, शराब पीनेवाले, बिना पढ़े-लिखे, मूर्ख पुरुष जानवर के समान होते हैं। इनसे तो धरती माता सदैव दुःखी रहती है।

भोजन का सम्बन्ध स्वाद से नहीं स्वास्थ्य से है। अधिकांश लोग गैर जानकारी मे स्वास्थ्य को चौपट कर देनेवाला भोजन ग्रहण करते हैं। भोजन का चुनाव सही ढग से होना चाहिए।

भोजन का चुनाव कैसे करें ?

—धर्मचन्द सरावगी
[प्रख्यात योग प्रशिक्षक
प्राकृतिक चिकित्सक]

आजकल कुछ लोग भोजन के बारे मे सावधान होते जा रहे हैं। उनकी समझ मे यह आता जा रहा है कि भोजन का सम्वन्ध स्वाद से नही, स्वास्थ्य से हैं। इसीलिये वे खाद्य पदार्थों का स्वास्थ्य की दृष्टि से मूल्य आक कर तव उसका उपयोग करना चाहते हैं।

लेकिन यह वात वहुत कम लोगो पर ही लागू होती है। अधिकाश लोग या तो स्वाद के वशीभूत होकर भोजन करते हैं या अपनी गैर-जानकारी मे ऐसा भोजन करते हैं जो उनके स्वास्थ्य को एकदम चौपट कर देता है।

यह वात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि आज की सभ्यता की, जिसे वहुत वडी देन मानते हैं और जो सभ्य एव सम्पन्न परिवार का मुख्य रूप से खाद्य है यानें सफेद मैदा और चीनी, यह दोनो ही स्वास्थ्य की दृष्टि से सवसे वढकर नुकसानदेह है। यहा हम इन दोनो ही चीजो के वारे मे जरा विस्तार से वतायेंगे।

सफेद चीनी को प्राकृतिक चिकित्सा के लोग सफेद जहर कहते हैं। चीनी मे कार्वोहाइड्रेट का ही भाग है जिनमे न तो कोई विटामिन और न कोई खनिज-तत्व ही है। पहले जमाने मे लोग खाडसारी का प्रयोग करते थे, जिसमे

नुकसान पहुचानेवाली चीज नही थी, लेकिन आज के सभ्यता के जमाने मे चीनी का ही प्रचलन हो गया है जो हानि ही हानि पहुचाती है। दरअसल देखा जाए तो सफेद चीनी को मनुष्य का खाद्य नही मानना चाहिए। यह केवल नर्वस सिस्टम (शरीर की स्नायु व्यवस्था) को उत्तेजना देता है और शरीर के मुख्य अगो को शक्ति पहुचाने का काम नहीं करता। यहा यह वात ध्यान मे रखनी चाहिए कि जो खाद्य पदार्थ शरीर मे जाए वह शक्ति पैदा करने वाला हो। चीनी शरीर के अगो पर उत्तेजनात्मक प्रभाव डालती है। और इससे शरीर मे काफी मात्रा मे इनसुलिन तैयार नही हो पाती और विना इनसुलिन के चीनी शरीर मे लाभजनक हो ही नही सकती। इस तरह यह मधुमेह की वीमारी पैदा करती है और इसके साथ ही लीवर को भी खराव करती है।

इसी प्रकार सफेद मैदे से वना हुआ खाद्य-पदार्थ वाजारो मे विकता है और सभ्य तथा आधुनिक कहे जानेवाले उसे वडे चाव से खाते हैं, क्योकि इसे वे आधुनिकता की निशानी समझते हैं, लेकिन उनको यह जानना चाहिए कि इस खाद्यपदार्थ को तैयार करने मे शरीर को नुकसान पहुचानेवाले रसायनिक द्रव्य मिलाए गए हैं। इसमे वह एक रसायिनिक द्रव्य भी मिलाया जाता है जिसे एन्टीफ्रीज मिक्सचर कहते हैं जो मोटर की मशीनरी के काम मे आता है फिर इसके साथ ही जिस वारीक मैदे से ये खाद्य पदार्थ वनाये जाते हैं उस मैदे मे विटामिन नही रहते, क्योकि आटे को वारीक पीसने मे उसके सारे विटामिन नष्ट हो जाते हैं। केवल उसमे थोडा वहुत स्टार्च और घटिया किस्म का प्रोटीन वच जाता है, किन्तु मैदे को सफेद वनाने के लिए जो रसायनिक द्रव्य काम मे लाया जाता है उसमे यह नाममात्र का प्रोटीन भी नष्ट हो जाता है, क्योकि उस रसायनिक पदार्थ से एमिनो एसिड नामक तत्व नष्ट हो जाता है और इस प्रोटीन का निर्माण होता है। मैदा को सफेद करते समय गेहू का मुख्य तत्व जैसे खनिज पदार्थ, तैल पदार्थ, ऊचे दर्जे की प्रोटीन, विटामिन आदि नष्ट हो जाते हैं और जो कुछ वच रहता है उसे भूसी आदि के नाम पर छानकर वाहर फेंक देते हैं जवकि उसी मे कुछ तत्व वचा रहता है।

इसका उदाहरण देने से वात और भी स्पष्ट हो जावेगी। अमेरिका मे मैदा को और भी सफेद करने के लिये नेट्रोजीन ट्रिक्लोराइड नामक रसायन काम मे लाया गया। इससे मैदा नि सन्देह और भी साफ हो गया और उससे जो रोटी तैयार हुई, जव उस रोटी को कुत्तो को लगातार खिलाया गया तो उन्हें हिस्टीरिया उभड आई। आखिरकार सरकार को वाध्य होकर उस रसायनिक पदार्थ को मैदे मे मिलाने से रोक देना पडा। हालाकि मिलवालो ने क्लोरसून हाइक्साइड नामक दूसरा पदार्थ मिलाना शुरू किया। किन्तु यह

जानना चाहिए कि इस रसायनिक पदार्थ के व्यवहार से नाडी-दौर्बल्य, चमडे पर चकत्ता और श्वास लेने मे तकलीफ होने की बीमारी पैदा हो जाती है। इतना ही नही स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाले और भी पदार्थ इसमे मिले होते हैं जैसे नाइट्रोजीन, परौक्साइड, प्रोपनिक एसिड, पोटेशियम ब्रामेड, नेट्रेजीन आक्साइड और सोडियम अल्यूमीनियम सल्फेट मिली होती है।

अब हम सक्षेप मे यह बता देना चाहते हैं कि गेहू स्वय स्वतन्त्र एक खाद्य है और उसका लाभ तभी होता है जब उसे प्राकृतिक रूप मे इस्तेमाल किया जाए। इसमे विटामिन 'बी-कपलेक्स' की मात्रा पाई जाती है जो कि एक दुर्लभ विटामिन है और जो शरीर, मस्तिष्क और स्नायु के निर्माण और पोषण के लिए परमावश्यक है साथ ही भोजन के बारे मे विचार करते समय हमे प्रोटीन के महत्व को भी नही भूलना चाहिए। हमारे शरीर मे जो रक्तकोष हैं, वे प्रोटीन से ही मुख्यत बनते हैं। हमारे शरीर का मास, शरीर के अन्य अग मस्तिष्क आदि का निर्माण भी मुख्यत प्रोटीन से ही होता है।

प्रोटीन दो तरह की होती है। एक उत्तम कोटि की और दूसरी साधारण। उत्तम कोटि की प्रोटीन शरीर के नष्ट हुए तन्तुओ का निर्माण करती है। यह दूध, पनीर, गेहू के मोटे आटे, सोयाबीन और सूखे मेवो मे पाई जाती है। दूसरे दर्जा की प्रोटीन सूखी बीन, मटर आदि मे पाई जाती है। जब प्रथम कोटि की प्रोटीन से इस प्रोटीन का मेल हो जाता है तब शरीर के विकास मे इससे सहायता मिलती है। अब यहा कुछ ऐसे खाद्यो की सूची देते हैं जिनका उपयोग नही करना चाहिए।

१—ऐसे खाद्य-पदार्थों को न लें जिनके प्राकृतिक रूप को नष्ट करके रसायनिक पदार्थ आदि मिलाये गये हैं। चीनी का इस्तेमाल एकदम बन्द करदें।

२—जो अनाज व फल अप्राकृतिक साधनो से पकाये गये हो, उन्हे न लें, क्योकि उनका मुख्य तत्व और विटामिन नष्ट हो जाता है। अप्राकृतिक रूप से पकाये टमाटर, सन्तरा, और नीबू के अधिकाश गुण इसी तरह हो जाते हैं।

३—जो खाद्य-पदार्थ एक लम्बे अर्से तक ठण्डे घरो मे रखे गये हो उनको काम मे न लाये। सन्तरा तो यदि ठण्डे घर मे आधे घण्टे तक भी रख दिया गया तो उसका विटामिन नष्ट हो जाता है।

४—बन्द डब्बो का खाद्य एकदम बन्द कर दे, इसके तो प्राय. सभी विटामिन नष्ट हो जाते हैं।

५—घर मे जो खाद्यान्न वर्षों से खेतो मे पड़े हो उनको काम मे न लायें। साग-सब्जियो को ज्यादा उवाल देने से भी उनके तत्व नष्ट हो जाते हैं। साग-सब्जियो के रग को वनाये रखने के लिए रंगो का कत्तई इस्तेमाल न करें।

६—ऐसे खाद्यो का इस्तेमाल न करे जो किसी असली पदार्थों की नकल की गई हो।

७—जिन पदार्थों पर नकली रग वनाने के लिए रग चढाये गये हो, उन्हे न लें।
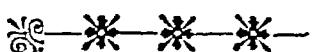
दूध अपने आप एक महान् खाद्य है। शरीर के सारे अगो को पोपित करनेवाले इसमे प्राय सारे गुण विद्यमान हैं।

[—जैन हाऊस,
८/१ एसप्लेनेड (ईस्ट) कलकत्ता–१]

मांसभक्षण पाचन सस्थान को अस्त-व्यस्त कर देता है। यह लार को अल्कली से एसीडिक वना देता है। इस कारण लार-भोजन को पचाने का गुण खो देती है और पाचन सस्थान निष्क्रिय हो जाता है।

आहार का मन पर प्रभाव

—कचन भादानी

●

उस दिन एक प्रीतिभोज से लौटी तो पेट कुछ भारी-सा लग रहा था। वार-वार प्यास लग रही थी। मन भी कुछ अस्वस्थ प्रतीत हो रहा था। हमेशा की स्फूर्ति शिथिलता मे वदल गई। कारण स्पष्ट था—उस दिन भोजन अत्यधिक गरिष्ठ था।

एक लोकोक्ति है "जैसा खाय अन्न वैसा होवे मन" पाश्चात्य सस्कृति भी इस वात का समर्थन करती है "साउण्ड माइण्ड इन ए साउण्ड वॉडी" स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मन का निवास रहता है। गीता मे भोजन के तीन प्रकार वताये गये हैं —

भोजन की गरिष्ठता नहीं, भोजन की सन्तुलितता उत्तम स्वास्थ्य की कारणभूत होती है। प्रशांत मन, प्रसन्न चित्त व सात्विक भोजन स्वास्थ्य को सरक्षण प्रदान करते हैं।

१—तामसिक भोजन, २—राजसिक भोजन एव ३—सात्विक भोजन।

तामसिक भोजन हमारे चित्त की वृत्तियो को उग्र वनानेवाला होता है। राजसिक भोजन का अधिक प्रयोग व्यक्ति को सुस्त व निरुत्साही वनाता है पर सात्विक भोजन हमारे चिन्तन को उदार, सहनशील, विकसित और प्रमुदित वनाता है।

अधिक चटपटे और मिर्च मसालेदार भोजन करनेवाला व्यक्ति अधिकतर क्रोधी स्वभाव का पाया जाता है, वात-वेवात वह क्रोध से भर जाता है और न करने योग्य और न कहने योग्य कार्य क्रोध के आवेग मे उसके द्वारा हो जाते हैं। क्रोध शरीर व मन दोनो को असन्तुलित करनेवाला है।

अधिक चिकनाई युक्त भोजन करने से शरीर पर मोटापा बढने लगता है और शरीर का वजन अधिक बढ जाने पर उसे श्रम करना कठिन मालूम पडता है। उसका जीवन आरामप्रिय वन जाता है उसके हर कार्य मे आलस्य व निरुत्साह झलकते हैं।

अधिक तामसिक भोजन करने से हमारे मन मे अनेक प्रकार के आवेग उत्पन्न होते हैं। एक प्रसिद्ध डाक्टर ने वहुत से रोगियो पर परीक्षण करने के वाद यह निष्कर्ष निकाला कि ५० प्रतिशत मरीजो के कोई रोग ही नही होता, सिर्फ मन की विकृति से वे अपने आपको रोगी अनुभव करते हैं और उनका निदान भी उनकी मानसिक शक्ति का विकास करके किया जा सकता है। हमारे शरीर मे होने वाली वीमारियो मे आधी वीमारियो का मूल क्रोध आवेग है। ईर्ष्या, चिन्ता, भय, क्रोध, अभिमान ये अनेक प्रकार के आवेग हमारे मन मे विद्यमान रहते हैं। अवसर मिलते ही ये अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर देते हैं। जितनी मात्रा मे हमारा खाना सात्विक रहेगा उतनी ही हममे आवेगो की कमी रहेगी और आवेगो की कमी से हमारा मन स्वत शान्त वन जायेगा।

यूज थ्री फिजीशियन—फर्स्ट डावटर क्वायट, देन डाक्टर मेरी माइड, एण्ड देन डाक्टर डाइट।

स्वास्थ्य के सरक्षण के लिए इन तीन डाक्टरो का उपयोग करना आवश्यक है। पहला मन की शाति, दूसरा चित्त की प्रसन्नता और तीसरा सात्विक भोजन।

[—द्वारा डा० जेठमल भसाली
श्रीडूगरगढ (चुरू—राजस्थान)—]

---

० योग उमी व्यक्ति को दुखमुक्त करता है, जिमका आहार-विहार, स्वप्न-जागरण और कार्य प्रयत्नयुक्त होता है।

—श्रीमद् भगवद्गीता

० परिश्रमो मिताहारो, भूगतावश्विनी सुतौ,
तावनादृत्य नैवाऽहं वैद्यमन्यं समाश्रये ॥

परिश्रम और मिताहार ये दो पृथ्वीस्थ अश्विनी पुत्र हैं। मैं इन्हें छोड कर किसी तीसरे वैद्य का आश्रय नही लेता।

शाकाहारी सिद्धांत के विभिन्न पक्ष

—डॉ० जे० एम० जस्सावाला

सामान्य नैतिक कारणो से मासाहार जीवन के विनाश का सूचक है। जिसमे नैतिकता के विपरीत कोई भी गभीरतम दुष्कर्म किया जा सकता है ...

●

डॉ० जस्सावाला चालीस वर्षों से शाकाहारी सिद्धात के प्रति वैज्ञानिक चिन्तन के प्रसार, अध्ययन और अभ्यास के लिए अपना जीवन अर्पित किये हुए है। १६५७ मे 'शारीरिक औषध' पर डॉक्टरेट प्राप्त की और 'इंटर नेशनल फेडरेशन आफ साइंटिफिक रिसर्च' भारत मे अध्यक्ष-सचालक नियुक्त हुए। 'लीविग द वेजिटेरियन वे' पुस्तक मे आपने शाकाहारी पद्धति के कई पक्षो पर विचार किए हैं। यहा उसी पुस्तक के कुछ अश प्रस्तुत हैं।

●

आचारिक-पक्ष .

पूर्व मे शाकाहारी सिद्धान्त आचारिक आधारो पर मान्य हुआ था, शाकाहारी सिद्धान्त आचारिक दृष्टि के अतिरिक्त भी कुछ है, यह एक 'जैवी' विधि है। यह महत्वपूर्ण सत्यो मे से धर्म की तरह ही हो जाती है। सम्पूर्ण जीवन का एक ही उद्गम है। यह विधि इस मान्यता की स्वीकृति है। मास ऐसा उत्तेजक है जो धूम्र और मद्यपान की ललक पैदा करता है और इससे जीवन नष्ट होता है। सामान्य नैतिक कारणो से भी मासाहार जीवन के विनाश का सूचक है जिससे नैतिकता के विपरीत कोई भी गम्भीरतम दुष्कर्म कर सकता है जबकि पशु का जीवन भी उसी तरह दिव्य है जैसे सम्पूर्ण जीवन दिव्य है।

मास देखने और सूघने मे भी अप्रिय है। यदि एक ओर हमारे सामने फलो और सब्जियो का कटोरा हो और दूसरी ओर कच्चे मास के टुकडे हो तो हमारे देखने का भाव, स्पर्श करने का भाव, सूघने का भाव अविलम्ब पहले का ही चयन करेगा, क्योकि सौन्दर्यपरक दृष्टि से यही सर्वाधिक सन्तोपप्रद होता है। मृत और छिन्न मास के आहार पर रहने का विचार सौन्दर्य की रुचि पर आघात करता है। मास और अण्डे रसोईघर मे ले जाए जाने से पूर्व कई दिनो यहा तक कि महीनो रेफ्रिजेटर मे रखे जाते हैं, हरे और नीले दिखनेवालो की सन्देहात्मक गधो के कारण जिनकी रसायनो और द्रव्यो से चिकित्सा कर ली जाती है। यहा तक कि अप्राकृतिक विधि से चर्वी वनाने की विधि जिससे वजन और लाभप्रद वाजार-कीमत वढाने जानवरो का उपयोग किया जाता है, इससे उनके कत्ल के वाद मास के उत्पादनो पर भी घातक प्रभाव होते हैं। यह तो अच्छी तरह से ज्ञातव्य तथ्य है कि सर्वाधिक उदाहरणो मे मनुष्य-प्राणी पर मास का अधिक्य व्यवस्थित विप और प्रारम्भिक बीमारियो का पर्यायवाची ही है। विना किसी प्रश्न के लाभप्रद होते हुए भी इस अप्राकृत और अमानवीय कार्य से हम श्रेष्ठ परिणामो की प्रत्याशा क्यो करें ? मनुष्य के लिए भोजन मे वदल जाने से कुछ ही पूर्व सूअरो, मुर्गियो और दूसरे प्राणियो पर तुच्छ व्यवहार आरोपित करे ही क्यो ? हत्या और मासाहार की विधि महज गवारपन हैं।

मानववादी पक्ष

तालस्ताय ने वडी सादगी से कहा है—'शाकाहारी पथ्य मानवतावाद का तीखा परीक्षण है।' यह सभी शाकाहारियो पर लागू नही होता, क्योकि पिछली कई शताब्दियो मे शाकाहारी सिद्धान्त भारत मे नैतिक धार्मिक अथवा मानवतावादी उपासना की अपेक्षा परम्परागत रीति और आदत हो गई है।

कोई व्यक्ति जो शाकाहारी है, आवश्यक नही है कि वह श्रेष्ठ व्यक्ति हो। वह निर्दयी भी हो सकता है और यहा तक कि पशुओ के प्रति होनेवाली निर्ममताओ और पीडाओ से उदासीन होता हुआ हृदयहीन भी हो सकता है। परन्तु शाकाहारी सिद्धान्त अपने व्यापक पक्षो मे जीवन की श्रेष्ठ पद्धति है। पशुओ को मृत्यु और खतरे का पूर्वाभास हो जाता है। कसाईघर मे ले जाए जाने हेतु उन्हे वहुत ही जगली पन से पीटा जाता है और लहू की दुर्गन्ध मे वे आतकित और भयभीत हो जाते हैं। मठो मे निरीह प्राणी मठोठ - दिया जाता है अथवा होश की अवस्था में उसका गला काट दिया जाता है। तव

रक्तप्रवाह होता है, खाल झूलती है, अतडिया बाहर निकाली जाती है और चीर-फाड की जाती है। यह सारी प्रक्रिया तब की जाती है जबकि पशु गर्म रहता है। कोई भी दया और भावना का व्यक्ति इस प्रकार की निर्मम हत्या और कष्टदायक चीखो का शायद ही साहस करे।

धार्मिक पक्ष

हम पवित्र आलेखो मे पाते हैं—ठहरिए, मैंने आपके हर प्रकार का भोजन देनेवाला बीज दिया है और प्रत्येक वृक्ष जिसमे फल है, आपके लिए मास की तरह ही होगा।' जोरास्टर और बुद्ध का अनुयायी भोजन के रूप मे मास शायद ही ले सके। इसी तरह एक कर्मयोगी या प्रबुद्ध आत्मा भी मास को नही लेगी। एक प्रबुद्ध और सभ्य व्यक्ति का शाकाहारी सिद्धान्त को जीवन के धर्म के रूप मे स्वीकार लेना परम कर्तव्य है जिससे आचारिक और धार्मिक विश्वास प्राप्त किए जा सकते है। इसलिए शाकाहारी सिद्धान्त मात्र धार्मिक क्रिया नही है, मात्र एक आदत नही है वरन् जीवन की एक विधि है।

आर्थिक पक्ष .

क्या ससार आबादी से भर नही जाएगा ? विचारिए, मनुष्य अपना व्यवसाय बढाने, स्वार्थी उद्देश्यो की पूर्ति करने 'पशु-मास' का पोषण करता है।

किसी को यह तथ्य नही भुलाना चाहिए कि मास के लिए विशेष रूप से पोषक पशु को अपने भोजन के लिए मनुष्य की अपेक्षा अधिक जमीन की आवश्यकता पडती है। थोडे से पशु बढाने मे जमीन का बहुत बडा हिस्सा काम मे आता है और जमीन खाली हो जाती है। जितनी एकड जमीन पशुओ को बढाने चरागाह के काम ली जाती है, उस मास से बहुत थोडे से व्यक्तियो को ही खिलाया जा सकता है। यदि धान, दाना, फल, सब्जिया उगाई जाए, उससे अनेक परिवारो को ही तृप्त नही किया जाएगा, वरन् उसी समय, उच्च गुणात्मकता और पोषण का भोजन भी पैदा किया जा सकता है।

नैतिक पक्ष :

नैतिक क्षेत्र मे आने पर हमे लगता है कि मासाहार, धूम्रपान, मद्यपान और अन्य बाधक आदतो की ओर ले जाता है जो व्यक्ति भोजन लेता है, उसका एक निश्चित प्रभाव होता है—केवल शारीरिक दृष्टि से ही नही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी राजसी भोजन व्यक्ति को लोभी, व्याकुल और विनाशकारी बनाता है जबकि सात्विक भोजन रचनात्मकता और ध्यानावस्था देता है।

—[१४० कम्बाला हिलरोड, बम्बई २६]

●

मांसाहार का निषेध क्यों ? किसलिए ?

—डा० बी० बी० जैन,
एम ए, पी-एच० डी०
(प्रोफेसर (आगरा कालेज) अग्रेजी साहित्य
के मर्मज्ञ समीक्षक एव आगरा शाखा
'भारतजैन महामडल' के अध्यक्ष)

मनुष्य के भोजन, वुद्धि तथा चरित्र मे गहरा पारस्परिक सवध होता है। शुद्ध, सतुलित एव सात्विक शाकाहारी भोजन करनेवाले व्यक्ति की वुद्धि प्रखर, चरित्र निर्मल तथा भावनाये स्वभावत शुद्ध एव कोमल होती हैं। इसके विरुद्ध मासाहारी व्यक्ति की वुद्धि मद, चरित्र दूषित तथा भावनायें कठोर एव हिंसक वन जाती है। यह कथन केवल धार्मिक किंवदती अथवा आदर्श की दुहाईमात्र नही है, अपितु वैज्ञानिक सिद्धान्तो द्वारा प्रमाणित एक आधारभूत सत्य है। जीव-विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के मस्तिष्क का विकास तथा उसकी भावनाओ एव चरित्र का गठन उसके रक्त मे मिश्रित कारपुल्स (Corpuscles), हांरमौन्सा (Hormons), व्लड प्लेटलैट्स (Blood Platelets) आदि आवश्यक तत्वो के अनुपात तथा सरचना पर निर्भर होता है। इन तत्वो का अनुपात तथा सरचना मनुष्य के भोजन द्वारा निर्धारित होती है। मनुष्य का स्वाभाविक भोजन शाकाहारी भोजन है, जो रक्त के तत्वो के अपेक्षित अनुपात तथा सरचना को स्थिर रखता है। किन्तु मासाहार स्वाभाविक भोजन न होने के कारण तत्वो के अपेक्षित अनुपात तथा सचरना को विगाड देता है, और अन्तत हानिकारक सिद्ध होता है। हमारे जैनाचार्यों एव मनीपियो ने इस सत्य की अनुभूति आधुनिक विज्ञान की खोजो से हजारो वर्ष पहिले ही करली थी। अत. जैनधर्म के अन्तर्गत मासाहार का विशेपरूप से निपेध किया

गया है। भगवान महावीर ने तो मासाहार को अत्यन्त घृणित दुर्व्यसनो मे से एक दुर्व्यसन तथा नरक मे ले जानेवाले चार प्रमुख कारणो मे से एक कारण माना है।

भावनात्मक दृष्टि

मासाहार से मनुष्य के हृदय की कोमल भावनायें नष्ट होती हैं तथा मन मे क्रूरता, उत्तेजना तथा हिंसात्मक विचार बढते हैं। जो मनुष्य जिह्वा के क्षणिक स्वाद के लिये निर्दोष मूक पशु-पक्षियो का वध कर उन्हे खा सकता है, उसके हृदय मे दया, प्रेम, क्षमा और शील की भावनाओ का प्रादुर्भाव हो ही कैसे सकता है? ऐसे मनुष्य का हृदय निर्दय, कठोर और विकार-ग्रस्त हो जाता है। विकार-ग्रस्त मनुष्य समाज मे अशान्ति और सघर्ष का वातावरण पैदा करता है। व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की शान्ति के लिये यह आवश्यक है कि मन सात्विक भावनाओ से अनुप्राणित रहे। आज ससार मे अशाति और कलह का जो वातावरण व्याप्त है, उसका एक मुख्य कारण सात्विक भावनाओ की कमी है। मासाहारी व्यक्ति अथवा समाज मे सात्विक भावनाओ का प्राय लोप हो जाता है। ऐसे व्यक्तियो के कार्य-कलाप, आचार-विचार और भावनाये तामसी-वृत्तियो से रक्त-रजित रहती हैं। ऐसे व्यक्तियो से न्याय, सत्य अथवा सहृदयता की अपेक्षा करना निर्मूल है। इसी कारण अनेक प्रतिष्ठित न्यायाधीश कसाई की गवाही भी नही लेते है। उनकी दृष्टि मे कसाई इतना निर्दय और क्रूर हो जाता है कि वह मनुष्यता की श्रेणी से गिरकर हिंस्र-पशु की श्रेणी मे आ जाता है। ऐसे हृदयहीन और विवेकहीन व्यक्ति की गवाही का क्या मूल्य है? जब आदमी किसी को जीवन नही दे सकता तो उसे दूसरे जीव के प्राण लेने का क्या अधिकार है?

शरीरशास्त्र की दृष्टि

मासाहार के पक्ष मे कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि इसमे शाकाहार की अपेक्षा पोषक तत्व अधिक होते हैं। यह अत्यन्त ही भ्रमात्मक धारणा है। अब तो पाश्चात्य वैज्ञानिक एव चिकित्सक भी यह मानने लगे हैं कि शाकाहार ही मनुष्य का स्वाभाविक और सतुलित आहार है और इसी मे मनुष्य के सम्पूर्ण शारीरिक एव बौद्धिक विकास के लिये आवश्यक पोषक तत्व उचित और सतुलित मात्रा मे पाये जाते है। राल्फ वाल्डो ट्राइन का कहना है कि "शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्तियो का सम्पूर्ण विकास केवल उसी व्यक्ति का हो सकता है, जो मास और रक्त से निर्मित वस्तुओ का सेवन न

करे।"[1] डा० एच० कैलौग के अनुसार "माम अथवा उससे निर्मित किसी भी आहार मे ऐसे कोई भी पोपक तत्व नही पाये जाते जो शाकाहारी भोजन अथवा वनस्पतियो मे विद्यमान न हो।"[2] अपितु सत्य तो यह है कि शाकाहारी वस्तुओ मे मासाहारी वस्तुओ की अपेक्षा कही अधिक पोषक तत्व पाये जाते हैं। यह कथन निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायगा—

वस्तु		पोषक अंशों की मात्रा
वादाम	—	९१ प्रतिशत
चना, मटर	—	८७ ,,
चावल	—	८७ ,,
गेहू	—	८६ ,,
जौ	—	८४ ,,
घी	—	८७ ,,
दूध	—	६० ,,
मास	—	२८ ,,
मछली	—	१३ ,,

इस वैज्ञानिक विश्लेपण के अनुसार चने, मटर, गेहू, चावल, घी, दूध आदि मे मास अथवा मछली से कई गुने शरीर पोपक शक्ति के अश पाये जाते हैं। अत साधारण तौर पर शाकाहारी व्यक्ति मासाहारी व्यक्ति से अधिक वलवान् होता है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी मास निपिद्धि वस्तु है। प्रायः मासाहार से कैंसर, क्षय, पाइरिया, रक्तचाप, गठिया, लकवा, मृगी, अनिद्रा, उन्माद आदि भयकर रोग हो जाते हैं। शारीरिक शक्ति तथा मानसिक-प्रतिभा पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पडता है। वृद्धावस्था मे मासाहारी व्यक्ति विशेषरूप से एकदम शिथिल हो जाता है और अनेकानेक रोगो से ग्रसित हो जाता है। मासाहारी व्यक्ति का वृद्धावस्थाकाल अत्यन्त कष्टदायक होता है। अत मासभक्षण का सर्वदा त्याग कर देने मे ही मनुष्य का कल्याण है।

---

1 "The highest mental, physical and spiritual excellence will come to a person only when, among other things, he refrains from consuming flesh and blood" (*Ralph Waldo Trine*)

2. "There is nothing necessary or desirable for human nutrition to be found in meat or flesh foods which is not found in and derived from vegetable products." (*Dr. H Kellog*)

आर्थिक दृष्टि मे भी मासाहार का त्याग अत्यन्त आवश्यक है। आज ससार के सामने भोजन की समस्या गभीररूप धारण करती जा रही है। इस सम्बन्ध मे भी कुछ लोगो का यह मत है कि मासाहार के प्रचलन द्वारा खाद्य समस्या का हल निकाला जा सकता है। यह धारणा अत्यन्त भ्रामक है। सत्य तो यह है कि मासाहार के प्रचलन से खाद्यसमस्या और जटिल होती जा रही है। विश्वशान्ति परिषद् (World Pacifists' Conference) मे भाषण देते हुए एक बार डा० डोनाल्ड ग्रूम ने कहा था, कि "मासाहारी लोगो की अपेक्षा शाकाहारी लोगो को अपनी खाद्यपूर्ति के लिये कम भूमि की आवश्यकता होती है।" आज कृषि योग्य हजारो एकड भूमि मैदानो और चारागाहो के रूप मे भेड, बकरियो, सूअरो, भैसो आदि के चरने के लिये छोड़ दी जाती है, जिनमे चरकर ये पशु मोटे हो सके, और तत्पश्चात् काटकर खाए जा सके। इस प्रकार मास प्राप्त करने के लिये छोडी गई भूमि यदि खेती के प्रयोग मे लाई जाय तो उससे कई गुनी खाद्य-सामग्री प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध मे एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री पीटर फ्रीमैन कहते है, "एक एकड भूमि से जो भेडो और अन्य जानवरो के लिये चारागाह के रूप मे प्रयोग की जाती है, लगभग १००० पौंड गोश्त प्रतिवर्ष प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु उसी भूमि से ५००० पौंड अन्न अथवा २०,००० पौंड आलू आदि सब्जिया प्राप्त की जा सकती हैं। आज जबकि विश्व की जनसख्या तेजी से वढ रही है, और जो कि इस शताब्दी के अन्त तक ३,००,००,००,००० तक पहुच जायगी, यह अत्यन्त आवश्यक है कि भूमि का प्रयोग अधिक से अधिक खाद्यसामग्री प्राप्त करने के लिये किया जाय।[२]"

---

1 "A vegetarian population needs a smaller area of land for its support than one dependent on meat" (*Dr Donald Groom)*

2. "An acre of land used for the grazing of cattle or sheep can produce about 1000 pounds of animal food per annum, but the same acre can produce an average of 5000 pounds of cereals, or as much as 20,(00 pounds of vegetables such as potatoes and probably some fruits in addition. With the world's population growing at such a pace that it will reach 300 millions by the end of the century, the urgent necessity of using all land to the best possible advantage can readily be seen." (*Mr Peter Freeman*)

इस प्रश्न का आर्थिक पहलू एक और भी है। गाय, बकरी आदि दुग्ध उत्पादक पशुओ का वध आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक है। उदाहरण के लिए एक गाय के वश को लीजिये। अर्थशास्त्रियो ने हिसाब लगाया है कि दूध, दही, घी बैल, गोबर आदि को जोडकर एक गाय की पूरी पीढी से चार लाख, बहत्तर हजार छह सौ मनुष्य लाभान्वित होते है। इसी प्रकार जीव-विज्ञान-विशारदो के अनुसार प्रत्येक गाय के दूध का मध्यमान ११ सेर आता है, और उसके दूध देने के समय का औसत १२ महीने होता है। अत प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २४६६० व्यक्ति एक बार तृप्त हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गाय कई अन्य गायो और बैलो को भी पैदा करती है। और इस प्रकार उसका वश चलता रहता है। यदि उस गाय का मास-भक्षण के लिये वध कर दिया जाय तो उससे कितनी हानि होगी, इसका अनुमान उपरोक्त सख्याओ से भलीभाति हो सकता है। अतएव इन उपकारी पशुओ को जो लोग मास-भक्षण के लिये मारते है, वे मानव-समाज के शत्रु हैं।

अत विश्वशान्ति सस्थान के एक गण्यमान सदस्य श्री रिचार्ड बी० ग्रैग कहते है, "मैं जैन सम्प्रदाय के इस सिद्धान्त से पूर्णत सहमत हू कि विश्वशाति के लिये शाकाहार तथा अहिंसा अत्यन्त आवश्यक है। आज कृपियोग्य भूमि पर निर्भर रहनेवाली जनसख्या का दबाव बढता जा रहा है। अत ससार की खाद्यसमस्या का हल तभी निकाला जा सकता है, जब लोग मास-भक्षण का त्याग कर दे। अतएव जो लोग मास भक्षण करते हैं, वे दूसरे लोगो को भूखे रखने के लिये जिम्मेदार हैं।"[3] अस्तु धार्मिक, नैतिक भावात्मक, मानवीय, आर्थिक आदि प्रत्येक दृष्टिकोण से मास भक्षण एक अत्यन्त भयावह, घृणित एव निन्दनीय कृत्य है।

[—१८, रामनगर कालोनी, आगरा]

---

1. "I agree with the Jaina belief that vegetarianism is now a real element in Ahimsa and a factor in the promotion of world peace There are now in the world too many people to be supported by the available acres of tillable land Only if people stop eating meat can everyone be fed So people who eat meat are causing others to starve" (*Mr Richard B Gregg*)

मूल प्रश्न यह नहीं कि हम क्या खाते हैं ? हम वही खाते हैं, जिसके कि हम अभ्यस्त हैं। शाकाहार का अभ्यस्त होना स्वस्थ व प्रसन्न रहने के लिए अनिवार्य है।

प्रोटीन विषयक सत्य

—डा० जीन नुस्तबाम

[फ्रास के लगनशील शाकाहारी]

क्या आपने ध्यान दिया है कि पाश्चात्य देशो मे मासाहार के बारे मे कितना प्रचार किया जाता है। वे लोगो को यह विश्वास दिलाने मे लाखो डालर खर्च करते हैं कि मासाहार पौष्टिक भोजन है। यह उनका मुख्य तर्क होता है और मुझे कहना चाहिए कि यह खराब बात है।

वे कहते हैं कि मास का प्रोटीन (रासायनिक सत्व) वनस्पति के प्रोटीन से अधिक श्रेष्ठ होता है। यह खोज उन्होने किस प्रकार की, उन्होने आज तक किसी को नही बतलाया। फिर भी वे प्रमाणित कर रहे हैं कि मास का प्रोटीन वनस्पति के प्रोटीन की तुलना मे श्रेष्ठ है। मुझे कहना चाहिए कि यह मात्र एक धारणा है और अधिक कुछ नहीं। जब हम विषय का अध्ययन करेंगे, आप देखेंगे कि प्रोटीन ऐसा पदार्थ है, जिसमे २३ तत्व रहते हैं। इनमे से दस तत्व शरीर के लिए विशेष उपयोगी होते हैं। यदि हम इनमे से किसी एक को भी छोड दें तो हमारा शरीर स्वस्थ नही रह सकता। महत्वपूर्ण बात यह है कि हमे इन दसो तत्वो को प्राप्त करना चाहिए। ये दसो मुख्य तत्व मास-दूध और सोयाबीन कही जानेवाली वनस्पति मे रहते हैं। यही एकमात्र ऐसी वनस्पति है जिसमे ये दसो तत्व रहते हैं। ये दस तत्व लगभग हर वनस्पति मे होते है परन्तु सभी एक साथ अन्य किसी एक मे नही। शाकाहारियो के लिए यह आवश्यक है कि वे हमेशा एक ही प्रकार का भोजन न लेकर नाना प्रकार से बदला हुआ भोजन खाएँ।

जब आप वनस्पति (शाक-भाजी) बदलेंगे, आप दसो तत्व प्राप्त कर लेंगे। जब हम प्रोटीन का विश्लेषण करते हैं और देखते हैं कि यह मनुष्य अथवा पशु द्वारा किस तरह उपयोग किया जाता है, आप देखेंगे कि ये २३ तत्व

पाचन-क्रिया मे अलग हो जाते हैं, वे फिर एकीकृत हो जाते है। जब हम इन २३ तत्वो का अध्ययन करते है हमे ज्ञात होता है कि किसी भी रसायन-शास्त्री के लिए सारी चीज का एक विश्लेपण करना और कह देना कि ये तत्व मास या वनस्पति मे अधिक होते हैं सम्भव नही होता। इसलिए यह कहना कि पशुमूल के मास मे पाया जानेवाला प्रोटीन श्रेष्ठ होता है, पूर्णरूप से असत्य है।

जब हम इस समस्या को दूसरी तरह से देखते हैं, हमे एक अलग ही बात ज्ञात होगी। पशु के प्रोटीन मे और वनस्पति के प्रोटीन मे अन्तर होता है। अन्तर पृथकता की प्रक्रिया मे निहित रहता है। पशु के प्रोटीन मे जहर घुले रहते है। मगर वनस्पति के प्रोटीन के विपय मे ऐसा कुछ नही होता। वनस्पति मे विपहीन प्रोटीन होते है। शरीर-धर्म के विशेपज्ञो द्वारा अनेक प्रयोग किए गये है। एक बात ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया है। जब शल्य चिकित्सा होती है, विशिष्ट स्थितियो मे रक्त को सीधे हृदय तक जाने दिया जाता था और कुछ दूसरे प्रकार की स्थितियो मे लीवर के जरिए। जब शल्य चिकित्सा पूरी हो जाती है, लीवर जहर पोपित नही कर पाता। शल्य चिकित्सा इस प्रकार की जाती है कि जब तक आप विपहीन भोजन देते हैं वह जीवन को पूर्ववत चलाए रखने मे सक्षम होता है। यदि आप उसे जहरीला भोजन दें तो ऐसा नही कहा जा सकता। जब तक आप उसे शाकाहारी भोजन देते हैं, वह पूर्ण स्वस्थ जीवन प्राप्त कर सकता है मगर ज्योही आप उसे पशु-मास देने लगते हैं वह वीमार होने लगता है। परिवर्तित आहार की पहली पहचान होती है कि वह उत्तेजक होता है। यदि आप उसे मास देते रहते है, वह अधिक उत्तेजित होता रहता है। अगर आप मास देना बन्द कर दे और वनस्पति-भोजन देना शुरू कर दे, तब वह पुन जीवन प्राप्त कर लेता है। उसे आप नियमित मास दे तब वह अधिक उत्तेजक होता है और अन्तिम रूप से इतना दुर्वल हो जाता है कि उसे दौरे पडने लगते हैं और यह एक सकट होगा। अगर फिर भी आप मास देते रहते हैं तब उसमे बुरी तरह कम्पन होगा और तब निश्चित रूप से प्राणी मर जाता है।

मैं ऐसे परिवार मे जन्म लेने पर कृतज्ञ हू, जहा माता और पिता शादी से पूर्व ही शाकाहारी थे। मूल्यवान पैतृक दाय जो अपने बच्चो को दिया जा सकता है। वह स्वास्थ्य ही है जो उन्हे प्रसन्न रखेगा। ☆

---

० (बहुभोजी एवं बहुभोगी बहुरोगी होता है।

—डायोजिनिस

इस प्रतारणा से बचाइये

—डा० हर्बर्ट स्टिपटर

●

अनेक महत्वपूर्ण सफलताओ और विशिष्ट विकास के होते हुए भी शाकाहारी आन्दोलन अभी तक सफल नही हुआ है। शाकाहारी सिद्धान्त के विचारो को विकसित होना जो सर्वाधिक विभिन्न क्षेत्रो मे इसे सम्पूर्णता से अनुभव कराए, यह व्यापकता जिससे प्रभावित होना चाहिए, यूरोप मे अभी तक प्राप्त नही हुई है। स्पष्ट और शातदृष्टि ही यह उद्घाटित करने मे पर्याप्त होगी कि शोर के ससार मे जो कि दिशाहीन होकर टूट चुका है और जो कि सुख की प्राप्ति और हिंसा के प्रति कभी इतना लापरवाह नही था जितना आज है तब भी शाकाहारी विचार और शाकाहारी गतिविधि ही अल्पसख्यक समुदाय तक सीमित रूप मे ही चलती है। इसलिए जहा आन्दोलन का आधार है उसे निश्चित करने से कई कष्टकारी प्रभाव सन्दर्भ बाहर नही हो सकते, जिनसे प्रकट होता है कि अपने सम्पूर्ण रूपो मे शाकाहारी सिद्धान्त ज्ञान के अभाव, अविश्वास और बुरी आदत द्वारा किस तरह परेशान किया जाता है और आक्रामक शत्रुओ द्वारा आतकित किया जाता है, जो अपमानित करने के छोटे-छोटे उपायो से सिकुड कर उठ आते है और यहा तक कि उस विचार को दबाते और मिटाते रहते हैं, जो प्रत्येक इकाई के जीवन के अन्तरग पक्ष को ही प्रभावित नही करता वरन् समाज के विभिन्न हितो पर सर्वाधिक प्रभाव स्थापित करने का उद्योग भी करता है। इस तरह बहुत ही धुंधला चित्र सामने आता है जिसमे सिर्फ वे अनेक अपवाद, जो नियम सिद्ध करते हैं,प्रकाश की किरण लाते है।

फिर भी यह विचार उत्साहवर्धक है। "यदि मनुष्य को जीवित रहना है तो समय आने पर शाकाहारी सिद्धान्त एक पूर्ण विकल्प प्रस्तुत करेगा।"

इस प्रकार की भाषा उन लोगो द्वारा भी सुनी जानी चाहिए जो वास्तव मे बहुत ही बहरे हैं। उन आवाजो को जो प्रत्येक हाथ पर आशा उद्घाटित करती है और जो आशा को सजग करती है कि शाकाहारी सिद्धान्त उस महान् भविष्य की ओर बढ रहा है, जो मानवीय विचारो और उद्देश्यो मे सर्वाधिक महत्व का है। यह पूर्णरूपेण अधिकृत है।
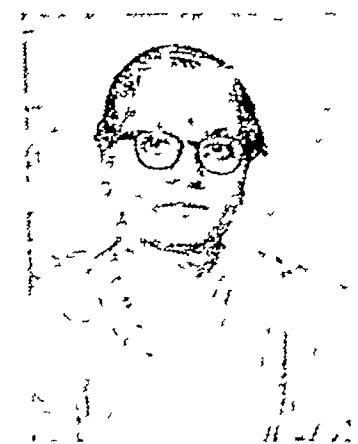
[हेग मे सम्पन्न इक्कीसवीं शाकाहारी काग्रेस मे डा० हर्बर्ट स्टिपटर के के अभिभाषण का सार]

●

आयु सत्व बलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्या स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहारा सात्विकप्रिया ।।

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढानेवाले एवं रसयुक्त स्निग्ध और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय, ऐसे आहार सात्विक पुरुप को प्रिय होते हैं।

गीता जहा हमे हमारे कर्तव्य का बोध कराती है, वहा उसमे यह भी बताया है कि कर्तव्यपूर्ति के लिए हमे हमारे शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए। शरीर सक्षम व स्वस्थ रहे इसके लिए हमे किस प्रकार का भोजन करना चाहिए ? गीता के १७ वें अध्याय के ८ वें श्लोक को हम यदि कसौटी मानकर चलें तो हमेशा स्वस्थ, सशक्त तथा सक्षम रह सकते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा मे केवल रोगो को ही दूर नहीं किया जाता, शरीर को सवारा भी जाता है और इसके लिए शाकाहार ही श्रेष्ठतम मार्ग है।

शाकाहारी भोजन और प्राकृतिक चिकित्सा

—डा० सरयूदेवी लोया
[सचालिका आरोग्य कुटीर, हैदराबाद अध्यक्ष आ० प्र० मारवाडी महिला सम्मेलन, कोपाध्यक्ष महिला नव जीवन मडल, हैदराबाद]

आज के भ्रातिपूर्ण वातावरण, जिसमे मासाहार शक्तिवर्धक आहार माना जाता है। इस कसौटी पर क्षणभर भी नही टिक सकता। मासाहार पर डाक्टरो की ही जबानी आकडे हैं कि—एक औस मास पर ३०,०००,००० कीटाणु होते हैं। मास काटने के बाद कीटाणु बडी तीव्र गति से बढते हैं।

बैल का मास अधिक गर्मी मे पिघलता है और एक औस मे १५,०००,००० से १०,००,००,००,० तक कीटाणु होते हैं। हर प्रकार के मास रोगकारक होते हैं, शरीर तथा मल-मूत्र मे दुर्गन्ध पैदा करनेवाले होते हैं। मास के कीटाणु निमोनिया, टाइफाइड आदि की जड मजबूत करते हैं। बडी आत मे पहुच कर कोलाइटिस, गुर्दे तथा मूत्राशय प्रदाह, पित्ताशय मे पथरी तथा आमाशय मे व्रण उत्पन्न करते हैं।

मछलियाँ गन्दगी, नेटा, मुर्दा आदि खाती हैं। उनका शरीर इसी से बनता है। जो मनुष्य यह खाता है, उसके शरीर मे भी इसी प्रकार के विप उत्पन्न होते हैं। डॉ० रोगर तथा फ्रास के चिकित्सक इसे सबसे ज्यादा बुरा बताते हैं।

मास मे कैलशियम तथा लोहा नही होता, अत यह पूर्ण आहार नही है।

अण्डे का प्रयोग भो हानिकारक होता है। अण्डे के प्रयोग से आमाशय का रसस्राव नही होता। पेप्सिन की क्रिया इस पर जल्दी नही होती। आन्त्र व क्लोम के रस इसके अनुकूल नही होता। एक अण्डे मे कोटेस्ट्रोल की मात्रा लगभग ४ ग्रेन होती है। यह एक भयानक जहर होता है। अण्डे खानेवाले के खून मे पहुँचने से अनेक बीमारिया होती है, जिसकी इन डाक्टरो ने खोज की है और परिणाम सामने दिये है। डॉ० रीवर्टग्रास, डॉ० जे० इ० आर० डॉ० जे० एमन विल्किज, डॉ० आर० जे० विलियम आदि ने परीक्षण फल सामने रखे हैं। अण्डे की सफेदी के प्रयोग से लकवा, चमडी की सूजन और एक्जिमा होता है। अण्डे के पीलेपन मे रासायनिक प्रयोग के फैसले के अनुसार उक्त जहर यकृत मे जमा होकर रोगो मे जख्म व कडापन पैदा करता है। अत यह त्याज्य है। अण्डे मे जहर के कारण दिल की बीमारी, ब्लडप्रेशर, गुर्दे की बीमारी पित्ताश्मरी आदि पैदा हो जाते हैं। फलो व सब्जियो मे कोटेस्ट्रोल बिल्कुल नही होता है। डा० मूलर ने २६५ व्यक्तियो पर मास का प्रयोग किया जिसका परिणाम इस प्रकार है—मास खाने के १८ घण्टे बाद कमजोरी और थकान मालूम हुई। मिचली, कै, पतली दस्तें, खुश्की और गले मे जलन हुई। २-३ दिन के बाद चक्कर आने लगे और पैरो का पक्षाघात हुआ।

मोटेरूप से इस प्रकार की हानिया होती है –

(१) यूरिक एसिड तथा अन्य प्रकार के विकार पैदा होकर शरीर मे विभिन्न प्रकार के उपद्रव होते हैं।

(२) पाचन प्रणाली मे सडाध होकर जब रक्त मे मिलता है तब रक्त दूपित होकर रोग का कारण होता है।

(३) इससे बना हुआ रक्त, मज्जा एव वीर्य स्नायु-सस्थान पर उत्तेजक तथा ब्रह्मचर्य नाशक प्रभाव डालता है।

(४) इन खाद्यो से विजातीय द्रव्य उत्तरोत्तर बढने से रोग कीटाणु भी बढते हैं।

(५) रोग से बचने व लडने की शक्ति क्षीण होती है।

भ्रम वश लोग मासाहार को शक्तिवर्द्धक मानते हैं, किन्तु हाथी, घोडा, गेंडा आदि अनेक जानवर शक्तिशाली होते हुए भी शाकाहारी हैं।

मास और अण्डे को स्वाभाविक रूप मे देखने से घृणा का भाव ही होता है, अत मासाहार अखाद्य है। इसलिए मासाहार मानव नही कर सकता और नही करना चाहिए। मानव शरीर की बनावट देखते हुए मानव फलाहारी या शाकाहारी ही है, यह मानना ही पडता है।

विशेषज्ञो ने मिट्टी के ढेलो को लिया उसमे के तत्त्वो को खोजा। परीक्षण परिणाम रूप २४ चौबीस मूल तत्त्व मिले, जिनका नाम इस प्रकार है —

(१) ओपजन (२) कार्बन (३) उद्जन (४) नोषजन (५) खटिकम् (६) स्फुर (७) लौहम् (८) नैलिन (९) शमागजीन (१०) शैलम (११) पाशुजन (१२) सैंधम (१३) प्लवित (१४) गन्धक (१५) मेगनिजम (१६) हरिन् (१७) ताम्रम् (१८) जस्ता (१९) अल्युमूनियम (२०) निकेल (२१) सखिया (२२) ब्रोमाइड (२३) लिथियम (२४) कोवाल्ट। यह चौबीस तत्व सामने आए हैं। मिट्टी और खाद्य-पदार्थों के बाद विशेषज्ञो ने एक जीवित पार्थिव शरीर का परीक्षण किया तो बिलकुल वही मूल तत्व उसमे भी पाये गये। जो मिट्टी और उसमे उत्पन्न होनेवाले खाद्य पदार्थों मे पाए गए थे।

हम आसानी से समझ सकते हैं कि पृथ्वी अर्थात् मिट्टी और उसमे पैदा होनेवाले खाद्यपदार्थ और मानव शरीर तीनो ही एक प्रकार के रासायनिक तत्वो से बने हुए हैं। अब यह २४ तत्व मुख्य ७ सात तत्वो मे समाए हुए हैं। इन सात तत्वो को हम इन नामो से जानते हैं

(१) प्रत्यामिन (२) काव्रोज (३) वसा (४) स्फोक (५) जल (६) खनिज लवण (७) खाद्योज।

यह सातो तत्व हर खाद्य मे रहते हैं, किन्तु किसी खाद्य मे कोई तत्व अधिक रहता है किसी दूसरे खाद्य मे अन्य तत्व अधिक रहता है। हमे हमारे भोजन मे सन्तुलित मात्राएँ बनाई रखनी चाहिए। मानव शरीर के लिए पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले फलो, तरकारियो और अन्न के रूप मे जो खाद्य मिलता है,

वह शरीर के लिए वास्तव मे सजीव होगा और शरीर मे एक रूप होकर उसकी मात्राओ का सन्तुलन वनाते हुए शरीर को स्वस्थ रखेगा।

प्राकृतिक चिकित्सा मे चिकित्सक की चतुराई ऐसे तत्वो का सयोग वताया जाता है, जिससे रोगी को रोगमुक्त होने मे सहायता दे। प्राकृतिक चिकित्सा मे रोगियो को वही आहार दिए जाते हैं जिन तत्वो से शरीर वना है और प्राकृतिक चिकित्सा मे हमेशा शाकाहारी पथ्य ही रोग को दूर करती है।

सन्तुलित आहार द्वारा शरीर व स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पडता है ? यह आपको एक चमत्कारी घटना वतावेगी—

प्रथम महायुद्ध के समय १९०७ मे जव जर्मनो ने डेनमार्क की कडी नाके वन्दी कर रखी थी और वहा के लोग भूख से मरने लगे थे, उस समय डेनमार्क के प्रसिद्ध आहार शास्त्री डा० मिकेल हिण्डहीड को जो कोपेनहेगेन मे भोजन सम्वन्धी खोज करनेवाली प्रयोगशाला के डाइरेक्टर थे, भोजन नियामक वनाया और एक कमेटी का निर्माण किया और भोजन की कठिन समस्या का सामना करने के लिए मार्ग खोजने को कहा। और उन्होने जो भोजन डेनमार्क वालो को दिया उससे लोग दुर्भिक्ष से तो वच ही गए और उस वर्ष के अन्त मे मृत्यु सख्या १२३६ से घटाकर ९८५ हो गई। डेनमार्क के पिछले अनेक वर्षो मे इतनी कम मृत्यु-दर कभी नही हुई थी। यह निर्देशित भोजन केवल शाकाहारी ही था।

शाकाहार और प्राकृतिक चिकित्सा एक सिक्के के दो पहलू हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा मे केवल रोगो को ही दूर नही किया जाता, अपितु शरीर को सवारा भी जाता है और इसके लिए शाकाहार से वढकर दूसरा कोई मार्ग है ही नही।

उत्तम मजवूत मकान के लिए जिस प्रकार वढिया और अच्छी सामग्री चाहिए, इसी प्रकार उत्तम स्वास्थ्य के लिए उत्तम भोजन ही चाहिए। उत्तम का अर्थ वढिया व ताजी सामग्री हो, जैसे शाक ले तो वह ताजा हो, वासी नही। अन्न सशक्त हो जो ताकत दे सके। महगा या सस्ता नही सोचना है उसकी उपयोगिता का महत्व है।

शाकाहार प्राकृतिक चिकित्सा के हर पहलू को सवारता व सभालता है। हमे केवल सौ वर्ष जीना ही नही, अपितु सव कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियो को सक्षम रख कर सेवामे कार्यरत रहना है।

[१४-२।३२२।२ ज्ञानवाग कालोनी, हैदरावाद १२]

मासाहार के लिये मनुष्य के पास कोई आधार नहीं है। मांसाहार एक अलाभकारी उपक्रम है। ऐसे निरा-धार उपक्रम के प्रति आखिर किसी का आग्रह क्यो ?

मांसाहार त्याग के विभिन्न आधार

—डा० ज्योतिप्रसाद जैन

[जैन-इतिहास पुरातत्व-साहित्य एवं सस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान्]

ससार मे जितने भी देहधारी प्राणी हैं, मनुष्य ही नही पशु-पक्षी, छोटे-मोटे जीव-जन्तु कीडे-मकोडे तक, सुख-शाति चाहते है, दुख से घबराते हैं, सभी जीना चाहते हैं और प्राण-रक्षा का, जीवन सरक्षण के लिए सदैव प्रयत्न-शील रहते हैं। इस प्रयत्न मे वे आहार, भय, मैथुन और परिग्रह नामक चार सहज-सत्ताओ से सतत प्रेरित रहते हैं। इनमे सर्वप्रथम एव प्रधान सज्ञा आहार है, जो भूख और प्यास की बाधाओ को दूर करने के लिए किया जाता है। प्राणी सब कुछ सहन कर सकता है, बडे से बडा कष्ट, अभाव, सकट और आपत्ति-विपत्ति का सामना कर सकता है, किन्तु 'भूखा और प्यासा रहकर जीवित नही रह सकता।' भूखा और प्यासा रहने की सीमाएँ और कालाव-धिया व्यक्ति-व्यक्ति और प्राणी-प्राणी के साथ अल्पाधिक हो सकती है और इन बाधाओ को शान्त करने के लिए ग्रहण की गई सामग्री की मात्रा, रूप और प्रकार भी भिन्न-भिन्न हो सकते है, परन्तु ऐसा कोई प्राणी नही जो भूखा-प्यासा रहकर जीवित रह सके। अतएव उपयुक्त भोजन और जल जीवन एव प्राणो के सरक्षण के लिए अनिवार्य है। जन-सामान्य की तो बात ही क्या ऐसे आरम्भ-परिग्रह एव गृहत्यागी तपस्वी साधु-सन्यासी भी जिनका एकमात्र उद्देश्य धर्मसाधन है, शरीर का सरक्षण करते ही हैं, क्योकि धर्मसाधन का मूलाधार भी तो शरीर ही है, और शरीर को सक्षम बनाए रखने के लिए उपयुक्त आहार का ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रश्न यह होता है कि मनुष्य की उस प्राकृतिक क्षुधा-तृषा की तुष्टि और उसके शरीर का आवश्यक सरक्षण-पोषण किस रूप मे हो—उसका खान-पान

क्या और कैसा हो ? उस सम्बन्ध मे प्राकृतिक-चिकित्सा, शास्त्रीय, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक, विविध दृष्टियो से विचार किया जा सकता है।

मनुष्य शरीर की सरचना, उसके मुँह, दातो हाथ की अँगुलियो एव नखो और पाचन-तन्त्र की बनावट के आधार पर प्रसिद्ध शरीर-रचना शास्त्री एव वैज्ञानिक मनुष्य को तृण-कुशाचारी पशुओ की भाति वनस्पत्याहारी अथवा शाकाहारी (फ्रगीवारेस) प्राणियो मे परिगणित करते हैं, मासाहारी (कार्नीकोरम) प्राणियो मे नही। किंग्सफोर्ड, पौशेट, वैश्न कुवियर, लिन्नयस, लारेन्स, लकास्टर प्रभृति अनेक पाश्चात्य विशेषज्ञो का मत है कि मात्र शाकाहार ही मनुष्य की प्रकृति और उसके शरीर-तत्र की भीतरी एव बाहरी सरचना के सर्वथा अनुकूल है। इसके विपरीत, मासाहार मनुष्य प्रकृति के प्रतिकूल है, उसके द्वारा कुछ अशो मे वह अपनी शारीरिक एव मानसिक शक्तियो के सरक्षण मे भले ही समर्थ हो जाये, किन्तु मासाहार उसके शरीर मन और आत्मा के स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद ही सिद्ध होता है। डॉ० अलेक्जेंडर हेग के अनुसार जबकि भेडिया, चीता, सिह आदि मासाहारी पशुओ का पाचनतत्र मासाहार को पचाकर विषाक्त द्रव्यो को शरीर से निष्कासित करने की क्षमता रखता है, मनुष्य का पाचनतत्र वैसा नही कर सकता, न वह उस प्रकार मास भोजन को उपयुक्त रस-रक्त आदि सप्त-धातुओ मे भली प्रकार परिवर्तित कर सकता है।

इसके अतिरिक्त मासाहार के फलस्वरूप मनुष्य अनेक असाध्य रोगो का शिकार हो जाता है। प्रथम तो भोज्य मास प्राप्ति के निमित्त बूचडखानो मे जिन पशुओ का वध किया जाता है, उनमे आधे से अधिक यक्ष्मा आदि अनेक रोगो से ग्रस्त होते हैं और उक्त मास मे उन रोगो के जीवाणु रहते हैं जो मनुष्य शरीर को भी उनसे ग्रस्त कर देते हैं। यह एक तथ्य है कि बूचडखानो मे यदि ऐसे रोगी पशुओ के वध पर रोक लगा दी जाय तो अधिकाश बूचडखाने बन्द ही करने पड जायें। कसाईयो की दूकान पर रखा हुआ मास भी बहुधा दूपित और विकृत हो जाता है और यह बात उसे देखकर जानी नही जा सकती। अनेक चिकित्सा-शास्त्रियो के मतानुसार गठिया, कैन्सर, पक्षाघात, राजयक्ष्मा, मृगी, रक्ताम्ल, कुष्ठ, इनफ्लुएजा आदि कितने ही भयकर रोगो का कारण मासाहार है—कम से कम शाकाहारियो की अपेक्षा मासाहारियो को वे शीघ्र ही पकडते हैं और अधिक सताते हैं। प्रत्युत इसके, फल-शाक आदि वनस्पत्याहार से ये रोग शीघ्र ही दूर हो सकते है।

बहुधा यह कहा जाता है कि शाकाहारियो की अपेक्षा मासाहारियो मे शारीरिक बल और साहस अधिक होता है, किन्तु जैसा कि प्रो० लारेन्स का

कहना है, शाकाहार के साथ शारीरिक दौर्बल्य एव कायरता का उतना ही कम सम्बन्ध है, जितना कि मासाहार के साथ शारीरिक बल और साहस का। वस्तुत शाकाहारी की अपेक्षा मासाहारी मे सहनशक्ति। वीर्य और साहस कहीं अधिक कम होता है। पशुजगत मे भी हाथी, दरियाई घोडा, घोडा, ऊट, वृषभ, महिष आदि शक्तिशाली एव दीर्घजीवी पशु शुद्ध शाकाहारी ही होते हैं।

आर्थिक दृष्टि से मासाहार की अपेक्षा शाकाहार अधिक सहज, सुलभ, सस्ता एव प्रचुर होता है, और वह रचनात्मक उत्पादन का परिणाम होता है। मनुष्य जाति का अधिकाश भाग कृषि उद्योग मे ही लगा है। प्रत्येक वर्ष विभिन्न ऋतुओ मे मा धरती विविध अन्न, फल, शाक, सब्जी आदि इतनी प्रचुर मात्रा मे प्रदान करती हैं और कहीं अधिक उत्पन्न करने की क्षमता रखती है कि मनुष्य की आवश्यकताओ की निर्बाध पूर्ति हो सकती है। इसके अतिरिक्त दुधारू पशुओ के सरक्षण स इतना अधिक दुग्ध एव दुग्ध से बने दही, छाछ, नवनीत, पनीर, घृत आदि पदार्थ उपलब्ध होते हैं या हो सकते हैं कि शुद्ध शाकाहार या फलाहार मे जिन प्रोटीन, वसा आदि अन्य पोषक तत्वो की कमी रहती है उनकी भी सहज पूर्ति हो जाये।

सामाजिक दृष्टि से देखें तो युद्ध, कलह, रक्तपात, एव भीषण अपराध शाकाहारियो की अपेक्षा मासाहारियो मे अधिक पाए जाते हैं। मासाहारी व्यक्ति शीघ्र ही उत्तेजित हो जाता है। जबकि शाकाहारी औसतन शान्ति प्रिय होता है। मासाहार के साथ मद्यपान प्राय अविनाभावी रूप से पाया जाता है, और मद्यमास के सेवन करनेवालो का विषयसेवन एव ऐयाशी की ओर अधिक झुकाव देखा जाता है। फलस्वरूप अनेक लैंगिक या यौन अपराधो एव रोगो की वृद्धि होती है। बहुधा मासाहार के लिए ही निरीह पशुओ का शिकार किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अदया एव क्रूरता की प्रवृत्ति को तो प्रोत्साहन मिलता ही है, अनेक पशु-पक्षी जातिया सर्वथा समाप्त होती जा रही है। अतएव सामाजिक सुख-शाति एव व्यवस्था की दृष्टि से भी मासाहार वर्जनीय हैं।

धार्मिक दृष्टि से, ससार का कोई भी सभ्य धर्म या धर्मोपदेष्टा ऐसा नहीं हुआ, जिसने प्राणियो का वध करके उनका मास खाने का खुला प्रचार किया हो, वरन् प्राय सबने ही जीव-दया का उपदेश दिया और मासाहार प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया। प्राचीन यूनान मे महान् दार्शनिक पाइथेगोरस तथा तत्कालीन स्टोइक सम्प्रदाय के अनुयायी शुद्ध शाकाहारी थे और मासाहार का सर्वथा निषेध करते थे। यही महावीर और बुद्ध का युग था। प्राय उसी काल मे ईरान के जरथुस्त और चीन के कनफ्यूसस एवं लाओत्से ने जीवदया का

प्रचार किया। ईसामसीह की पाचवी आज्ञा थी कि "किसी प्राणी की हत्या न करो"। ईसाईयो की जिनेसिस मे भी परमेश्वर की ओर से यह कहा गया है कि "कन्दमूल, बीज, फल, शाक आदि पदार्थ खाओ, वही तुम्हारे लिए मास का काम देंगे।" हजरत मुहम्मद ने भी जीवदया का उपदेश दिया। उनके पवित्र मक्कास्थित कावे के चारो ओर कई मील की परिधि मे किसी भी पशु-पक्षी की हत्या नही की जाती और हजकाल मे प्रत्येक हाजी मद्यमास का सर्वथा त्यागी रहता है। मुगल सम्राट अकबर ने स्वय तो मासाहार का त्याग कर ही दिया था, अपने दीने-इलाही मे भी मासाहार को हतोत्साहित किया। गुरु नानक के अनुयायी सिक्ख प्राय मासभोजी है, किन्तु गुरु महाराज ने 'गुरु ग्रन्थ साहिब' मे स्थान-स्थान पर उसका निषेध किया और एक स्थल पर तो लिखा है कि "जो व्यक्ति मास, मछली और शराब का सेवन करते है, उनके धर्म, कर्म, जप, तप, सब कुछ नष्ट हो जाते हैं।"

प्राचीन वैदिकधर्म मे याज्ञिक हिंसा चलती थी और वैदिक आर्य उन्मुक्त मासभोजी थे, ऐसा कहा जाता है। किन्तु, उसी परम्परा मे आगे चलकर आत्मविद्यावादी उपनिपदो, व्यासकृत महाभारत और मनुस्मृति मे मासाहार की खुलकर निन्दा एव निषेध किया गया है। आगे चलकर श्री शैव, वैष्णव, लिंगायत इत्यादि अनेक सम्प्रदायो मे भी शुद्ध शाकाहार का प्रचलन हुआ। वर्तमान हिन्दू समुदाय मे जो व्यक्ति धर्म, समाज, जाति या प्रथा की आड लेकर मद्यमास का सेवन करते भी हैं वे भी प्राय गुपचुप ही करते है खुले आम उसका अनुमोदन करने मे वे भी बहुधा सकोच करते हैं। महात्मा बुद्ध तो दयामूर्ति थे, उन्होने तो अहिंसा और शाकाहार का ही उपदेश दिया था। किन्तु, उनके अनुयायियो ने उनके कतिपय सदिग्ध कथनो की अपने मनोनुकूल व्याख्या करके मासाहार का प्रचलन कर लिया, यहा तक कि उस महापुरुप पर भी मासाहार का मिथ्या आरोप लगा डाला।

जैनधर्म एक ऐसा धर्म है जो अपने इतिहास के प्रारम्भ से ही अहिंसा प्रधान है। उसका सम्पूर्ण आचार-विचार अहिसा की धुरी पर ही घूमता है। जैनी होने की पहली शर्त यह है कि मास और मद्य का सर्वथा त्यागी हो। इस विपय मे किसी अपवाद की इस परम्परा मे कोई गु जाइश ही नही है। धर्म का लक्षण ही वस्तु स्वभाव है, अर्थात् आत्मा का स्वभाव ही उसका धर्म है और वह है अहिंसा—सर्वप्रकार की हिंसा से विरति। उस अहिंसक आत्म-स्वभाव के साधन का मार्ग सयम है, जो प्राणिसयम और इन्द्रियसयम के रूप मे द्विविध है। अपनी मानसिक, वाचनिक एव कायिक सभी प्रवृत्तियो पर, इन्द्रियो

पर और इच्छाओ पर नियत्रण रखना तथा सयमित-नियमित जीवन व्यतीत करना सयम है। और प्रत्येक प्राणी के प्रति इस प्रकार यत्नाचारपूर्वक वर्तना कि उसे किसी प्रकार का मानसिक अथवा शारीरिक कष्ट या पीडा न हो, प्राणीसयम है। अतएव सर्वप्रकार का अभक्ष्य भक्षण वर्जित है। अभक्ष्यो मे मे सभी अनुपसेव्य (मल, मूत्र, मिट्टी आदि), अनिष्ट (विष एव विपाक्त तथा अपनी प्रकृति के प्रतिकूल पदार्थ) त्रसघात (त्रसजीवो की हत्या से प्राप्त रक्त-मास मछली, अण्डे आदि) तथा बहुघात (ऐसी वनस्पति भी जिनमे बहुत से सूक्ष्म जीवो का घात हो) का सेवन निषिद्ध है। सामान्यतया तामसिक एव राजसिक पदार्थो का भी निषेध है। शुद्ध, स्वच्छ, स्वास्थ्यकर सात्विक अन्न, फल, शाक, मेवे, दुग्ध एव शुद्ध निर्मल जल के सेवन का ही विधान है। ऐसे उत्तम भोजन-पान से ही शरीर का स्वास्थ्य, चित्त की प्रसन्नता, बुद्धि की निर्मलता एव आत्मिक जागरूकता सधते हैं। "**जीवो जीवस्य भोजनम्**" की दलील देनेवालो को जैन तीर्थंकरो का उत्तर है "**परस्परोपग्रहजीवानाम्** ।"

नैतिकता और मानवीयता की दृष्टि से भी जीवदया एव मूक पशु-पक्षियो के प्रति करुणाभाव को सभी चिन्तक एव विचारक स्तुत्य घोषित करते हैं। जैनो का तो यह धर्म ही है, जो उनके विचार एव आचार मे प्रत्यक्ष होता है—यदि कही ऐसा नही होता तो वह जैन कहलाने का अधिकारी नही है। जैनो के अतिरिक्त, भारतवर्ष मे तथा यूरोप, अमरीका आदि अनेक पश्चिमी देशो मे भी कई सशक्त सगठन जीवदया, पशुवर्ग व रुग्णो के प्रति करुणापूर्ण वर्ताव और शाकाहार का विधिवत्-व्यवस्थित प्रचार करते हैं। १९५७ मे भारत मे एक विश्व-शाकाहार सम्मेलन हुआ था जिसके अधिवेशन बम्बई, दिल्ली, वाराणसी, पटना आदि कई नगरो मे हुए थे। जनवरी १९६४ मे शाकाहार एव जीवदया सम्बन्धी भारतीय सगठनो ने मिलकर बम्बई मे प्रथम राष्ट्रीय शाकाहार सम्मेलन सयोजित किया था। इसमे सन्देह नही है कि दिन-प्रतिदिन शाकाहार के पक्ष मे विश्व-मानव की रुचि और मत वृद्धिगत होता जा रहा है। एक आधुनिक जर्मन महिला ने १९३३ मे स्व० चम्पतरायजी बैरिस्टर की प्रेरणा से मासाहार का त्याग कर दिया था। उसके लगभग बीस वर्ष पश्चात् उसने अपने अनुभव के आधार पर लिखा था कि "यदि कोई व्यक्ति केवल एक वर्ष के लिए ही सर्व प्रकार के मास, मछली, अण्डे आदि के भक्षण का त्याग कर दे और उसके फलस्वरूप अपने स्वभाव, भावनाओ, स्वास्थ्य, बौद्धिक तीक्ष्णता तथा शुद्धि-स्वच्छता के सामान्य भाव मे कितना अन्तर पड गया है, यह देखें तो फिर कभी वह मासाहार का नाम भी न लेगा।

['ज्योति निकुज' चारबाग लखनऊ—१] ●

धार्मिक अथवा मानववादी दृष्टि से ही नहीं वरन् पोषण और शरीररचना की दृष्टि से भी मांस पथ्य की तुलना में शाकाहारी पथ्य ही सर्वोत्तम है। दूध, दाल, धान का सन्तुलित उपयोग सभी प्रकार के आवश्यक क्षार-अम्ल दे देता है।

बीमारी और स्वास्थ्य में पथ्य !

—डा० एम० एम० भामगरा

[एम. एस एफ, एम. एस एस सी. एच एम ई फैलो इंडियन इंस्टीट्यूट आफ नेचुरल थेराप्यूटिक्स]

●

प्राकृत-उपचार ही उपचार विधियो की एकमात्र ऐसी पद्धति है जो भोजन को ही सर्वोत्तम औषधि मानती है। प्राकृतिक उपचार विधि का प्रथम सिद्धान्त प्राणभूतशक्ति ही उपचारी शक्ति है। यही मुख्य शक्ति हमारे शरीर के सारे तन्त्र और कार्यों की देखभाल करती है जिस पर स्वतन्त्रता से हमारा कोई अनुशासन नही है। यही वह शक्ति है जो शरीर रचना सम्बन्धी और चयापचयशील सम्बन्धी कार्यों को याचना से मुक्त करती है, सुधारती है और सुव्यवस्थित रखती है। इस प्रकार जब कोई बीमार हो तब इस शक्ति को सुरक्षित अथवा मितव्ययिता से रखने की आवश्यकता होती है। इस प्राणभूत शक्ति की सुरक्षा इन तरीको से प्राप्त होती है—

(१) अलगाव को प्रोत्साहित करने का सर्वोत्तम उपाय ही कमो-वेस रूप मे समीकरण को पूरी तरह स्थगित करना ही है। इस तरह भोजन का परहेज कर हम इस शक्ति को उसके उपचारात्मक कार्य की ओर ध्यान देने का अवसर देते हैं और पाचकीय, सोखनेवाले और समीकरण के कार्यों मे इसके

अपव्यय को रोकते है जिनमे यह अधिकाश समय व्यस्त रहती है। आंतरिक अथवा शरीर-रचना सम्बन्धी आराम, वीमारियो और अस्वस्थ स्थितियो मे वाहरी आराम की अपेक्षा अधिक महत्व का माना जाता है। इस तरह उपवास अथवा सीमित भोजन से हम स्वास्थ्य और पीडा की मुक्ति को ही प्रोत्साहित करते हैं जो कि प्रकृति का विशिष्ट अवाधित अधिकार है।

(२) मुख्य अर्थ-प्रवन्ध को प्रभावित करनेवाला विन्दु दवाओ से परहेज करना है जिनका नशीला अथवा उपयोग के वाद का प्रभाव पक्ष भी है। सभी सामान्य चिकित्सा सम्बन्धी दवाईया प्राणभूतशक्ति की कीमत पर तत्काल उपशमन (निवारण) तो देती है, उनके दूरस्थ प्रभाव स्थायीरूप से हानिकारक ही होते हैं। वैज्ञानिको ने यह ज्ञात किया है कि तीक्ष्ण परिस्थितियो के कारण पुरानी वीमारिया वडी होकर खडी होती है जो कि दवाओ द्वारा वार-वार दवाई जाती है, जो लक्षणो को ढाप तो अवश्य देती है पर वीमारी के आन्तरिक कारणो को दूर नही करती।

(३) प्राणभूत शक्ति पथ्याचार के अतिरिक्त भावावेश और यौनाचार के प्रति अति अनुग्रह के द्वारा भी अपव्यय की जाती है। इनको सीमित किया जाना चाहिए ताकि उपचारिक कार्य तन्त्र के भीतर शान्त चलता रहे।

(४) आराम और नीद का अभाव भी प्राणभूत शक्ति के उपचारिक कार्य को रोकती है। वीमारी से व्यक्ति को अपनी उर्जाओ की सुरक्षा करनी ही पडती है और तनाव पैदा करनेवाले शारीरिक अथवा मानसिक कार्य से दूर रहना ही पडता है जो शक्ति को सोखा करते हैं। कडी स्थिति मे विस्तर पर आराम करना निर्धारित करना पडता है।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की इस पृष्ठभूमि से अव हम पथ्य-सुधार के सिद्धान्त अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

वहुत पहले कहा गया था—"अपने भोजन को दवा होने दो और दवा को भोजन।" वीमार व्यक्ति के लिए यह एक महत्वपूर्ण आदेश है। प्राकृतिक उपचार मे वीमारी की सभी स्थितियो मे हम पथ्य को असन्तुलित कर देते हैं ताकि भोजन मे माड, प्रोटीन, चर्वी थोडी अथवा नही रहती है और प्राकृतिक जल के साथ स्वाभाविक शर्करा, विटामिन और खनिज तत्वो की प्रचुरता रहती है। कई प्रकार की सब्जियो, फलो, दालो, दूध से इस प्रकार का भोजन वनाया जा सकता है।

कठिन परिस्थितियो मे पूर्ण उपवास अथवा वहुत हल्के पेय पदार्थों द्वारा शारीरिक आराम की व्यवस्था दी जाती है। पुरानी स्थितियो मे पूर्ण उपवास

का नही कहा जाता पर वीमारी का नाम कुछ भी हो और वह ज्वर की स्थिति मे है अथवा नही प्राय तीक्ष्ण कष्ट स्वत सीमित हो जानेवाले होते हैं यदि एनिमा के उचित उपयोग के साथ उपवास भी किया जाता रहे।

वीमार व्यक्ति के लिए पथ्याचार के ये सिद्वान्त काफी हैं। अव स्वस्थ व्यक्ति के लिए कुछ सामान्य निर्देश इस प्रकार हैं —

(१) चाय, काफी, कोका जैसे नशीले पेय पदार्थों मे हानिकारक जडी-वूटियो का सार-तत्व केफिन, थाइन आदि रहते हैं। मद्यसार मस्तिष्क के उच्चतम केन्द्रो को प्रभावित करता है। तम्वाकू गले की नली, मुँह की श्लेष्मा और उदर को नुकसान पहुचाती है। इन सव पदार्थो से दूर रहिए।

(२) ऐसे भोजन से परहेज करिए जिनके प्राकृतिक विटामिन और खनिज तत्व निकाल लिए जाते हैं। विशेप रूप से शोधित शक्कर व खटाइयो से दूर रहिए जो जोडो की सूजन, हड्डियो और आकृति सम्वन्धी अनेक वीमारिया पैदा करती है। पालिश किए हुए की अपेक्षा हाथ से कूटे चावल का उपयोग करिए। मैंदे के स्थान पर गेहू का आटा, शोधित शक्कर की तुलना मे शहद और गुड का उपयोग करिये अन्यथा 'सफेद विष का'

(३) जमे हुए अथवा रसायनिक प्रक्रिया से वने भोजन का वहिष्कार करिए। अनेको प्रकार के व्यञ्जन वनानेवाले, तेलयुक्त श्वेत मिश्रण वनाने वाले नकली गध रग वढानेवाले, सुरक्षित रहने वाले तत्व होते हैं। खाद्य-पदार्थ के जीवन को उभाडते है और आकर्पक वनाते हैं मगर प्राय हमारी पाचन-प्रक्रिया को नुकसान पहुँचाते हैं। इस तथाकथित भोजन-तकनीक से सावधान रहिए "वनस्पति" से भी परहेज करिए जो वायुमिश्रित चर्वी होती है जो हृदय रोग, केंसर और अपच का कारण वनती है। रसायनिक खाद से उपजाए गए और सक्रामक नाशक द्रव्य छिडका हुआ खाद भी मनुष्य के लिए नशीला हो सकता है।

(४) मसालो और चटनी का भी इतना कम उपयोग किया जाना चाहिए जिससे कि पकाए हुए भोजन के प्राकृतिक स्वाद और गन्ध मे वृद्धि हो न कि वे समाप्त हो जाए। प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि मे गोलमिर्च, सरसो, लाल-मिर्च, हीग और सिरका सर्वाधिक नुकसानप्रद मसाले है। प्याज, धनिया, जीरा और अदरख भोजन मे गन्ध देने मे उपयोग लाई जा सकती है।

(५) साधारण नमक का भी उपयोग कम किया जाना चाहिए जो जितना अधिक नमक खाता है, पोटास उतना ही शरीर से वाहर निकल जाता है और पोटास का अभाव केंसर के कारण के नाम से जाना जाता है। अधिक नमक केंसर की रचना करता है। दूसरा सवसे वडा दोप है नमक का

पानी से भारी लगाव। यहाँ तक कि एक औंस नमक कई पौंड पानी रख सकता है। पके हुए भोजन मे खाने से पहले अन्तिम डाला जानेवाला नमक ही होना चाहिए। सलाद, दही, मक्खन और ताजे फल-सब्जी के साथ नमक नही लेना चाहिए।

(६) स्वीडन के डाक्टर वेनर के अनुसार बीमार व्यक्ति को तो अपना सारा भोजन कच्चा और विना पकाए लेना चाहिए और स्वस्थ व्यक्ति को तो कम से कम आधा भोजन विना पकाया हुआ लेना चाहिए।

(७) भोजन जब पकाया जाता है तो तलने को दरगुजर किया जाना चाहिए। भजिया अथवा पूरी बनाते समय माड-खटाई को तला जाता है तो गर्भग्रहित फिल्म की तरह इसके तत्व विकसित हो जाते हैं। पाचक-रस इसमे प्रवेश नही कर पाते। इस प्रकार भोजन अनपचा रह जाता है और अपच और कब्ज के कारण हो सकते हैं। उबालना, आंच से पकाना अथवा भाप से पकाना ही भोजन बनाने के सर्वोत्तम उपाय हैं।

(८) आलू को विना काटे-छीले उबालिये। परवल के बीजो को मत फेंकिये, सब्जियो को छीलने से बहुत से विटामिन नष्ट हो जाते हैं, इसी तरह नारंगी और चीकू भी मत छीलिये। फल तो सूर्य की रसोई से प्राप्त भोजन है।

(९) पक जाने के शीघ्र बाद भोजन परोसिये और खाइए। कच्चा सलाद तो काटे जाने के तुरन्त बाद खा लीजिए। पके हुए भोजन को दुबारा मत पकाइए। पेट्रिस आदि बनाने के लिए पहले उबाल लीजिए फिर हल्का सा तल लीजिए।

(१०) अधिक गर्म अथवा अधिक ठण्डे भोजन से परहेज करिए। शरीर के तापमान जैसा ही भोजन अच्छी तरह से पचता हैं और मुँह के भीतरी हिस्से और गले की नली को नहीं झुलसाता।

(११) पेट के दात नही होते। पूरी तरह भोजन को चबाइये। इससे मसालो को पचाने और लार बनाने मे सहायता मिलेगी और जब भोजन पेट के भीतर जाता है तो प्रोटीन और चर्बी के पाचन मे भी सहायक होता है।

(१२) भूख हो तब खाए। प्यास लगे तब पिए। कोई भी व्यक्ति दो बार से अधिक भूखा नही होता। नि सन्देह कोई व्यक्ति झूठा ही भूखा हो सकता है और दिन मे कई बार भूखा हो सकता है।

(१३) अधिक मत खाइये। ससार भर मे भूख की अपेक्षा लोग अधिक खाने से मरते हैं। व्यग्य के रूप मे एक कहावत कही जाती है—"जितना हम खाते हैं उसका तिहाई हमे पोषित करता है और दो तिहाई डाक्टर को पोषित

करने मे चला जाता है।" फ्रांस के लोगो ने बहुत ही सार रूप मे एक विचार रखा है कि "हम अपनी कब्र अपने ही चाकूओ और काटो से खोदते हैं।"

(१४) जब लोग ज्यादा खाते हैं, सामान्यत प्रोटीन और मसाले अधिक ले लेते हैं। प्रोटीन का आधिक्य दुर्गन्ध पैदा करता है और मसालो की अधिकता आत मे झाग पैदा करती है।

(१५) धार्मिक अथवा मानववादी दृष्टि से ही नही वरन् पोषण और शरीर-रचना की दृष्टि से भी मास-पथ्य की तुलना मे शाकाहारी पथ्य ही सर्वोत्तम है। मासाहार से अधिक प्रोटीन मिलने का भाव अब झूठा सिद्ध हो चुका है। दूध, दाल, फल का सन्तुलित उपयोग सभी प्रकार के आवश्यक क्षार-अम्ल दे देता है।

(१६) भोजन के सयोगो पर भी ध्यान दें। असगत मिलावट से परहेज करें। एक ही भोजन मे प्रोटीन के साथ प्रोटीन और मसाले न लें। एक भोजन मे दो अथवा तीन प्रकार के व्यजनो से यह सब अच्छी तरह प्राप्त किया जा सकता है। एक उचित कहावत है—"अधिक व्यजन अधिक बीमारिया।"

(१७) और अन्त मे पित्तोन्मादी मत होइये। ई० ई० पूरीटन ने कहा है—"मात्र आनन्द के लिए खाना अन्ततोगत्वा पीड़ा के लिए खाना है मगर बिना आनन्द के खाना बिना जीवन खाना है।"

अण्डा उपजाऊ अथवा अनउपजाऊ दोनो ही स्वरूपो मे सर्वथा त्याज्य है। पश्चिम से आयातित छलपूर्ण तर्कों के आधार पर उसे शाकाहार मानना महज एक भ्रान्ति है।

० आप दूसरा अण्डा कभी नहीं खायेंगे

—जय दीनशा

[प्रख्यात आहारशास्त्रज्ञ]

आप अपने जीवन मे दूसरा अण्डा कभी नही खाएँगे, यदि आप यह जान जाए कि वे वास्तव मे क्या हैं? विश्वकोप का अध्ययन करते समय भ्रूण-विद्या के खण्ड मे मुझे एक विशेप तथ्य प्राप्त हुआ, जिसमे प्रत्येक शाकाहारी की रुचि होनी चाहिए। शाकाहारी शब्द का प्रारम्भिक प्रयोग मासाहार से परहेज के अर्थ मे किया जाता रहा है, परन्तु हाल ही मे पशु-भोजन की प्रकृति-सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति के फलस्वरूप शाकाहारी सिद्धात की अनेक नामो से व्याख्या करली गई है।

आधुनिक शाकाहारी सिद्धान्त के प्रारम्भ मे शाकाहारी शब्द उसके लिए प्रयुक्त होता रहा है जिसने मासाहार त्याग दिया हो। अब तो उनके लिए दुग्धगुणी शाकाहारी पद्धति भी अनेक प्रखण्डो मे है, जिसके आधार पर शाकाहारी दूध पीने और अण्डा खाने की दोनो आदतो को बनाए रखते हैं और पूर्ण शाकाहारी तो उसे कहते हैं, जिसने प्रत्येक प्रकार का पशु-मास त्याग दिया हो। यह विशेष ध्यान देने की बात है कि अधिक जागृति और सजगता के परिणामस्वरूप शाकाहारी आन्दोलन से ही "वेगेनिज्म" की व्युत्पत्ति हुई और अब यह मान भी लिया गया है कि पथ्याचार सम्बन्धी दृष्टि से वेगन का विभाजन पूर्ण शाकाहारी से है। हम अपने मुख्य विपय अण्डे पर आए— "न्यू वर्ल्ड फंमेली एन्सायक्लोपीडिया" भ्रूण विज्ञान सम्बन्धी अपने निबन्ध मे श्री ई० एफ० जी० हर्वर्ट भ्रूण के विकास की प्रक्रिया का विश्लेपण करते हुए कहते हैं कि जीव का मूलतत्व (प्रोटोप्लाज्म) अपने वातावरण के प्रति बहुत ही सूक्ष्मरूप से प्रतिवादन करता है, यह शरीर रचना सम्बन्धी प्रति-

वादनो पर निर्भर करता है' दूसरे शव्दो मे—नाना प्रकार के उत्तेजन के प्रतिवादन मे सूक्ष्माणु और अवयव भ्रूण के भीतर ही गति करते हैं और आकार वदलते है, विशेष रूप से अण्डो मे, जिनमे काफी मात्रा मे पीला पदार्थ होता है जो कि भ्रूण का भोजन होता है। यह सही है कि तीव्र विकास की प्रक्रिया मे व्यर्थ के उत्पादन को छोड देता है।

हमे यह विचारना चाहिए कि जीवन को विकसित करने के सन्दर्भ मे चिडिया के अण्डे को भी वे ही कार्य पूरे करने चाहिए जैसा कि जीवित वच्चा पैदा करनेवाली मा के शरीर को करने चाहिए (इसी तरह मनुष्य की मा भी) जैसे कि मानवीय मा अवधि पूर्ण होने पर वच्चा देती है। शरीर के वारीक तन्तु को अलग करने मे सक्षम होती है तत्पश्चात् दूध के माध्यम से ही जुडी रहती है। वच्चे का अपना तत्र सास लेने, रक्त प्रवाह को शुद्ध रखने, मूत्र-त्याग करने, व्यर्थ पदार्थ को अलग रखने, भोजन प्राप्त करने के सन्दर्भ मे आकार ले लेता है पर जिस आवरण मे वच्चा पक्षी आवद्ध है अनेको कार्य चिडिया के अण्डे द्वारा किए जाने चाहिए। मादा पक्षी के शरीर द्वारा किए जाने की विधि नही होती जैसी कि स्तनधारी प्राणियो के साथ होता है। यहा कोई तन्तु नही होता। पूर्णरूपेण स्वत धारी उठाने योग्य भ्रूण है—अण्ड—होता है जिसमे वच्चा चिडिया को पूरी भ्रूण कालिक अवधि गुजारनी चाहिए। जव तक जीने योग्य नए प्राणी के रूप मे तत्पर होकर वाहरी दुनिया के सामने न रखदें तव क्या हम निम्न वाक्यो पर विशेप ध्यान नही देंगे—

"यह निश्चित है कि पूर्वा पर व्यर्थ पदार्थ त्याग देता है—और वाद वाला पीले तरल पदार्थ के भाग मे गति करता है जो व्यर्थ पदार्थों से दूषित नही होता।"

इसका अर्थ क्या है ? एक उपजाऊ अण्डे मे वे सव तत्व होते हैं जो उसके भीतर ही वच्चे के विकास के लिए आवश्यक होते हैं। इसलिए यह जानकर हमे आश्चर्य नही होना चाहिए कि उसमे प्रोटीन-कैल्सियम, लेसिथिन और पोषण का सार तत्व होता है जिनकी हम एक अण्डे से नए निकले मुर्गी के वच्चे मे होने की आशा करे पर यह मानते हुए विचारते हैं कि अण्डा मुर्गी का कैदखाना भी है कालकोठरी की भाति विना खिडकियो का और पूरी तरह से वन्द और जडा हुआ दरवाजा। ऐसी कोठरी कैसी होगी, जवकि आदमी भी इसमे रह लिया अथवा स्थित रहा हो ? इन दिनो पश्चिमी देशो मे गर्भपात को लेकर व्यापक आन्दोलन चला हुआ है। इस प्रकार की हत्या के तत्सम्वन्धी लाभ भविष्य मे किसी निवन्ध के लिए प्रतिक्षित रहेगे। पर उपजाऊ अण्डा खाने के सन्दर्भ मे यह प्रक्रिया क्या है, एक गर्भपात असहाय जीवन के प्रति—

स्वत शिशु-हत्या है ? किसी भी आचारिक शाकाहारी कहलाने योग्य व्यक्ति की चेतना इस वात की अनुमति नही देगी और स्वास्थ्य की दृष्टि मे भी क्या हम वास्तव मे काल कोठरी को खाना चाहते हैं—प्रोटीन, लेसिथिन, सल्फर, पजे, हड्डिया और भ्रूण का वह सव कुछ जो सम्भवत मुर्गा होकर अपने ही तरह से लम्बे समय तक जी सके। छोटा प्राणी अपने वातावरण की खाई मे से विकास करने का सर्वाधिक अवसर प्राप्त कर सके, उससे पूर्व ही अण्डाहारी "ताजा" प्राप्त करने की इच्छा से उसे खा लेते हैं। विश्वकोष इस वात का कोई सकेत अथवा उल्लेख नही करता कि व्यर्थ पदार्थ त्यागने की प्रक्रिया का यह विन्दु जीवन मे कहा शुरू होता है और यह सम्भव है कि अण्डे के आकार की तुलना मे वह पदार्थ वहुत ही थोडा हो।

अन-उपजाऊ अण्डो का जहा तक सम्वन्ध है, उनके विषय मे थोडा कहा गया ही उत्तम है। सहज सत्य हमारे पाठको और श्रोताओ के सामने पहले भी कई वार प्रकट किया जा चुका है। अन-उपजाऊ अण्डा व्यर्थ पदार्थ मात्र है जो वच्चा पक्षी वनाने जैसा हो सकता था यदि उसे आवश्यक पोषण दिया जाता।

यह सभवत आकस्मिक ही नही है कि भारत मे लाखो दुग्ध-शाकाहारी अण्डा खाने की नही सोचें और यह पदार्थ साधारणतया शाकाहारी माना भी नही जाता। यद्यपि पश्चिम मे आयातित छल पूर्ण तर्कों को प्रस्तुत किया जाता है—अण्डो को शाकाहार के रूप मे स्वीकारे जाने के लिए पर सत्य अन्तोगत्वा अपना रास्ता प्रशस्त कर ही लेता है। ●

मास के लिए मारा जानेवाला पशु कहता है—
"जो यहा मुझे मारता है, आगे (परभव मे) या पेट मे जाकर मै भी उसे मारूंगा।" —मनुस्मृति

●

मांसाहार : रोग उत्तेजना तथा कायरता का हेतु

वनस्पतियां निर्वल. निर्दोष, निर्विकार सुगन्ध और स्वाद से परिपूर्ण होती हैं। शाकाहारी निर्भीक, शान्त, अक्रोधी और उदार होता है। शक्ति और साहस के दर्शन निरामिषभोजियो मे ही किये जा सकते हैं।

—महात्मा रामचन्द्र वीर

[पशुहत्या के विरुद्ध हिन्दू समाज के नैतिक पुनर्जागरण के कार्य मे समर्पित सुप्रसिद्ध सत]

●

ससार का कोई परीक्षण यह सिद्ध नही कर सकता कि मास मनुष्य का प्राकृतिक भोजन है। मासाहार के समर्थक मास मे प्रोटीन की प्रचुरता का तर्क उपस्थित करते हैं, किंतु मास से अधिक प्रोटीन प्रकृति ने मनुष्य को फलो और कन्दो के रूप मे प्रदान किया है। गाजर, शकरकन्द, आलू और केला प्रोटीन के भण्डार हैं, जो लोग अण्डो का समर्थन करते हैं उन्हे वादाम और आवले की महत्ता जाननी चाहिए।

मास पशुओ से प्राप्त किया जाता है। शरीर-रचना की दृष्टि से भिन्नता होते हुए भी ज्ञानेन्द्रियो, कर्मेन्द्रियो एव शरीर की आठ धातुओ की ममानता की दृष्टि से पशुओ मे और हममे कोई अन्तर नही है, पशु भी हमारी ही भांति रोगी होते हैं, उनके शरीर भी हमारे शरीरो के समान विकार के केन्द्र होते हैं, मल-मूत्र और वात, पित्त एव कफ के भी केन्द्र हैं। पशुओ का मास हमारे मास के समान ही रोगो और विकारो का केन्द्र होता है। ससार का ऐसा कोई

पशु या पक्षी नही है, जिसे मारने के पश्चात् उसके शरीर से मल और मूत्र न निकलता हो, किंतु गेहू, जौ, मक्का, बाजरा, आलू, शकरकन्द, सेव, नाशपाती, बादाम, अखरोट, खीरे, ककडी आदि अन्न, फल, शाक मल-मूत्र नही करते. चलने फिरने वाले प्राणी स्वस्थ अवस्था मे भी मलो के केन्द्र होते हैं प्रत्युत मल निर्माण करने के यन्त्र होते हैं, किन्तु वनस्पतियाँ निर्मल, निर्दोष, निर्विकार, सुगन्ध और स्वाद से परिपूर्ण होती हैं। मछलियाँ जल मे बहनेवाले शवो को, विष्टा, थूक, खँखार, सबको खा जाती हैं, किंतु जो मछलियो को ही खा जाते हैं वे कितने घृणित लोग है यह कल्पना से परे की बात है।

वस्तुत मास और मछली शरीर मे उष्णता उत्पन्न करनेवाले, विकार बढानेवाले दूषित पदार्थ हैं। मास भक्षण से रक्त मे जो खमीर उत्पन्न होता है, वह सारे शरीर को रोगी बना देता है, हमारा पक्वाशय हिंस्र-जन्तुओ के पक्वाशय से भिन्न है, मास को पचाने के योग्य वह नहीं है, इसीलिये मास को कच्चा खाना मनुष्य के लिये दुष्कर है, वह उसे दो घण्टे तक अग्नि पर सिद्ध करता रहता है। जिस पदार्थ को गलाने मे अग्नि को इतनी देर लगती है उसे जठराग्नि सरलता से कैसे पचा सकती है? मासाहारियो को पाचनक्रिया के लिये कृत्रिम पदार्थों का आश्रय लेना पडता है। तेज मसाले और मदिरा के प्रभाव से शरीर के ज्ञान तन्तु झुलस जाते हैं और मासाहारी मन्द मति होने लगता है।

मास रोगो का केन्द्र है, इसीलिये मासाहारी प्रदेशो मे ही प्राय गठिया सन्धिवात, पक्षाघात, क्षय, कोषवृद्धि एव हर्निया जैसे रोग देखे जाते हैं, बगाल, उडीसा, असम और बिहार इन रोगो के केन्द्र हैं। मासाहारियो पर कैंसर का प्रभाव शीघ्र होता है। मासाहारी प्राणियो की विष्टा-मूत्र और श्वास-प्रश्वास तक भीषण दुर्गन्ध से परिपूर्ण होते है, किंतु इसके विपरीत हाथी, घोडे, ऊँट, गाय और बकरी आदि शाकाहारी पशुओ की विष्टा निर्गन्ध होती है, गोबर से तो दुर्गन्ध का नाश करने के लिये घर आगन लीपे जाते हैं।

मासाहारी कायर, मलिनात्मा, कामी और क्रोधी होते हैं, बात-बात मे उत्तेजित होना उनका स्वभाव होता है। मासाहारी जन्तुओ की प्रवृत्तियों से इसे स्पष्टरूप मे जाना जा सकता है, किंतु शाकाहारी प्राणी निर्भीक, शान्त, अक्रोधी और उदार होते हैं। आहार का सीधा प्रभाव मनोवृत्ति पर पडता है।

अधिकाश लोग मासाहार इस भ्रम के वशीभूत होकर करते हैं कि मास शक्ति को बढानेवाला खाद्य है, किन्तु यह बात नितांत भ्रमपूर्ण है।

ससार के वडे-वडे योद्धा निरामिष भोजी हुए है । जिन्होने मासाहारियो को परास्त करके निरामिप भोजन की महत्ता को प्रमाणित किया है । प्राणिजगत् मे भी शक्ति और साहस के दर्शन निरामिप भोजियो मे ही किये जा सकते हैं । सम्पूर्ण ससार मे शक्ति की उपमा घोडे से दी जाती है । क्षमता का परिमाण भी यन्त्रो पर घोडे की क्षमता से आँका जाता है, किंतु घोडा पूर्ण निरामिप भोजी होता है । मासाहारी प्राणियो मे सिह की शक्ति सवसे अधिक मानी गयी है किंतु यदि सिह के दाँत काट डाले जाये तो सिह मास का लोथडा मात्र रह जायगा, वेग, शक्ति, साहस और उत्साह निरामिपभोजी प्राणियो की विशेपता है ।

भारत मे निरामिपभोजी प्रान्तो के स्त्री-पुरुष निरोग, वलवान एव साहसी होते हैं, हरियाणा के जाटो की विहार और वगाल के मत्स्यभोजी पुरुषो से तुलना करने पर यह वात सिद्ध हो जायेगी ।

मासाहार शक्ति का नही कामोत्तेजना का स्रोत है, कामी, विलासी स्त्री पुरुषो को वह भोगो के लिये उत्तेजित करता है, फलस्वरूप मासाहारी शीघ्र ही अपनी मौलिक शक्ति को खोकर जीर्ण जर्जर हो जाते हैं ।

मासाहारी मे लम्वे समय तक उपवास करने की, दौडने की, तैरने की और प्राणायाम करने की क्षमता का अभाव होता है । मासाहार से स्वर कर्कश और स्वभाव कठोर हो जाता है, जीवनी शक्ति क्षीण होती है और रोगो से युद्ध करने की क्षमता का तीव्रता से ह्रास हो जाता है ।

सौ वर्षो तक जीवित रहने की इच्छा रखने वाले स्त्री-पुरुषो को मासाहार एव मदिरा-पान से स्वय को दूर रखना चाहिए मछली और अण्डे भी मासाहार मे ही सम्मिलित हैं ।

साथ न खाने के खाद्य पदार्थ—

(१) गर्म रोटी आदि के साथ दही ।
(२) पानी मिला दूध और घी ।
(३) वरावर-वरावर घी-मधु (शहद) ।
(४) चाय के पीछे ठण्डा पानी-ककड़ी-तरवूज आदि ।
(५) खरवूजा और दही ।
(६) मूली और खरवूजे के साथ मधु ।

—कविराज हरनामदास

मनुष्य ने ही पशु-पक्षी को मासादि की ओर प्रवृत्त होने के लिए विवश किया। मनुष्य की आखेट-वृत्ति के कारण ही पशु अपने दातो व पजो द्वारा जिनसे वे अपनी सुरक्षा करते थे, हमला करने लगे।

शाकाहार : प्राणी का प्राकृतिक आहार

—प्रतापचन्द जैन

[कई सामाजिक व शैक्षणिक सस्थाओ से सम्बद्ध समाजसेवी]

जैन मान्यता के अनुसार प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव से पूर्व प्राणी अपना जीवन प्रकृति और कल्पतरुओ के सहारे चलाता था। भूख-प्यास से लेकर जीवन की अधिकाश आवश्यकताओ की पूर्ति वह उन कल्पतरुओ से किया करता था। धीरे-धीरे कल्पतरु समाप्त होने लगे और प्राकृतिक पदार्थ भी क्षीण होकर घटने लगे। जब उपभोक्ताओ के मुकावले मे उत्पादन घटने लगता है, तब अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पारस्परिक विरोध, विद्वेप और द्वन्द्व होने लगता है ऐसा ही तव होने लगा।

भगवान ऋषभदेव ने त्रस्त मानव को त्राण देने के लिए पुरुपार्थ और समाज-व्यवस्था का महामत्र दिया। उन्होने कहा—"हाथो का उपयोग केवल खाने के लिए मत करो, उत्पादन और उपार्जन के लिए भी करो।" तव मनुष्य के मन मे श्रम के प्रति उच्च भावना जगी। वह खेती करके पैदा करने लगा व श्रम के द्वारा उपार्जन करने लगा। इस प्रकार उपभोक्ता और उत्पादन मे

सन्तुलन कायम हुआ। शाति स्थापित हुई, सभी का जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत होने लगा।

कर्मयुग मे भी जब मनुष्य की लालसा बढी तब वह उसकी पूर्ति के लिए एक-दूसरे पर दबाव डालने लगा और परस्पर झगडने लगा। वह पाषाण और काष्ठ के हथियार बनाकर उनका आक्रामक और रक्षात्मक दोनो प्रकार से उपयोग करने लगा। निशाना ठीक बैठे और प्रहार खाली न जाय इसके लिए उसने पशु-पक्षियो पर अभ्यास करना शुरू कर दिया तथा क्रूर बनकर उनका भक्षण भी करने लगा। इस प्रकार शुरुआत हुई मास-भक्षण की।

मनुष्य स्वार्थ मे यहा तक निर्दयी हो गया कि जिन पशुओ से वह कर्मयुग मे सेवा लेने लगा था, उन्ही को वह मारने, सताने और आधा पेट खाने को देने लगा। तब वे भक्ष्य-अभक्ष्य जो कुछ मिलता उसे खाने लगे। गौ को माता कहनेवाले और उसकी रक्षा का शोर मचानेवाले उसका दूध निचोड कर उसे लावारिश बनाकर छोड देते हैं। और वह गदे चिथडे, विष्ठा खाते और गदी नालियो का पानी पीते देखी जाती है। तभी तो आज से पाच हजार वर्ष पूर्व कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने गौपालन और गोसेवा का व्यापक आन्दोलन छेडा था। वे स्वय ग्वाला बने। कितने हैं आज कृष्ण और महावीर के भक्त जो गऊ को पालते-पोसते हैं? उनका काम तो केवल उसका दूध पी लेना है। ऐसे लोग भी गौहत्या और बूचडखानो के लिए कम दोषी नही हैं।

विषधर सर्प मिट्टी, पवन और दूध पर अपना निर्वाह कर लेता है। दीवान अमरचन्दजी के हाथो भूखा शेर जलेबी खा गया। नारायणी (राजस्थान) मे जब गुरु गोविन्दसिंह पधारे तब सन्त दादू के डाले जुआर, बाजरा के दाने उनके बाज ने बडे चाव से पेट भर खाये। यदि ये जीव प्रकृति और स्वभाव से मास-भक्षी होते तो जलेबी और जुआर कैसे खा लेते? बर्नार्ड शा ने एक शाही भोज मे मास खाने को पेट मे जानवरो का कब्रिस्तान बनाना कहा था। अजरबेजान (रूस) के १६८ वर्षीय शिराली मिसालिनोव ने शाकाहार और मदिरा ग्रहण न करने को अपने दीर्घ और चुस्त जीवन का रहस्य बतलाया।

जैन मनीषियो ने आज से सदियो पूर्व आहार के सम्बन्ध मे जो प्राकृतिक खोज की, वह आज की वैज्ञानिक दृष्टि से भी सही और खरी उतरी है। कौनसी चीज खानी चाहिए, कौन सी चीज नही और क्यो? एव उनके गुण और दोष विस्तार से बतलाये हैं। कौनसी चीज कितने समय तक खाने योग्य रहती है और किसमे किसका मिश्रण करने से विष बन जाता है? आदि सूक्ष्म बातो तक का उन्होने विशद वर्णन किया है। इसके फलस्वरूप विश्व का विवेकशील तबका मासाहार त्यागकर शाकाहार की ओर आ रहा है।

मनुष्य ने ही पशु-पक्षी को मास आदि गन्दे पदार्थ खाने के लिए मजबूर किया। मनुष्य द्वारा उनका शिकार किये जाने के फलस्वरूप ही वे जिन दातों और पजो को हमला होने पर अपना बचाव करने के काम मे लाते थे उनसे वे खुद हमला करने लगे और दातो मे खून का स्वाद लगने से मास-भक्षी हो गये। यदि वे स्वभाव मे हिंसक होते तो बिल्ली और शेरनी, अपने शावकों को जब उन्ही दातो से दबाकर उठा लेती है और उन्ही पजो से पुचकारती और थपथपाती है तब वे दात इतना बोझ उठाने पर भी क्यो नही गड जाते तथा उनके खूख्वारपजे क्यो नही उनका अनिष्ट कर देते ?

मनुष्य मे स्वार्थबुद्धि, परिग्रह, प्रेम और अपने जीवन के लिए दूसरो के जीवन का खात्मा कर डालना आदि कुछ ऐसी कुत्सित और दूषित मनोवृत्तिया घर कर गई कि उसने मास-भक्षण की शुरूआत की और निरीह पशुओं को भी ऐसा करने के लिए विवश किया। जबकि वास्तव मे शाकाहार ही प्राणी का प्राकृतिक और स्वाभाविक भोजन था और है।

[—२१/६३, घुलियागज आगरा, उ०प्र०—]

●

भोजन-विवेक

○ उष्ण स्निग्ध मात्रावत् जीर्णे वीर्याविरुद्ध इष्टे देशे, इष्टसर्वोपकरणं नातिद्रुत नातिविलम्बित अजल्पन् अहसन् तन्मना भुञ्जीत। आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्।

—चरकसहिता, विमानस्थान १।२४

उष्ण, स्निग्ध, मात्रापूर्वक पिछला भोजन पचजाने पर, वीर्य के अविरुद्ध, मनोनुकूल स्थान पर, अनुकूलसामग्रियो से युक्त, न अति-शीघ्रता से, न अतिविलम्ब से, न ही बोलते हुए, न ही हसते हुए, आत्मा की शक्ति का विचार करके एव आहार-द्रव्य मे मन लगाकर भोजन करना चाहिए।

○ ईर्ष्या-भय-क्रोधपरिक्षतेन, लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमान-मन्न न सम्यक् परिणाममेति।

—सुश्रुत
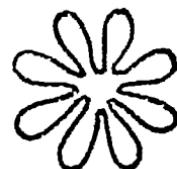
ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, रोग, दीनता एव द्वेष—इन सबसे युक्त मनुष्य द्वारा जो भोजन किया जाता है, उसका परिणाम अच्छा नही होता।

★

जीवन मे आज अन्न की समस्या ऐसी विकट समस्या है कि सारे धर्म-कर्म की विचारधाराए और फिलॉसफियां ठिकाने लग जाती हैं। अन्न के विना एक-दो दिन विताए जा सकते हैं, जोर लगाकर कुछ और ज्यादा दिन भी निकाल देंगे, किन्तु आखिरकार भिक्षा के लिए पात्र उठाना ही पड़ेगा।

एक आचार्य ने कहा है :

"पृथिव्या त्रीणि रत्नानि, जलमन्न सुभाषितम्।
मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु, रत्नसज्ञा विधीयते॥"
भूमण्डल मे तीन रत्न हैं, पानी, अन्न, सुभाषित वाणी।
पत्थर के टुकड़ो मे करते, रत्न कल्पना पामर प्राणी॥
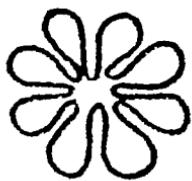
इस पृथ्वी पर तीन ही मुख्य रत्न हैं—अन्न, जल और मीठी वोली। जो मनुष्य पत्थर के टुकडो मे रत्न की कल्पना कर रहा है, आचार्य कहते हैं कि उससे वढकर पामर प्राणी और कोई नही है। जो अन्न, जल तथा मधुर वोली को रत्न के रूप मे स्वीकार नही करता है, समझ लीजिए, वह जीवन को ही स्वीकार नही करता है। सचमुच वह दया का पात्र है।

अन्न : पहली समस्या

अन्न मनुष्य की सवसे पहली आवश्यकता है। मनुष्य इस शरीर को, इस पिण्ड को, लेकर खडा है और सर्वप्रथम अन्न की और फिर कपडे की भी इसको आवश्यकता है। इस शरीर को टिकाए रखने के लिए भोजन अनिवार्य है। भोजन की आवश्यकता पूरी हो जाती है तो धर्म की वडी से वड़ी ग्रन्थिया भी हल हो जाती हैं। हम पुराने इतिहास को देखेंगे और विश्वामित्र आदि की कहानी पढेंगे, तो मालूम होगा कि वारह वर्ष के दुष्काल मे वह कहा से कहा पहुचे और क्या-क्या करने को तैयार हो गये। वे अपने महान् सिद्धान्त

अन्न समस्या : समस्या और समाधान

—उपाध्याय अमर मुनि

[स्थानकवासी जैन परम्परा के प्रमुख सत, प्रवुद्ध विचारक, कुशल प्रवक्ता]

से गिर कर कहाँ से कहा पहुचे और क्या-क्या करने को तैयार हो गये। वे अपने महान् सिद्धान्त से गिर कहाँ-कहाँ न भटके। मैंने उस कहानी को पढा है और उसे आपके सामने दुहराने लगूँ तो सुनकर आपकी आत्मा भी तिलमिलाने लगेगी। उस द्वादशवर्षीय अकाल मे वडे-वडे महात्मा केवल दो रोटियो के लिए इधर से उधर भटकने लगते हैं और धर्म-कर्म को भूलने लगते हैं। स्वर्ग और मोक्ष किनारे पड जाते हैं और पेट की समस्या के कारण, लोगो पर जैसी गुजरती है, उससे देश की सस्कृति नष्ट हो जाती है और केवल रोटी की फिलॉसफी ही सामने रह जाती है।

भूख . हमारी ज्वलत समस्या

आज इस देश की दशा कितनी दयनीय हो चुकी है। अखवारो मे आए-दिन देखते हैं कि अमुक युवक ने आत्महत्या कर ली है। और अमुक रेलगाडी के नीचे कटकर मर गया। किसी ने तालाव मे डूब कर अपने प्राण त्याग दिए हैं और पत्र लिखकर छोड गया है कि मै रोटी नही पा सका, भूखो मरता रहा अपने कुटुम्व को भूखो मरते नही देख सका, इस कारण आत्महत्या कर रहा हू। जिस देश के नौजवान और जिस देश की इठलाती हुई जवा-नियाँ रोटी के अभाव मे ठण्डी हो जाती है, जहाँ के लोग मरकर ही अपने जीवन की समस्या को हल करने की कोशिश करते हैं, उस देश को क्या कहे ? स्वर्गभूमि या नरकभूमि ! मैं समझता हू, किसी भी देश के लिए इससे वढ़-

कर कलक की वात दूसरी नही हो सकती। जिस देश का एक भी आदमी भूख के कारण मरता हो और गरीबी से तग आकर मरने की वात सोचता हो उस देश को रहनेवाले लाखो-करोडो लोगो के ऊपर यह वहुत वडा पाप है।

एक मनुष्य भूखा क्यो मरा ? इस प्रश्न पर यदि गम्भीरता के साथ विचार नही किया जायगा और एक व्यक्ति की भूख के कारण की हुई आत्म-हत्या को राष्ट्र की आत्महत्या न समझा जाएगा, तो समस्या हल नही होगी। जो लोग यहा बैठे हैं और मजे मे जीवन गुजार रहे हैं और जिनकी निगाह अपनी हवेलियो की चाहार-दीवारी से वाहर नही जा रही है और जिन्हे देश की हालत पर सोच-विचार करने की फुर्सत नही है, वे इस जटिल समस्या को नही सुलझा सकते।

आज भुखमरी की समस्या देश के लिए सिर-दर्द हो रही है। इस समस्या की भीषणता जिन्हे देखनी है, उन्हे वहाँ पहुचना होगा। उस गरीवी मे रहकर दो-चार मास व्यतीत करने होगे। देखना होगा कि किस प्रकार वहा की माताएँ और वहिनें रोटियो के लिए अपनी इज्जत वेच रही हैं और दुधमुँहे लालो को, जिन्हे वह रत्नो का ढेर पाने पर भी देने को तैयार नही हो सकती थी, दो चार रुपयो मे वेच रही हैं।

इस पेंचीदा स्थिति मे आपका क्या कर्त्तव्य है ? इस समस्या को सुलझाने मे आप क्या योग दे सकते हैं ? याद रखिए कि राष्ट्र नामक कोई अलग पिण्ड नही है। एक-एक व्यक्ति मिलकर ही समूह और राष्ट्र वनता है। अतएव जब राष्ट्र के कर्तव्य का प्रश्न आता है तो उसका अर्थ वास्तव मे सम्मिलित व्यक्तियो का कर्तव्य ही होता है। राष्ट्र को यदि अपनी कोई समस्या हल करनी है, तो राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की समस्या हल करनी होगी। हाँ तो, विचार कीजिए, आप अन्न की समस्या हल करने मे अपनी ओर से क्या योग-दान कर सकते हैं ?

समस्या का ठोस निदान

अभी-अभी जो वाते आपको वतलाई गई हैं। वे अन्न समस्या को स्थायी-रूप से हल करने के लिए है। परन्तु इस समय देश की हालत इतनी खतरनाक है कि स्थायी उपायो के साथ-साथ हमे कुछ तात्कालिक उपाय भी काम मे लाने पड़ेंगे। मकान मे आग लगने पर कुआ खुदने की प्रतीक्षा नही की जाती। उस समय तात्कालिक उपाय वरतने पडते हैं तो अन्न समस्या को सुलझाने या उसकी भयकरता को कुछ हल्का वनाने के लिए आपको तत्काल क्या करना है ?

जो लोग शहर मे रह रहे हैं, वे सबसे पहले तो दावतें देना छोड दें। विवाह-शादी आदि के अवसरो पर जो दावते दी जाती हैं, उनमे अन्न बर्बाद होता है। दावत, अपने साथियो के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने का एक तरीका है। जहा तक प्रेम-प्रदर्शन की भावना का प्रश्न है मैं उस भावना का सम्मान करता हू, किन्तु इस भावना को व्यक्त करने के तरीके देश और काल की स्थिति के अनुरूप ही होने चाहिए। भारत मे दावतें किस परिस्थिति मे आई ? एक समय था जबकि यहा अन्न के भण्डार भरे थे। खुद खाएँ और ससार को खिलाएँ, तो भी अन्न समाप्त होनेवाला नही था। पाच-पचास की दावत कर देना तो कोई बात ही नही थी, किन्तु आज वह हालत नही रही है, देश दाने-दाने के लिए मुँहताज है। ऐसी स्थिति मे दावत देना देश के प्रति द्रोह है, एक राष्ट्रीय पाप है। एक और लोग भूख से तडप-तडप कर मर रहे हो—और दूसरी ओर पूडियाँ, कचोरियाँ और मिठाईयाँ जबर्दस्ती गले मे ठूँसी जा रही हो – इसे आप क्या कहते हैं ? इसमे करुणा है ? दया है ? सहानुभूति है ? अजी मनुष्यता भी है या नही ? यह तो विचार करो !

मैंने सुना है, मारवाड मे मनुहार बहुत होती है। थाली मे पर्याप्त भोजन रख दिया हो और बाद मे यदि पूछा नही गया तो जीमनेवाले की त्योरियो चढ जाती हैं। मनुहार का मतलब ही यह है, दबादब-दबादब थाली मे डाले जाना और इतना डाले जाना कि खाया भी न जा सके और खाद्य-पदार्थ का अधिकाश बर्बाद हो जाए !

मेरठ और सहारनपुर जिले से सूचना मिली है कि वहाँ वैश्यो ने, जिनका ध्यान इस समस्या की ओर गया, बहुत बडी पचायत जोडी है और यह निश्चय किया है कि विवाह मे इक्कीस आदमियो से ज्यादा की व्यवस्था नही की जायगी। उन्होंने स्वय प्रण किया है और गाँव-गाँव और कस्बो-कस्बो मे यही आवाज पहुचा रहे हैं तथा इसके पालन कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्या ऐसा करने से उनकी इज्जत बर्बाद हो जायगी ? नही, उनकी इज्जत मे चार चाँद और लग जायेंगे। आपकी तरह वे भी खिला सकते हैं और चोर बाजार से खरीद कर हजारो आदमियो को खिलाने की क्षमता रखते हैं। किन्तु उन्होंने सोचा, इस तरह हम मानव जीवन के साथ खिलवाड कर रहे हैं। भूखो के पेट के साथ खिलवाड कर रहे हैं। यह खिलवाड अमानुषिक है। हमे इसे जल्द से जल्द बन्द कर देना चाहिए।

तो सबसे पहली बात यह है कि बडी-बडी दावतो का यह जो सिलसिला है, इसे बन्द हो जाना चाहिए। विवाह-शादी के नाम पर या धर्म-कर्म के नाम

पर जो दावतें चल रही हैं, कोई भी भला आदमी उन्हे आदर की दृष्टि से नही देख सकता। अगर आप सच्चा आदर पाना चाहते है, तो आपको यह सकल्प कर लेना है कि आज से हम अपने देश के हित मे दावते बन्द करते है। जब देश मे अन्न की बहुतायत होगी तो खाएंगे और खिलाएँगे, किन्तु मौजूदा हालत मे अन्न के एक कण को भी बर्बाद नही करेंगे।

दूसरी बात है जूठन छोडने की। भारतवासी खाने बैठते हैं तो खाने की मर्यादा का बिलकुल ही विचार नही करते। पहले अधिक से अधिक ले लेते हैं और फिर जूठन छोड देते हैं, किन्तु भारत का कभी आदर्श था कि जूठन छोडना पाप है। जो कुछ लेना है, मर्यादा से लो, आवश्यकता से अधिक मत लो। और जो कुछ लिया है उसे जूठा न छोडो। जो लोग जूठन छोडते हैं, वे अन्न का अपमान करते हैं। उपनिषद् का आदेश है—'**अन्न न निन्द्यात्।**'

जो अन्न को ठुकराता है और अन्न का अपमान करता है, उसका भी अपमान अवश्यम्भावी है।

एक वैदिक ऋषि तो यहाँ तक कहते हैं— '**अन्नं वै प्राणाः।**'

अन्न तो मेरे प्राण है। अन्न का तिरस्कार करना, प्राणो का तिरस्कार करना है।

इस प्रकार जूठन छोडना भारतवर्ष मे हमेशा से अपराध समझा जाता रहा है। हमारे प्राचीन महर्षियो ने उसे पाप माना है।

जूठन छोडना एक मामूली बात समझी जाती है। लोग सोचते हैं कि आधी छटांक जूठन छोड दी तो क्या हो गया? इतने अन्न से क्या बनने-बिगडने-वाला है? परन्तु यदि इस आधी छटांक का हिसाब लगाने बैठें, तो आँखे खुल जायेंगी। इस रूप मे एक परिवार का हिसाब लगायें तो साल भर मे इक्यानवे पौंड अनाज देश की नालियो मे बह जाता है। अगर ऐसे पाँच हजार परिवारो मे जूठन के रूप मे छोडे जानेवाले अन्न को बेच दिया जाए तो बारह सौ आदमियो के लिए राशन मिल सकता है।

यह विषय इतना सीधा-सा है कि उसे समझने के लिए वेद और पुरान के पन्ने पलटने की आवश्यकता नही है। आज युग का तकाजा है कि थाली मे जूठन के रूप मे कुछ भी न छोडा जाय। न जरूरत से ज्यादा लिया ही जाय और न जबरदस्ती परोसा ही जाय। यही नही, जो जरूरत से ज्यादा देने-लेने वाले हैं, उनका खुलकर विरोध किया जाय और उन्हे सभ्य-समाज मे निंदित किया जाय।

ऐसा करने मे न तो किसी को कुछ त्याग ही करना पडता है और न किसी को कोई कठिनाई ही नही उठानी पडती हैं। यही नही वल्कि सब दृष्टियो से - स्वास्थ्य की दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से और सास्कृतिक दृष्टि से - लाभ ही लाभ है। ऐसी स्थिति मे आप क्यो न यह सकल्प कर लें कि हमे जूठन नही छोडनी है और जितना खाना है, उससे ज्यादा नही लेना है। अगर आपने ऐसा किया, तो अनायास ही करोडो मन अन्न बच सकता है। उस हालत मे आपका ध्यान अन्न के महत्व की ओर सहजरूप मे आकर्षित होगा और अन्न की समस्या को सुलझाने की सूझ भी आपको स्वत प्राप्त हो जायगी।

आज राशन पर तो नियन्त्रण हो रहा है, किन्तु खाने पर कोई नियन्त्रण नही। जब आप खाने वैठते हैं तो सरकार आपका हाथ नही पकडती। वह यह नही कहती कि इतना खाओ और इससे ज्यादा न खाओ। मैं नही चाहता कि ऐसा नियन्त्रण आपके ऊपर लादा जाये। परन्तु मालूम होना चाहिये कि आप थाली मे टालकर ही अन्न को वर्वाद नही करते वल्कि पेट मे डालकर भी वर्वाद करते हैं। इसके लिए आचार्य विनोबा ने ठीक ही कहा है कि—'जो लोग भूख से—पेट से ज्यादा खाते हैं, वे चोरी करते हैं।' चोरी, अपने से है, अपने समाज से है, अपने देश से है। अपने शरीर को ठीक रूप मे बनाये रखने के लिए जितने परिमाण मे भोजन की आवश्यकता है, लोग उससे वहुत अधिक खा जाते है। उस सवका ठीक तरह रस नहीं बन पाता और इस प्रकार वह भोजन व्यर्थ जाता है। ठीक तरह चवाया जाय और इतना चवाया जाय कि भोजन लार मे मिलकर एकरस हो जाय, तो ऐसा करने से मौजूदा भोजन से आधा भोजन भी पर्याप्त हो सकता है, ऐसा कई प्रयोग करनेवालो का कहना है। अगर इस विधि से भोजन करना आरम्भ कर दे तो आपका स्वास्थ्य भी अच्छा बन सकता है और अन्न की भी वहुत वडी वचत हो सकती है।

उपवास का महत्व

अन्न की समस्या के सिलसिले मे उपवास का महत्वपूर्ण प्रश्न भी हमारे सामने है। भारत मे सदैव उपवास का महत्व स्वीकार किया गया है। खास तौर से जैन-परम्परा मे तो इसकी वडी महिमा है और आज भी वहुत से भाई-वहन उपवास किया करते हैं। प्राचीनकाल के जैन महर्षि लम्वे-लम्वे उपवास किया करते थे। आज भी महीने मे कुछ दिन ऐसे आते हैं, जो उपवास मे ही व्यतीत किए जाते हैं।

वैदिक-परम्परा मे भी उपवास का महत्व कम नही है। इस परम्परा मे, जैसा कि मैंने पढा है, वर्ष के तीन सौ साठ दिनों मे ज्यादा दिन उपवास के ही पडते हैं।

इस प्रकार जब देश मे अन्न की प्रचुरता थी और उपभोक्ताओ के पास आवश्यकता से अधिक परिमाण मे अन्न मौजूद था, तब भी भारतवर्ष मे उपवास किये जाते थे, तो आज की स्थिति मे यदि उपवास आवश्यक हो, तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है ? किन्तु आप हैं जो रोज-रोज पेट को अन्न से लादे जा रहे हैं। जड मशीन को भी एक दिन आराम दिया जाता है परन्तु आप अपने पेट को एक दिन भी आराम नही देते और निरन्तर काम के बोझ से दबे रहने के कारण वह निर्बल एव रुग्ण हो जाता है। आपकी पाचन-शक्ति कमजोर पड जाती है, तब आप डाक्टरो की शरण लेते है और पाचन शक्ति बढाने की दवाइयाँ तलाश करते फिरते हैं। मतलब यह है कि आवश्यकता से अधिक खा रहे हैं और उससे भी अधिक खाने की इच्छा रख रहे हैं। एक तरफ तो करोडो को जीवन-निर्वाह के लिए भी खाना नही मिल रहा है। देश के हजारो, लाखो आदमी भूख से तडप-तडप कर मर रहे हैं और दूसरी तरफ लोग अनाप-शनाप खाये जा रहे हैं और भूख को और अधिक उत्तेजना देने के लिए दवाइयाँ तलाश कर रहे हैं।

तो, इस अवस्था मे उपवास करना धर्मलाभ है और लोकलाभ भी है। देश की भी सेवा है और स्वर्ग का भी रास्ता है। जीवन और देश की राह में जो खदक पड गई है, उसे पाटने के लिए उपवास एक महत्वपूर्ण साधन है। उपवास करने से हानि तो कुछ भी नही, लाभ ही लाभ है। शरीर को लाभ, आत्मा को लाभ और देश को लाभ, इस प्रकार इस लोक के साथ-ही-साथ परलोक का भी लाभ हैं।

हाँ, एक बात ध्यान मे अवश्य रखनी चाहिए। जो लोग उपवास करते हैं वे अपने राशन का परित्याग कर दें। यही नही कि इधर उपवास किया और उधर राशन भी जारी रक्खा। एक सज्जन ने 'अठाई' की और आठ दिन तक कुछ भी नहीं खाया। वह मुझसे मिले तो मैंने कहा—'तुमने यह बहुत बड़ा काम किया है, किन्तु यह बताओ कि आठ दिन का राशन कहाँ है ? उसका भी कुछ हिसाब-किताब है ?' उसका हिसाब-किताब यही था कि वह ज्यो का त्यो आ रहा था और घर मे जमा हो रहा था। यह पद्धति ठीक नही है। उपवास करनेवालो को अपने आप मे प्रामाणिक और ईमानदार बनना चाहिए। अत जब वे उपवास करें तो उन्हे कहना चाहिए कि आज हमको अन्न नही लाना है। मैंने उपवास किया है तो मैं आज अन्न कैसे ला सकता हू ?

वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो जो व्यक्ति अन्न नही खा रहा है, उसका अन्न लेना चोरी है। इस कथन में कटुता हो सकती है, परन्तु सच्चाई है। अतएव उपवास करनेवालो को इस चोरी से बचना चाहिए।

अभिप्राय यह है कि प्रामाणिकता के साथ अगर उपवास किया जाय, तो देश का काफी अन्न बच सकता है और भारत की खाद्य-समस्या के हल करने मे वडा भारी सहयोग मिल सकता है। सप्ताह मे या पक्ष मे एक दिन भोजन न करने से कोई मर नही सकता, उलटा मरनेवाले का जीवन बच सकता है। इससे आत्मा को भी वल मिलता है, मन को भी वल मिलता है और आध्यात्मिक-चेतना जागृत होती है। इस प्रकार आपके एक दिन का भोजन छोड देने से लाखो लोगो को खाना मिल सकता है।

गो-पालन

किसी समय भारत मे इतना दूध था कि लोगो ने स्वय पिया, दूसरो को पिलाया, अपने पडौसियो को बाँटा। कोई आदमी दूध के लिए आया और उसे दूध न मिला, तो यह एक अपराध माना जाता था। भारत के वे दिन ऐसे थे कि किसी ने पानी माँगा तो उसे दूध पिलाया गया। विदेशियो की कलमो से भारत की यह प्रशस्ति लिखी गई है कि भारत मे किसी दरवाजे पर आकर यदि पानी माँगा तो उन्हे दूध मिला है। एक युग था, जव यहाँ दूध की नदियाँ वहती थी।

परन्तु आज ? आज तो यह स्थिति है कि किसी वीमार व्यक्ति को भी दूध मिलना मुश्किल हो जाता है। आज दूध के लिए पैसे देने पर भी दूध के वदले पानी ही पीने को मिलता है। और, वह पानी भी दूषित होता है, जो दूध के नाम से देश के स्वास्थ्य को नष्ट करता है, वह दूध कहाँ है ?

गायो के सम्वन्ध मे वात चलती है, तो हिन्दू कहता है—'वाह! गाय हमारी माता है। गाय मे तैंतीस कोटि देवताओ का वास है। गाय के सिवाय हिन्दू धर्म मे और है ही क्या ?'

और जैन अभिमान के साथ कहता है—'देखो हमारे पूर्वजो को, एक-एक ने हजारो-हजारो और लाखो-लाखो गायें पाली थी।'

इस प्रकार, क्या वैदिक और क्या जैन, सभी अपने वेदो, पुराणो और शास्त्रो की दुहाइयाँ देने लगते हैं। किन्तु जव उनसे पूछते हैं—तुम स्वय कितनी गायें पालते हो, तो दाँत निपोर कर रह जाते हैं। कोई उनसे कहे कि तुम्हारे पूर्वज गायें पालते थे, तो उससे आज तुम्हे क्या लाभ है ?

तो जिस देश मे गाय का असीम और असाधारण महत्व माना गया, जिस देश ने गाय की सेवा को धार्मिक रूप तक प्रदान कर दिया, जिस देश के एक-एक गृहस्थ ने हजारो-लाखो गायो का सरक्षण और पालन-पोपण किया और जिस देश के अन्यतम महापुरुप कृष्ण ने अपने जीवन-व्यवहार के द्वारा गोपालन

की महत्वपूर्ण परम्परा स्थापित की, जिस देश की सस्कृति ने गायो के सम्वन्ध से उच्च से उच्च और पावन से पावन भावनाएँ जोडी, वह देश आज अपनी सस्कृति को, अपने धर्म को और अपनी भावना को भूलकर इतनी दयनीय दशा को प्राप्त हो गया है कि वह वीमार वच्चो को भी दूध नही पिला सकता।

दूसरी ओर अमेरिका है, जिसे लोग म्लेच्छ देश तक कहा करते है और घृणा वरपाया करते हैं। आज उसी अमेरिका मे प्राप्त होनेवाले दूध का हिसाव लगाया गया है, तो पाया गया है कि वहाँ एक दिन मे इतना दूध होता है कि तीन हजार मील लम्वी, चालीम फुट चौडी और तीन फुट गहरी नदी दूध से पाटी जा सकती है।

हमारे सामने यह वडा ही करुण प्रश्न उपस्थित है कि हमारा देश कहाँ से कहाँ चला गया है ? यह देवो का देश आज किस दशा मे पहुच गया है ? देश की इम दयनीय दशा को दूर करके यदि समस्या को हल करना है, तो उसे सस्कृति और धर्म का रूप देना होगा। इन्सान जव भूखा मरता है, तो मत समझिए कि वह भूखा रह कर यो ही मर जाता है। उसके मन मे घृणा और हाहाकार होता है, और जव ऐसी हालत मे मरता है, तो देश के निवासियो के प्रति घृणा और हाहाकार लेकर ही जाता है। वह ममाज और राष्ट्र के प्रति एक कुत्सित भावना लेकर परलोक के लिए प्रयाण करता है और खेद है कि हमारा देश आज हजारो मनुष्यो को इसी रूप मे विदाई देता है। किन्तु प्राचीन समय मे ऐसी वात नही थी। भारत ने मरनेवालो को प्रेम और स्नेह दिया है और उनसे प्रेम और स्नेह ही लिया है। उनसे घृणा नही ली थी, द्वेप और अभिशाप नही लिया था।

आप चाहते हैं कि भारत से और मारे विश्व से चोरी और झूठ कम हो जाय। किन्तु भूख की समस्या को सन्तोपजनक रूप में हल किए विना यह पाप किम प्रकार दूर किया जा सकता है ? आज व्यसन से प्रेरित होकर और केवल चोरी करने के अभिप्राय से चोरी करनेवाले उतने नही मिलेंगे, जितने अपनी और अपनी स्त्री तथा वच्चो की भूख से प्रेरित होकर, सव ओर से निरुपाय होकर, चोरी करनेवाले मिलेंगे। उन्हे और उनके परिवार को भूखा रखकर आप उन्हे चोरी करने से कैसे रोक सकते हैं ? धर्मशास्त्र का उपदेश वहाँ कारगर नही हो सकता। नीति की लम्वी-चौडी वाते उन्हे पाप से रोकने मे ममर्थ नही हैं। नीतिकार ने तो साफ-साफ कह दिया है—

"वुभुक्षित किं न करोति पापम् ?
क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति।"

भूखा क्या नही कर गुजरता ? वह झूठ वोलता है, चोरी करता है, हत्या

कर बैठता है, दुनिया भरके जाल, फरेब और मक्कारियाँ भी वह कर सकता है।

इसलिए मैं कहता हू कि भूख की समस्या का धर्म के साथ वहुत गहरा सम्वन्ध है और इस समस्या के समाधान पर ही धर्म का उत्थान निर्भर है।

इस अहिंसा के देश मे

आप जानते हैं कि भारत मे आज क्या हो रहा है? जैन तो अहिंसा के उपासक रहे ही हैं, वैष्णव भी अहिंसा के वहुत वडे पुजारी रहे हैं, किन्तु उन्ही के देश मे, हजारो-लाखो रुपयो की लागत से बडे-बडे तालाबो मे मछलियो के उत्पादन का और उन्हें पकडने का काम शुरू हो रहा है। यही नही, धार्मिक स्थानो के तालावो मे भी मछलियाँ उत्पन्न करने की कोशिश की जा रही है। यह सब देखकर मैं सोचता हू कि आज भारत कहाँ जा रहा है? आज यहाँ हिंसा की जड जम रही है और हिंसा का मार्ग खोला जा रहा है।

अगर देश की अन्न की समस्या हल नही की गई और अन्न के विशाल सग्रह काले बाजार मे बेचे जाते रहे, तो उसका एकमात्र परिणाम यही होगा कि मासाहार बढ जायगा। हिंसा का ताण्डव होने लगेगा और भगवान महावीर और बुद्ध की यह भूमि रक्त से रजित हो जायगी। इस महापाप के प्रत्यक्ष नही तो परोक्ष भागीदार वे सभी लोग बनेंगे, जिन्होंने अन्न का अनुचित सग्रह किया है, अपव्यय किया है और चोरबाजार किया है। दुर्भाग्य से देश मे यदि एक बार मासाहार की जड जम गई, तो उसका उखाडना बडा कठिन हो जायगा। गरचे भरपूर अन्न आ जायगा, सुकाल आ जायगा, फिर भी मासाहार कम नही होगा। मास का चस्का बुरा होता है और लग जाने पर उसका छूटना सहज नही। अतएव दीर्घदर्शिता का तकाजा यही है कि पानी आने से पहले पाल बांध ली जाए, बुराई पैदा होने से पहले ही उसे रोक दिया जाय।

भोजन का पाचनकाल :—

पदार्थ	घटे	पदार्थ	घटे
उवले चावल	१	कच्चा-दूध	२।
जो	२	मक्खन	३
सावूदाना	१॥।	आलू	३॥
दूध	२	गोभी	४
		गाजर, मूली, मटर	३
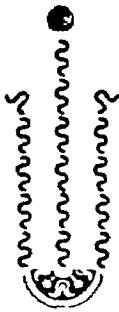
शरीर की तरह हमारे मन और आत्मा को भी आहार की आवश्यकता होती है। आत्मा की खुराक सद्गुणो एव सद्-आचरणो से प्राप्त होती है। यही खुराक मनुष्य जीवन को उज्ज्वल से उज्ज्वलतर एव उज्ज्वलमय वनाती है।

मन और आत्मा का आहार

—चन्दनमल 'चाद'

[हिन्दी के प्रवुद्ध कवि और साहित्यकार]

पेट को ठूस-ठूस कर भोजन देनेवाले मनुष्य मन और आत्मा के आहार की कल्पना भी नही करते होंगे। भला मन को कैसी भूख ? कैसा आहार ? लेकिन यह सही है कि शरीर की तरह हमारे मन और आत्मा को भी खुराक चाहिए। शरीर स्थूल है अत. स्थूलरूप मे भोजन देना पडता है किन्तु मन और आत्मा की भी भूख होती है। यदि हम मानसिक भूख और आत्मा की प्यास की उपेक्षा करें तो हमारा सवगीण विकास नही होगा। शरीर का पोषण दैहिकशक्ति भले ही वढाए, किन्तु मानसिक और आत्मिक बल के लिए सूक्ष्म आहार की जरूरत होती है। जिसका मन मजवूत नही, आत्मा मे वल नही वह शरीर से सुदृढ होते हुए भी कमजोर ही होगा।

साधारणत मनुष्य इस पर चिन्तन नही करता किन्तु सन्त, साधक और जीवन-विकास के इच्छुक व्यक्ति मन और आत्मा की खुराक के प्रति सदा सचेष्ट रहते हैं। धर्म, दर्शन, ज्ञान एव चरित्र के माध्यम से आत्मा और मन की भूख प्यास की पूर्ति कर उसे वलवान बनाते हैं। जगल, कदराओ और गुफाओ मे तपस्या करनेवाले ऋषि, महीनो तक निरतर उपवास करनेवाले सत शरीर की स्थूल आहार की उपेक्षा करते हुए मन और आत्मा को आहार प्रदान करते रहते हैं। शरीर से कृश होने पर भी उनके

चेहरे का तेज प्रसन्नता और वाणी की पवित्रता लोगो को अभिभूत कर लेती है इसके पीछे मन और आत्मा का बल ही होता है ?

मन और आत्मा का आहार क्या होता है, कैसा होता है, और इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? यह हमारे लिऐ जानना जरूरी है। मन का आहार सदविचार या सद्चिंतन है जिसे हम उत्तम कोटि के साहित्य, सत्सग एव महापुरुषो के प्रेरणाप्रद विचारो से प्राप्त कर सकते हैं आत्मा की खुराक सद्गुणो एव सद्आचरणो से प्राप्त होती है । शरीर, मन और आत्मा इन तीनो का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। मन के विचार शरीर से क्रिया के रूप मे अभिव्यक्त होते हैं और उन विचारो तथा क्रियाओ का प्रभाव आत्मा की उज्ज्वलता अथवा मलिनता के रूप मे होता है। जिसका मन पवित्र है, चिन्तन सद् है उसकी क्रिया भी पवित्र होगी और आत्मा भी उज्ज्वल बनेगी। इसके विपरीत जिसका मन कलुषित ट—चिन्तन असद् है उसकी क्रिया भी अपवित्र होगी फलत आत्मा मे मलिनता आयेगी। अत यह आवश्यक है कि हम अपने मन और आत्मा को ऐसी खुराक दें जिससे उनका सही विकास हो।

मन का सही और सन्तुलित आहार सद्चिन्तन है जिसकी प्राप्ति सद् साहित्य और सत्सग से होती है। वातावरण, परिस्थिति और सगत के द्वारा मन जो ग्रहण करता है, उसी का नाम मानसिक खुराक है। यदि हम अपने मन को असद् एवं अश्लील साहित्य मे लगायें, बुरी सगत करें और असयमित-रूप से कुछ भी करने देंगे तो वह आहार हमारे मन पर ठीक वैसा ही प्रभाव डालेगा जैसा प्रभाव शरीर पर चटपटे मसालेदार आहार डालते है। सूक्ष्म रूप से हमारा मन अपना आहार ग्रहण करता ही रहता है लेकिन यह हमारा कर्तव्य है कि हम उसे सही और सन्तुलित ऐसा आहार दें, जिससे उसका सही दिशा मे विकास हो।

आत्मा और शरीर के बीच मन एक सेतु है इसलिए इस माध्यम अथवा सेतु को सबल और स्वस्थ रखना जरूरी है। आत्मा की प्यास अनन्त को प्राप्त करने, परमात्मा बनने की होती है। दुर्भाग्य से आत्मा की इस चिरन्तन प्यास का अहसास कुछ विरले व्यक्तियो को ही हो पाता है। जिसके भीतर आत्मा की प्यास जग गई उसने परमात्मा बनने की राह पकड ली। मन व आत्मा की यही प्यास महावीर और बुद्ध बनाती है। अत आत्मा की भूख और उसके आहार के लिए सतत जागरूक रहना चाहिए। मन का आहार सद्-चिन्तन सद्प्रेरणा है। यह सद्चिन्तन सद्गुणो और सदाचार के रूप मे आत्मा को

खुराक प्रदानकर उसे उज्ज्वल से उज्ज्वलतर एव उज्ज्वलमय बनाती है। कोरा ज्ञान-चिन्तन लगडा है यदि उसके साथ वैराग्यमय तदनुसार आचार नही हो। यह वैराग्यमय सदाचार ही आत्मा की खुराक है।

खेद है कि मन और आत्मा के आहार की उपेक्षा आधुनिक युग मे जान बूझकर की जाती है। हमारा मन भोग-विलास, अश्लील-साहित्य, विकृत चिन्तन एव असद् प्रेरणा रूपी आहार प्राप्त कर रहा है। दुर्भाग्य से इस चटपटे अहितकर मानसिक आहार की सुलभता भी सर्वत्र देखने मे आ रही है। वालक, किशोर एव युवा उम्र का मन इसी खुराक को ग्रहण करता जा रहा है जिसका परिणाम असन्तोप, अशाति, घृणा, कलह और कटुता के रूप मे हमारे समक्ष है। जव मन ही स्वस्थ नही हो तो आत्मा की स्वस्थता निर्मलता या उज्ज्वलता कैसे सम्भव है? सद्-साहित्य के नाम पर नई पीढी को सिने-पत्रिकाएँ, सद्चिन्तन के एवज मे समाचार-पत्र और सद्प्रेरणा के रूप मे हीरो-हिरोइनो का आदर्श प्राप्त हो रहा है।

अत आवश्यक है कि हम अपने मन और आत्मा के आहार पर विशेप ध्यान दे। यदि हमने इस दृष्टि से समय रहते समुचित ध्यान दिया तो ठीक है वरना खुदा ही मालिक है।

'अणुव्रत सभागार'

[राजहस विल्डिग, ८८, मेरीन ड्राइव, वम्वई–२]

गिरता हुआ स्वास्थ्य और वढते हुए रोग विश्वभर की महत्वपूर्ण समस्याओ मे से एक है। इसके लिए योग्य आहार के प्रति दुर्लक्ष्य ही कारणभूत है। गर्भावस्था मे ही व्यक्ति के अच्छे स्वास्थ्य की नीव डाली जा सकती है। लेकिन एक भावी नागरिक के सुखमय जीवन का आधार अपने आहार पर है, इस महान सत्य की ओर माताओ का ध्यान ज्यादा नही जाता। इसी कारण अपनी रुचि के अनुसार आहार लेते रहने की वजह से वे खुद भी अनेक रोगो का शिकार होती रहती है और बालक भी जन्म लेते ही इजेक्शन और दवाइयो पर पलने लगते हैं। इस स्थिति का निवारण करने के लिए श्रेष्ठ उपाय यही है कि माताएँ गर्भावस्था मे अत्यन्त जागृतिपूर्वक आहार विषयक नियमो का पालन करती रहे।

गर्भावस्था मे आहार : उपयोगी सुझाव

—श्रीमती सुमित्रा प्र० टोलिया

[सगीत विशारद, वर्धमान भारती बेंगलोर की सहनिर्देशिका]

●

माता का दूध अमृत के समान माना जाता है। लेकिन आज के युग के अधिकतर बालक प्रकृति के आशीर्वाद समान इस दूध से वचित रहते हैं, क्योकि माता ने उन नियमो का पालन नही किया होता है, जिससे वह सुगमतापूर्वक वालक को यह अमृत पर्याप्त मात्रा मे दे सके।

हमारे महान मानस-शास्त्रियो का कहना है कि जिन वच्चो को माँ के प्यार के प्रतीक दूध नही मिला, जो कृत्रिम दूध पर पले हैं, वे वालक शुरू से ही क्रूर व झगडालू होते हैं। कई निराशावादी व्यक्तियो की इस प्रकार की मन स्थिति के लिये भी इस अभाव को कारण माना जाता है। इस तरह न

केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिये, वरन मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी माता का दूध वालक के लिए अनिवार्य है।

सामान्यत गर्भावस्था मे हरेक स्त्री कम या ज्यादा निर्वलता का अनुभव करती है। इसे दूर करने के लिए डाक्टर लोग उसे अण्डे मास इत्यादि लेने को कहते हैं। लेकिन आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक भी मानते हैं कि ये चीजे नुकसान ही करती हैं। मासाहारी मा का मन न सात्विक हो सकता है न उसके गर्भ में पले वालक का।

सामान्यत गर्भावस्था मे स्त्री कब्ज की शिकायत करती हैं। भ्रूण के अतिरिक्त दवाव की वजह से वडी आत अपना काम स्वाभाविक रूप मे नही कर सकती। इस कब्ज को दूर करने के लिये काली मुनक्का का (द्राक्ष) प्रयोग करना चाहिए। रात के समय वीस-पचीस काली मुनक्का भिगोकर रख देनी चाहिए। सुवह दातौन कर लेने के वाद खाली पेट इसका पानी पी लेना चाहिए और वीज निकालकर मुनक्का खा लेना चाहिए। हर रोज दूध मे चार-पाच खजूर या दो अजीर उवालकर लेने से भी कब्ज दूर होता है।

सगर्भा नारी को एक साथ दो शरीरो के गठन का काम करना पडता है। इसलिए उसके भोजन मे शरीर के लिए आवश्यक सभी तत्वो का समावेश किया जाना चाहिये। लेकिन इस अवस्था मे पाचन प्रणाली कुछ शिथिल हो जाती है। अत. पौष्टिक भोजन खिलाने की इच्छा से अगर उसे भारी भोजन खिलाया जाय तो उससे नुकसान ही होगा। इसलिए गर्भवती स्त्री का भोजन सभी आवश्यक तत्वो से युक्त होते हुए भी आसानी से हजम होने वाला ही होना चाहिए।

वालक के अस्थिगठन के लिए कैल्शियम और फास्फोरस की आवश्यकता होती है। अगर माता के भोजन मे ये तत्व पर्याप्त मात्रा मे न रहे तो गर्भस्थ शिशु माता के शरीर मे से इन तत्वो को ग्रहण करने लगता है जिससे नारी के दात और हड्डिया कमजोर होती जाती है। इनकी प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है दूध। ताजा, एकवार गरम किया हुआ दूध गर्भिणी को रुचि के अनुसार जरूर पीना चाहिए। इन तत्वो के अलावा दूध मे प्रोटीन, कार्वोहाइड्रेट, अल्पल्प मात्रा मे लौह इत्यादि भी होते हैं। दूध के स्थान पर लिए जानेवाले चाय, काफी जैसे पेय गम्भीर नुकसान करते हैं। आयोडीन जिसके अभाव से कभी-कभी वालक के अग विकृत हो जाते हैं उसकी प्राप्ति के साधन हैं गाजर, मक्खन और हरी सब्जिया।

गर्भवती स्त्रियाँ प्राय फीकी पड जाती हैं क्योंकि गर्भ मे स्थित बालक मा के शरीर मे से लौह खीच लेता है। लौह की इस कमी को दूर करने के लिये दूध के साथ खजूर लेना बहुत लाभदायी होता है। इनके अलावा पालक, धनिया, पुदीना भी लोह-प्राप्ति के सरल और सस्ते साधन हैं।

विटामिन 'ए' गाजर, मूली, आलू, शलगम इत्यादि मे से मिलता है। विटामिन 'बी' हाथ के कूटे हुए चावल, हरी साग-सब्जी, दाल, टमाटर मूँगफली इत्यादि मे से मिलता है। रक्त मे बढते हुये अम्लत्व को रोकने के लिये बीट, गाजर, खट्टे फल लेना आवश्यक है।

विटामिन 'इ' के अभाव मे माता दूध की पूर्ति ठीक से नही कर पाती। यह दूध सब्जिया, पालक, गुड, मू ग की दाल इत्यादि मे से मिलता है। प्रथम छह मास तक माता को शर्करा जातीय पदार्थ लेने चाहिये, क्योकि बालक को इसकी बहुत आवश्यकता होती है। मासाहार के स्थान पर शहद, मीठे फल, गन्ना और खजूर इसके उचित साधन हैं, साथ साथ ये सस्ते भी होते हैं।

गर्भवती महिलाओ को चाय, काफी, मैदे से बनी चीजे, घी-तैल मे तली हुई चीजें, सभी का पूर्णतया त्याग करना चाहिये। पोषण के नाम पर इनसे कुछ भी प्राप्त नही होता। औषधि के रूप मे लिया गया कृत्रिम विटामिन भी उतना लाभकारी नही होता जितना शाक-सब्जी या फलो में से प्राकृतिक रूप मे प्राप्त विटामिन।

[—अनन्त, १२, केम्ब्रिज रोड, बेंगलोर—८]

खाद्य-सयम—कई वर्जनाए गढ़ ली हैं हमने। कहीं यह अव्यावहारिक व अयथार्थ तो नहीं होता जा रहा है ?

खाद्य-संयम : कितना व्यावहारिक, कितना यथार्थ ?

—मुनिश्री नगराजजी, डी० लिट्
[आचार्यश्री तुलसी के विद्वान् शिष्य]

भारतवर्ष मे खाद्य-सयम का विचार बहुत चिरन्तन है। ऋषि, मुनि, योगी व आयुर्विद समय-समय पर अपना अधीत व अनुभूत ज्ञान समाज को देते रहे है। भारतीय समाज इस दिशा मे बहुत आगे बढा है। लाखो लोग मास व मदिरा से सर्वथा विरत हो चुके हैं। शाकाहार मे भी अनेक सीमाए निश्चित हुई हैं, विशेषत जैनसमाज मे। लहसुन-प्याज न खाना, बीज बाहुल्यवाली वनस्पति न खाना, 'सचित' वनस्पति न खाना, हरी शाक-सब्जी न खाना। घृत, दूध, दही, मिष्ठान्न आदि न खाना। कुल मिलाकर इतने पदार्थो से अधिक न खाना, इतनी बार से अधिक न खाना, रात्रि-भोजन नही करना आदि आदि। अध्यात्म-साधना और योगाभ्यास के शिविर लगते हैं, उनमे परम सात्विक भोजन की शर्त पहली होती है। मिर्च, मसाले-वर्जित, सादगी व अल्पव्यय के नाम पर बादाम, काजू किसमिस, नारगी, मोसमी, सेम, अगूर वर्जित। बस, शाक, रोटी चावल और सीमित-सा दूध या दही, यह हुआ सात्विकता व निरोगता का स्टेण्डर्ड भोजन। देश के अनेक साधक व योग-चिन्तक इस सात्विकता को और भी बढाने की गु जाइश देखते हैं। महात्मा गाधी ने दूध को मनुष्य के भोजन से हटा देने की भी हिदायत की। उन्होने अपक्व अन्न पर जी सकने के भी प्रयोग किए थे। खाद्य-सयम के विकास की इसी शृ खला मे आज भी अनेक शिविर-सचालक कुछ-न-कुछ और

छोट देने की हिदायत समय-समय पर मागते ही रहते हैं। लगता है, खाद्य-सयम मे यह अतिवाद हो रहा है। सात्विकता व निरोगता के नाम पर अनेक अव्यावहारिकताएं व अयथार्थताएं पनपाई जा रही हैं। अधिक भोजन मे अनेक दोष हैं, यह वात तो हम जानते हैं पर अल्प व अपोषक भोजन भी हमारे शरीर पर क्या-क्या कुप्रभाव डालता है, यह हम भूले रहते हैं। अपर्याप्त और अपोषक भोजन जीवनी-शक्ति को क्षीण करता है। रोग-निवारक शक्ति को समाप्त करता है। शरीर में अत्यावश्यक पदार्थों की कमी व विकृति होने पर एक के वाद एक वीमारी पैदा होने लगती है। परिणामत असमय मे ही अधापन वहरापन, लगडापन, अशक्ति, रक्ताल्पता आदि रोग आ घेरते हैं। पिछले दिनो ही दैनिक अखवारो मे पढने को मिला कि पोषक भोजन के अभाव में लाखो वच्चे अपग हो जाते हैं व काल-कवलित हो जाते है। अस्तु, यह तो पोषक भोजन न पा सकने की विवशता की वात हुई, पर खाद्य-सयम के नाम पर समाज को पोषक तत्वो से वचित रखने का व अकाल मृत्यु की ओर धकेलने का अभियान तो सचमुच ही वौद्धिक दयनीयता का सूचक है।

कहा जा सकता है, खाद्य-सयम की वात तो मोक्ष प्राप्ति के लिए है। शारीरिक पक्ष को तो इसमें गौण करना ही होगा। यदि ऐसी ही वात है तो फिर समागत रोगो के निवारणार्थ वैद्यो व डाक्टरो की शरण क्यो ली जाती है ? दवा, इजेक्शन व आपरेशन आदि मे हजारो रुपये क्यो वहाये जाते हैं ? अध्यात्म के नाम पर शरीर-पक्ष को सर्वथा गौण ही करना है तो फिर रोग से ग्लानि क्यो तथा मृत्यु से भय क्यो ? अस्तु, अध्यात्म-साधना का यह व्यवहार्य मार्ग नही कि पहले रोग पैदा करने की स्थिति वनाई जाये और फिर उपचार के लिए दौड-धूप की जाये। खाद्य-सयम अच्छा है, पर, उसके साथ-साथ विवेक व सम्वन्धित विषय के परिज्ञान की पूरी-पूरी आवश्यकता रहती है, और वह भी खासकर धर्म-गुरुओ को, योग-प्रशिक्षको को व शिविर-सचालको को। व्यक्तिगत रूप से कोई कुछ भी साधना करे, वह एक वात है, पर, जो लोग सहस्रो लोगो का मार्ग-दर्शन करते हैं, उपदेश करते हैं, उन्हे तो अपने विषय का सर्वांगीण ज्ञान होना ही चाहिए। ऐसे मामलो मे वहुत वार 'अल्प विद्या भयकरी' वाली वात चरितार्थ होती देखी जाती है। कोई चीनी को जहर वताकर उसके परित्याग का अभियान चलाते हैं, तो कोई नमक को हानिकारक वताकर उसके परित्याग का वीड़ा उठाते है। अस्तु, कहने का तात्पर्य यह नही कि खाद्य-सयम का विकास आवश्यक नही है या जो कुछ अव तक विकास हुआ है वह सारा ही अनुचित है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि खाद्य-सयम की शृ खला में अतिवाद, अयथार्थवाद और अव्यावहारिकतावाद जैसे दोष जो आये

हैं, वे भी अनुचित हैं तथा जो और लाये जा रहे हैं वे भी अध्यात्म और सयम को प्रभावशाली बनानेवाले प्रतीत नही होते। अध्यात्म को समाज-निरपेक्ष और राष्ट्र-निरपेक्ष व स्वास्थ्य-निरपेक्ष बनाकर हम उसके साथ न्याय नही करते।

वर्तमान युग विज्ञान का है। इस युग ने अनेको शास्त्रीय, पौराणिक व परम्परागत मान्यताओ को बदल दिया है। स्वास्थ्य-विज्ञान व शरीर-विज्ञान विषयक धारणाए भी इसका अपवाद नही रही है। चिरन्तन धारणाओ को ज्यो का त्यो मानते रहना व उन पर चलते रहना खतरे से खाली नही है। हानि न भी हो तो भी अज्ञान का पोषण तो उससे होता ही है। योग-विषयक ग्रन्थ बताते हैं—प्राणायाम करते समय श्वास को नाभि तक ले जाना चाहिए। स्थिति यह है कि श्वास-सम्बद्ध वायु को नाभि तक पहुंचाने का कोई रास्ता है ही नही, प्राथमिक शालाओ के बच्चे भी जानते होगे कि वह वायु फेफडो तक ही जा सकती है और उसका स्थान नाभि से बहुत ऊचा ही रह जाता है। रोहे (ट्रेकोमा) आखो की एक व्यापक बीमारी है। आयुर्वेद के अनुसार उसका सम्बन्ध पेट से है। मिर्च-मसाला खाना उसमे सर्वथा वर्जनीय है। नवीन प्रयोगात्मक ज्ञान ने निर्विवाद रूप से स्पष्ट कर दिया है कि इस बीमारी का सम्बन्ध छूत से व धूप, धूलि व धुए आदि से ही है। इस धारणा के अनुसार रोहे के बीमारो को सदा-सदा के लिए मिर्च-मसाले छोड देना कुछ भी अर्थ नही रखता। मिर्च छोड देना बुरा नही है, पर, अज्ञानवश ही ऐसा करना पडता रहे, यह एक हास्यास्पद स्थिति है।

खाद्य-पदार्थो के गुण-दोष के विषय मे भी आख मूद कर पुरानी लकीर पर चलते रहना बुद्धिमानी नही है। खाद्य-पदार्थों से सम्बद्ध समस्त पुरातन मान्यताओ को आज के ज्ञान विज्ञान की कसौटी पर कस लेना अनिवार्य लगता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियो एव आचार्यों ने शरीरविज्ञान के विषय मे हमे बहुत कुछ दिया है। चरक, सुश्रुत जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ दिये हैं। उस युग मे और सीमित प्रयोग साधनो मे इतना दे पाना भी कम बात नही है। पर वर्तमान वैज्ञानिक साधनो ने एव प्रयोगो ने शरीर के अणु-अणु को जितना जाना व परखा है वह कुछ और ही बात है। अत प्राचीन मान्यताओ एव धारणाओ को यथार्थ की तुला पर एक बार और तोल करके ही हम उनके प्रति आश्वस्त हो सकते हैं।

प्राचीन या अर्वाचीन शरीर-विज्ञान की तह मे जाना सर्व-साधारण का विषय नही है, पर, आधुनिक शरीर-विज्ञान की ए-बी-सी-डी के रूप मे हम इतना ही जान लें कि—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फैट, मिनरल, साल्ट्स, विटा-

मिन्म और जल मे शरीर के आधारभूत तत्व हैं और अमुक-अमुक आहार सामग्री से इनकी पूर्ति होती है। साथ ही साथ यह भी जान लें कि किस कोटि का परिश्रम करने वाले व्यक्ति के लिए कितनी कैलोरीज (उर्जा इकाईया) प्रतिदिन व्यय होती है तो हम खाद्य-सयम के प्रयोगो को अधिक उपयोगी व व्यवहार्य वना सकते हैं। ऐसा करके हम अध्यात्म के साथ भी न्याय कर सकते हैं और शरीर के साथ भी।

मनुष्य की औसतन आयु वढाने का उपक्रम सारे विश्व मे मान्य हो चला है। अमेरिका मे मनुष्य की औसत आयु ७० वर्ष तक पहुच चुकी है। भारत मे भी शिक्षा-समृद्धि व चिकित्सा-विज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ वहा की औसतन आयु २६ से वढकर ४६ वर्ष तक पहुच गई है, ऐसा कहा जाता है। सर्व साधारण को पोपक खुराक सुलभ कराकर इस औसत को और ऊपर उठाने का अभियान चालू है। इस स्थिति मे खाद्य-सयम के नाम पर अवैज्ञानिक व अव्यवहार्य प्रशिक्षण दे देकर वढती हुई औसतन आयु को अल्पता की ओर ले जाने का उपक्रम कभी अराष्ट्रीय भी घोपित हो सकता है।

भारतवर्ष मे यह भी एक प्रचलित धारणा है कि कम से कम पदार्थ खाना ही स्वास्थ्य का मूल-मन्त्र है। अधिक प्रकार के पदार्थ खाना ही वीमारियो का मूल कारण है। इसी धारणा के आधार पर कुछ लोग केवल दूध पर ही रहते हैं तो कुछ लोग केवल फलो पर ही। यह तरीका भी वैज्ञानिक नही है, क्योकि शरीर में अनेकानेक तत्व हैं और उनकी पूर्ति अनेकानेक पदार्थों से ही सम्भव हो सकती है। दूध सर्वाधिक उपयोगी पदार्थ है, यह अकेला ही शरीर की अनेकनेक आवश्यकताए पूरी कर देता है, पर, सव आवश्यकताओ को पूरी कर देने मे यह भी पर्याप्त नही है। दूध मे आयरन (लोहा) का अश तनिक भी नही है। लम्वे दिनो तक केवल दूध पर रहने वाले व्यक्ति का रक्ताल्पता (एनिमिया) और तद्जन्य घातक वीमारियो का शिकार होना निश्चित-सा ही है। वच्चा मा का दूध पीता है, उसमे फिर भी लोहे का अश है। यही कारण है कि केवल मा के दूध पर निर्भर रहते हुए भी वच्चे का सर्वांगीण विकास हो जाता है। यही स्थिति केवल फलाहार पर लम्वे दिनो तक रहने की है। इससे भी प्रोटीन आदि अनेको पदार्थो की पर्याप्त पूर्ति नही हो पायेगी और तद्जन्य अल्पता से सम्वन्धित रोगो से व्यक्ति को आतकित होना होगा। अस्तु, वर्तमान शरीर विज्ञान के अनुसार सन्तुलित भोजन 'वेलेन्स्ड-डाइट' ही शरीर की आवश्यकताओ का सम्यक् प्रकार से पूरक हो सकता है। सन्तुलित भोजन का तात्पर्य—न वहुत अधिक खाने की वात, तो न वहुत कम ही खाने की वात—सामान्य भोजन और पर्याप्त पोपक। सन्तुलित भोजन की तालिका नीचे दी

जा रही है, मध्यम कोटि का परिश्रम करने वाले लोग लगभग २८०० कैलोरीज प्रतिदिन व्यय करते हैं। तालिका क्र०-१ मे उसी अनुपात से खाद्य पदार्थों का विभागीकरण किया गया है कि व्यक्ति प्रतिदिन २८०० केलोरीज प्राप्त भी करता रह सके और शरीर के आधारभूत पदार्थ भी उपयुक्त स्थिति मे रह सके।

(तालिका न० १ देखिये पृष्ठ २८० पर)

तालिका १

	आटा या चावल	दाल	सब्जियां	मक्खन-घी-तेल या वेजीटेबिल घी	शक्कर या गुड	दूध या दही	सलाद या मौसमी फल	कुल योग
दैनिक मात्रा औंस	१४	४	६	२	२	१०	४	४२
छटाक	७	२	३	१	१	५	२	२१
कैलोरीज	१४००	४००	९०	५१२	२२८	२००	६०	२८९०
प्रोटीन-ग्राम	४७·६	२४·४	३·०	०·०	० ०	९ ०	५·४	८६ ४
कारबोहाइड्रेट-ग्राम	२८७ ०	६६ ०	४ ६	०·०	५४ ०	१४ ०	२० ०	४४५·६
वसा-ग्राम	७·०	२ ८	० ०	५६·२	० ०	१०·०	०·०	७६ ०
विटामिन-ए (I.u)		१६००	३०००	७००·००	०·०	५१ ०	१५०००	५८०
विटामिन-डी (I.u)		०·०	०·०	३४२·०	० ०	५० ०	२०	४१२
विटामिन-बी १ (मिली ग्राम)	२·१	४ ८	०·९	०·०	०·०	१ ०	०·६	९ ५
विटामिन-बी २ (मिली ग्राम)	०·८४	०·३२	०·९	०·०	०·०	० ४	० ६	३·०६
नियासिन (मिली ग्राम)	११·२	२·०	१ ९	०·०	० ०	०·०	१ २	१९ ३
विटामिन-सी (मिली ग्राम)	०·०	४·०	३६·०	०·०	० ०	० ०	३४ ०	७४ ०
कैलशियम-ग्राम	०·१४	०·१८	० १२	० ०	०·०	० ४	०·९	१ ७५
आइरन-मिलीग्राम	२८·०	१० ४	१ २	० ०	० ०	० ०	० ८	४० ४

खाद्य-पदार्थों की उपयोगिता और अनुपयोगिता के विषय मे प्रचलित धारणाओ और नवीन निष्कर्षों मे कही काफी अन्तर आ गया है । उदाहरणार्थं– घृत को तो स्वास्थ्य के लिए सब तरह से गुणकारी तथा तेल को सब तरह से अवगुणकारी माना जाता रहा है । वास्तव मे ये दोनो ही कथन अतिरजित सिद्ध हुए हैं । घी भी अवगुणो से परे नही है और तेल भी गुणो से खाली नही है । अपनी अपनी विशेषताओ से दोनो एक दूसरे से कम नही ठहरते ।

मूग की दाल व अरहर की दाल मे गुणो की दृष्टि से बडा अन्तर समझा जाता है पर उनमे मिलनेवाले आधारभूत पदार्थों की दृष्टि से दोनो लगभग समान ही है ।

गवार की फली को बहुत ही तुच्छ एव अवगुणकारी माना जाता रहा है पर सिद्ध यह होता है कि बहुत सारी बातो मे आवले से मुकाबला लेती है ।

मिर्च-मसालो को अतीव हानिकारक एव निरुपयोगी बताकर उनसे पूरा परहेज रखने का प्रशिक्षण भी सर्व-साधारण को आजकल स्थान-स्थान पर दिया जाता है, पर, सामान्यरूप मे प्रयुक्त मिर्च-मसाले भी हानिकारक है, ऐसा प्रमाणित नहीं होता अपितु अधिकाश मसाले सीमित मात्रा मे आवश्यक एव उपयोगी प्रमाणित होते हैं ।

तालिका—२ अनेक पदार्थों की वास्तविकता पर प्रकाश डालती है ।

(तालिका न० २ पृष्ठ २८२ पर देखिए)

तालिका २

खाद्य-पदार्थों का प्रति औंस सविभाग

खाद्य सामग्री	कैलोरिज	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	कारबोहाइड्रट (ग्राम)	खनिज-पदार्थ कैलशियम (मि ग्रा)	आइरन (मि ग्रा)	विटामिन केरोटीन विटा.ए	एव बी १ (मि.ग्रा)	बी२ (मि ग्रा)	नियासिन (मि ग्रा)	विटा सी (मि ग्रा)
१. खाद्य पदार्थ											
गेहू का आटा	१००	३ ४	० ५	२० ५	११'०	२ ०	०	० १५	० ०६	० ८	०
बाजरा	१०२	३ ३	१ ४	१६ १	१४ ०	२ ५	०	० ११	० ०४	० ६	—
चावल	१००										
२. दालें :											
चना (छिलके सहित)	१०३	४ ६	१'५	१७'४	५४'०	२'८	६०	०'०८	० ०६	० ७	—
चना (छिलके रहित)	१०६	६'४	१ ५	१६ ४	२०'०	२'५	—	—	—	—	—
उडद की दाल	६६	६'८	० ४	१७'१	६०'०	२ ८	१८	०'०१	० १२	०'६	—
मूग की दाल	६५	६ ८	० ४	१६'१	४०'०	२'४	४५	०'१३	—	०'६	—
अरहर की दाल	६५	६'३	० ५	१६'२	४० ०	२ ५	६२	०'१३	—	०'७	—

३. दूध व दूध से बने पदार्थ											
मक्खन	२११	०१	२३४	०	४०	०	११४० विटा डी १७I u.	०	०	०	०
दही	२६	०६	१६	१·४	५००	—	—	—	—	—	०
गाय का दूध	१८	०६	१·०	१४	४००	—	५१	००१	०·०४	०	०
भैंस का दूध	३३	१·२	२५	१·५	६००	०	४६	—	—	—	—
४. घी व तेल											
घी	२५३	०	२८·१	०	—	—	३५० विटा डी १२I.u.	०	०	०	०
वनस्पति तेल	२५६	०	२८४	०	०	०	०	०	०	०	०
५. फल											
सेब	१२	०·१	—०	३·०	१०	०१	११	००१	लेशमात्र	०१	१
सूखी खुर्मानी	५०	१·४	—०	११·१	२६·०	१·२	१४२०	—	०·१२	०६	०
सूखा अजीर	५८	१०	—०	१३५	८१०	१·२	२६	०	०·०८	०५	०
हरे अंगूर	१७	०२	—०	४·१	५·०	०·१	१४	००१	००१	०१	१
अमरूद	१९	०४	०१	४·१	३०	०३	४२	००३	००१	०३	५२

खाद्य-सामग्री	कैलोरिज	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	कारबोहाइड्रेट (ग्राम)	खनिज पदार्थ कैलशियम (मि.ग्रा)	आइरन (मि.ग्रा)	केरोटीन विटा ए	विटामिन एव बी.१ (मि ग्रा)	बी २ (मि.ग्रा)	नियासिन (मि.ग्रा)	विटा.सी (मि.ग्रा)
नीबू	१४	० ४	•	३ १	२६.०	० ६	१२	० ०१	०	०	११
आम पका	१४	० २	०.१	३ ३	३ ०	१.३	१३६३	—	—	० १	१२
तरबूज	६	० २	०	१ ३	४ ०	० १	२४	० ०१	० ०१	०.२	३
नारंगी	१०	० २	०	२ २	१२ ०	० १	८५	० ०२	० ०१	० १	१६
पपीता	११	० १	०	२ ७	२ ०	० १	९६०	०.०१	० ०५	० १	१३
अनन्नास	१२	० १	०	३ ०	३ ०	० १	२८	० ०२	० ०२	०.२	६
केला	३०	० ३	०	७.०	३.०	०.१	२५५	० ०२	०.०१	० २	१
अनार	१८	० ५	०	४ २	३ ०	०.१	०	—	० ०३	—	५
मूली	१०	० ७	० १	१.५	२००	० ०८	—	—	—	—	—
इमली	८२	० ९	०	१९.१	४८०	३ १	२८	—	०.५	—	—
६. मेवा, सूखे फल											
बादाम	१६४	५.८	१५.२	१ १	७०.०	१ २	०	०.०६	० ०५	० ४	०
काजू	१६८	६ ०	१३.३	६ ३	१४.०	१ ४	२८	—	० ०५	० ६	०
पिस्ता	१७८	५.६	१५ १	४ ६	४०.०	३.९	६८	—	—	०.४	—
अखरोट	१५१	३ ५	१४ ६	१ ३	१७०	०.७	०	० ०८	०.०५	०.४	०

मूंगफली	१६६	८ ०	१३ ९	२·२	१७०	० ७	०	० २६	०·०८	० ०६	०
किशमिश	६७	० ३	०	१६·५	१७०	० ५	१४	० ०	०·०१	० ६	०
७ तेलयुक्त बीज											
सरसो का तेल	१५१	६ २	११ २	६·७	१४०·०	५·१	७७	—	—	११	—
८. पत्तेवाली सब्जिया											
हरा धनिया	१३	०·६	०·२	१·८	४०·०	२ ८	३३००	—	०·०२	० २	३८
हरा पोदीना	१६	१·४	० २	२·३	६०·०	४ ८	७६७	—	—	० १	—
पालक	६	० ८	०	०·७	२० ०	० ६	२०००	०·०३	० ०६	० १	१८
९ अन्य सब्जिया											
गवार की फली	१६	१ १	० १	२ ८	३७ ०	१·६	६४	—	—	—	१४
ककडी	३	० २	०	०·४	६ ०	०·१	०	० ०१	लेशमात्र	० १	३
भिण्डी	१२	० ६	० १	२ २	२५ ०	० ४	१६	० ०२	—	० २	४
आवला	१७	०·१	०	४·२	१४ ०	० ३	—	—	—	० १	१७०
परवल	५	० १	० १	० ५	८·०	०·५	—	—	—	—	—
हरे मटर	१७	१ ६	०	२ ७	४·०	०·५	१४०	० १२	०·०३	० २३	८
टमाटर	४	४ ३	०	० ७	४ ०	० १	८५०	० ०२	० ०१	० ०१	७

खाद्य सामग्री	कैलोरिज	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	कारबोहाइड्रेट (ग्राम)	खनिज पदार्थ केलशियम (म ग्रा)	आइरन (म ग्रा)	केरोटीन एव विटा ए	विटामिन वी १ (मि ग्रा)	वी २ (मि ग्रा)	नियासिन (मि ग्रा)	विटा.सी (मि.ग्रा)
१० मसाले											
हीग	८४	१·१	० ३	१९·२	१९०	६ ३	—	—	—	—	—
इलायची	६५	२·९	० ६	११ ९	३७ ०	१ ७	—	—	—	—	—
हरी मिर्च	१२	०·८	० २	१·७	८·०	०.३	१२८	—	० ५	०.१	३१
लाल मिर्च	७०	४·५	१ ८	९ ०	४५·०	० ७	१६	—	—	—	१४
लोग	८३	१ ५	२ ५	१३ ६	२१०·०	१ ४	—	—	—	—	—
धनिया	८८	४ ०	४ ६	६ १	१८०·०	५·१	४४५	—	—	०·३	लेशमात्र
जीरा	१०१	५·३	४·३	१०·३	३०० ०	८·८	२४७	—	—	०.७	१
मेथी दाना	९५	७ ४	१ ६	१२·५	४५·०	४·०	४५	—	—	०·०३	—
अदरक	१९	०·७	० ३	३·५	६·०	०·७	१९	—	—	०·२	२
राई	१५४	६ २	११ २	६·७	१४०·०	५ १	७७	—	—	१·१	लेशमात्र
अजवाइन	१०८	४.४	५.१	१०·९	४००·०	४·१	—	—	—	—	—
काली मिर्च	८७	३·३	१ ९	१४·०	१३० ०	४·८	—	—	—	० ४	—
हल्दी	९९	१·८	१·४	१९ ७	४३ ०	५·३	१४	—	—	० ७	—

११. विविध

सुपारी	७०	१·४	१·२	१३·४	१४·०	० ४	१	—	—	—	—
शहद	७८	० १	०	१९ ५	१·०	० १	०	—	२	० १	०
गुड	१०९	० १	०	२७·०	२३ ०	३·२	१३०	—	—	—	—
पापड	८२	५·३	० १	१४·८	२३ ०	४·६	—	—	—	—	—
गन्ने का रस	११	० १	० १	२·६	३·०	० ३	३	—	—	—	—
चीनी	१०८	०	०	२७ ०	०	०	०	०	०	०	०
टाफी	१२६	० ६	५·७	१८ ५	२३ ०	०	२८	०	०	०	०

[सम्बन्धित लेख पढिए पृष्ठ २८८ पर]

भारतवर्ष मे ऐसे लोग भी वडी सख्या मे मिलते हैं, जो अपने पट को ही प्रयोगशाला वनाकर ससार को अनूठा ज्ञान दे देना चाहते हैं। खाद्य-पदार्थो की उपयोगिता या अनुपयोगिता के निर्णय का न तो यह तरीका ही है न इससे व्यक्ति वास्तविकता तक ही पहुचता है। शरीर-विज्ञान वहुत आगे तक पहुँच चुका है और वह भी विशुद्ध वैज्ञानिक प्रणालियों से। इस स्थिति मे हम क-ख मे चले और वह भी अपने ही पेट को प्रयोगशाला वनाकर यह नितान्त हास्यास्पद ही है।

कुछ लोग अपने आमाशय व आतो पर दवाव पडने व उनके खराव हो जाने के भय से परहेजवादी हो जाते हैं। अमुक पदार्थ गरिष्ठ है, अमुक दुष्पाच्य है, इस धुन मे वे अनेकानेक आवश्यक पदार्थो मे स्वय को वचित रखते रहते हैं। एकातिक दृष्टि के कारण वे ऐसे हल्के-फुल्के पदार्थो पर निर्भर हो जाते हैं जो शरीर को पर्याप्त पोपण नही दे पाते। दूसरी वात उनके आमाशय और आतें भी इतनी अनभ्यस्त हो जाती है कि फिर वे कुछ भी परिवर्तन अपने खाद्य मे नही कर सकते। फलो पर रह चुकने के वाद सामान्य भोजन पर भी आना उनके लिए कठिन हो जाता है। अभ्यास डाल कर ही वे अपनी सामान्य स्थिति तक पहुँच पाते हैं। आमाशय व आतो की शक्ति सहज रूप से ही इतनी कम नही होती है कि जितनी वे (वहमी) लोग समझ वैठते हैं।

प्रस्तुत लेख खाद्य-सयम की अनुपयोगिता वताने के लिए नही लिखा गया है। लेख का ध्येय ढर्रे रूप से चलाए जाने वाले खाद्य-सयम की शृ खला मे विवेक, व्यावहारिकता व उपयोगिता जोड देने का है। धर्म, सस्कृति व अध्यात्म के प्रत्येक पहलू को हम यथार्थता के ताने-वाने मे विठा करके ही उसे अधिक उपयोगी व चिर-स्थायी वना सकते हैं। वह अध्यात्म व्यापक व चिर-स्थायी नही वन सकेगा जिसमे समाज, देश, स्वास्थ्य और शिक्षा को सर्वथा गौण ही कर दिया जाएगा। ●

भूख

- सबसू मीठी भूख !
  —भूख मीठी क लापसी ?
- दि फुल स्टमक लूथस् दि हनी कोम्व
  —भरे पेट पर शक्कर खारी
- अमीर भूख की खोज करता है, गरीब रोटी की।
- क्षुत् स्वादुता जनयति—भूख स्वाद को वढाती है। ●

शाकाहार प्रचार के रचनात्मक प्रयत्न

—श्री शादीलालजी जैन

[भारत जैन महामण्डल के अध्यक्ष श्री शादीलालजी जैन केवल उद्योगपति ही नहीं बल्कि धार्मिक सस्कारो से ओतप्रोत एक सुलझे हुए व्यक्ति हैं। कार्य के पीछे कारण ढूढना और उसकी तह तक जाना उनकी विशेषता है। प्रस्तुत लेख मे मासाहार प्रचार के कारणो का उल्लेख करते हुए उन्होने शाकाहार प्रचार के लिए रचनात्मक चिन्तन प्रस्तुत किया है। —सम्पादक]

●

बीसवी शताब्दी मे मासाहार के बढ़ते हुए प्रचार के मुख्य कारणो मे से एक कारण है शाकाहारी व्यजनो का मासाहारियो के समक्ष विकल्प नही रहना। मासाहारी स्वाद, ताकत और फैशन इन तीन कारणो से मुख्यतया मास खाते हैं। यदि गहराई से हम इन तीनो कारणो पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि स्वाद की दृष्टि से शाकाहार के जितने व्यजन लोकप्रिय हो सकते हैं उतने मासाहार के नही। एक ही अनाज के बीसो व्यजन बनते हैं। पौष्टिकता की दृष्टि से भी आधुनिक विज्ञान ने शाकाहार को मासाहार की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया है। तीसरी बात फैशन की है। होटलो, क्लबो और बड़ी पार्टियो मे शिक्षित कहे जानेवाले युवक फैशन के नाम पर मास और

अण्डो का सेवन करते देखे जाते हैं। मेरी राय मे यदि वडी पार्टियो, समारोहो और होटल-क्लवो मे शाकाहार की नई-नई वानगिया आर्कपित रूप से प्रस्तुत की जाय तो जन्मजात मासाहारी भी शाकाहार पसन्द करेंगे।

शाकाहार-प्रचार के लिए सवसे वडा रचनात्मक काम ऐसे होटलो का सचालन है जो पूर्णत निरामिप-भोजन देते हैं। वडे वडे शहरो मे उच्च-स्तरीय ऐसी होटलें कायम की जाय जिनमे पूर्ण शुद्धता, सफाई और आकर्पक ढग से शाकाहार की वानगिया ग्राहको को दी जाय। ध्यान मे रखने की वात यह है कि उच्च कहलानेवाले वर्ग मे वस्तु के मूल्य से भी उसका महत्व वढता है इसलिये शाकाहारी व्यजन महगे भाव मे दिये जायें। धनिक वर्ग को अधिक मूल्य चुकाने मे भी एक प्रकार के गौरव का वोध होता है, इसलिए यदि शाकाहारी व्यजनो का मूल्य अन्य व्यजनो की तुलना मे कम रहेगा तो वे स्वीकार नही करेंगे, क्योकि केवल कम मूल्य होने से ही उन व्यजनो मे वे घटियापन का वोध कर सकते हैं।

निजी तौर पर अपने उद्योग से सम्वन्धित कई विदेशियो को मुझे अपने घर पर भोजन कराने के अवसर मिले हैं, शुद्ध शाकाहारी व्यजनो के प्रति उनका इतना आकर्षण रहता है कि वे महीनो तक मासाहार के वदले शाकाहार ही लेते रहते हैं। अनेक विदेशी मित्र जव कभी वम्वई आते हैं तो आग्रहपूर्वक शाकाहारी भोजन करना पसन्द करते हैं। इस प्रत्यक्ष अनुभव से मुझे लगता है कि शाकाहार मे पौष्टिकता और स्वाद दोनो मासाहार की अपेक्षा अधिक है। यदि कमी है तो केवल प्रचार की ही। और इस कमी को पूरा करने के लिए शाकाहार को लोकप्रिय वनाने हेतु केवल प्रचार ही पर्याप्त नही होगा, हमे रचनात्मक रूप से प्रयत्न करने होगे। और हर दृष्टि से मासाहार को शाकाहार के आधुनिक वडे होटल वना कर वन्द करना होगा। जैन समाज और समस्त शाकाहारी समाज मासाहार के वढते हुए प्रभाव से परेशान तथा चिन्तित तो है, लेकिन उसके लिए कोई रचनात्मक कार्य अवतक नजर नही आया। जैन समाज का कर्तव्य है कि शाकाहार प्रचार के रचनात्मक प्रयत्न प्रारम्भ मे प्रयोग के रूप मे ही करे। मुझे आशा है इस दिशा मे सम्पूर्ण शाकाहारी समाज प्रयत्न करेगा।

[द्वारा आर सी एच वरार एण्ड क०
२३६ अब्दुल रहमान स्ट्रीट, वम्वई-३]

पेट को पेटी समझकर मत भरिए, वर्ना तकलीफ उठानी पडेगी।

किसी भी गलत रुझान को रोकने का तरीका उसका सही विकल्प सुझाना है। वनस्पत्याहार पर जनभार बढ जाने से उसमे न्यूनता सभावित है किन्तु विज्ञान की अपरिमेय प्रगति के इस युग में बजाय मासाहार को विकल्प रूप से अपनाए, क्यो न कोई अन्य व्यावहारिक सुझाव सुझाया जाए

प्राणी-हत्या के विना खाद्य-समस्या का समाधान

—रिषभदास रांका

ससार के समक्ष वढती हुई जनसख्या के पोपण की समस्या एक महत्वपूर्ण समस्या है और वह सुलझाने के लिए यह कहा जाता है कि ससार मे जो खाद्य पदार्थ उपलब्ध हैं उसमे यदि प्राणिज भोजन का उपयोग न किया जाये तो केवल वनस्पत्याहार से सभी लोगो का पोपण सम्भव नही, इसलिए मासाहार या सामिप भोजन के लिए प्राणी हत्या अपरिहार्य हैं।

एक वार की वात है, विनोवा के साथ परमधाम आश्रम मे इस विषय पर वात चल रही थी। वे वोले कई वार मैं देखता हू, मेरे सामने कुछ लोग नदी मे मछलिया पकडने जाते हैं, उन्हे रोकने का मैं साहस नही कर सकता जवतक उन्हे मैं खाद्य पूर्ति का पर्याय न सुझाऊ।

वनस्पत्याहार का समर्थन करनेवालो के लिए यह चिन्तनीय वात है कि वे मानव की खाद्य-समस्या प्राणी-हत्या के विना सुलझाने का विकल्प वतावें।

विना प्राणी-हत्या के यदि खाद्य-समस्या सुलझाई जा सकती हो तो मानव कोई हृदय शून्य प्राणी नही है जो निरर्थक अपना पेट भरने के लिए प्राणी-हत्या का आग्रह रखे। इसलिए अहिंसा के समर्थकों तथा वनस्पत्याहार का समर्थन करनेवालो का कर्तव्य हो जाता है कि वे केवल भावना से नही पर कोई ऐसा हल सुझावे जो व्यावहारिक हो।

हमारा यह विश्वास है कि इस वैज्ञानिक युग मे यह असभव नही है, यदि मनुष्य उस दिशा मे प्रयोग करें। अहिंसा प्रेमियो को उस दिशा मे प्रयोग करने चाहिए। जब विज्ञान से भयानक से भयानक सहार के साधन निर्माण किए जा सकते हैं तो क्या यह सम्भव नही कि प्राणी-रक्षण के लिए उपाय खोज सकें? खाद्य-पदार्थों के विषय मे इस दिशा मे प्रयास हो रहे हैं और उसमे सफलता प्राप्त हो रही है तब उन प्राणियो के लिए करुणा की भावनावाले अहिंसा प्रेमियो के लिए करने योग्य बहुत बडा क्षेत्र खुल जाता है।

यह केवल भावना की या कल्पना की बात नही है। विज्ञान ने इस दिशा मे सिद्धि प्राप्त की है और मनुष्य चाहे तो बिना प्राणी हिंसा किए खाद्य-समस्या अच्छी तरह से सुलझा सकता है।

अबतक मानव खाद्य के लिए प्रकृति पर निर्भर था। चाहे निरामिष हो या सामिष, दोनो ही तरह के खाद्य-पदार्थ प्रकृति से ही प्राप्त होते थे। लेकिन प्रकृति द्वारा प्राप्त होनेवाले खाद्य पदार्थो की प्राप्ति सीमित होने से ससार के समक्ष यह समस्या है कि वह बढती हुई प्रजा का पोषण कैसे करें? और जब खाद्य पूर्ति जमीन से पैदा हुई वनस्पतियो, अनाज, फल-सब्जियो द्वारा न कर सके तो प्राणिज आहार दूध, अण्डे, मास की सहायता से उसकी पूर्ति करे।

खेती और प्राणिज खाद्य-पदार्थों की पूर्ति बढती हुई जनसख्या के लिए पर्याप्त न होती देखकर मानव की बुद्धि कारखानो मे ऐसे खाद्य-पदार्थ बनाने की ओर लगी जो खाद्य तत्वो की पूर्ति के साथ-साथ मानव की स्वाद-रुचि को भी सन्तोष दे सके।

वैज्ञानिक घास या वनस्पति को प्राणियो द्वारा मास या दूध मे परिवर्तन किए बिना मशीन से खाद्य पदार्थ बनाने लग गए है। और उनके गुणो के परीक्षण से पता लगा है कि मवेशियो की तुलना में मशीन मे बने पदार्थ कई गुना अच्छे है।

मशीनो से तैयार हुए पदार्थों को "एना लाग" कहते हैं। हिन्दी में उसे तत्सम या सरूप कहा जा सकता है। ऐसी दूध और मास के तत्सम या सरूप

चीजो का तेजी से प्रचार हो रहा है। अमेरिका और कनाडा मे दूध और मास के वाजार पर ये पदार्थ एक चौथाई मात्रा मे छा गये हैं। कहा जाता है कि भोजन मे काम आनेवाले ८५ प्रतिशत क्रीम और ३५ प्रतिशत मलाई कारखानो मे वनी हुई हैं। जिसका परिणाम खेती मे उगाई जानेवाली फसलो पर पड़ा है और किसान अधिक सोयाबीन और सरसो की खेती करेंगे।

कनाडा और अमेरिका मे सरूप पदार्थों का भोजन काफी मात्रा मे उपयोग होने लगा है। इसकी जगह काफी-मेट का उपयोग करते हैं जिसमे सोडियम, केसीनेट, डाइ पोटेशियम फास्फेट, सोडियम सिली कोलूमिनेट और मानो तथा डाईग्लिराईड आदि द्रव्य होते हैं। मारगरिन-मे लेसिथिन पायसीकारक व सोडियम वेजाएट होते हैं। मिठाई पर डाला जानेवाला क्रीम भी कृत्रिम वना हुआ होता है।

कृत्रिम दूध और मलाई के पदार्थ वढ रहे हैं, इतना ही नही, मास सरूप पदार्थ वनाने की होड चल रही है। वडे-वडे कारखानेदार व शाकाहारी लोग वडी उत्सुकता से इन प्रयोगो को देख रहे हैं। कृत्रिम मास वनाने का तरीका है द्विदलीय पदार्थ-खासकर सोयावीन की प्रोटीन को अलग कर वानस्पतिक रेशो से मिलाकर यन्त्र से मथ देते हैं। वह मास जैसा वन जाता है। इच्छानुसार उसका रूप और स्वाद वना लिया जाता है। अमेरिका की जनरल मिल्स मे सुअर के मास जैसे सरूप का प्रचलन तेजी से हो रहा है। गौ और मुर्गी के मास के सरूप भी वन रहे हैं।

इस प्रकार अनेक कृत्रिम खाद्य-पदार्थ वनाए जा रहे हैं। ऐसी डवल-रोटी और केक वनाई जा रही है जिसमे आटे का और अण्डे का उपयोग ही नही किया जाता फलो के कृत्रिम रस वनाए जा रहे हैं, जिनका स्वाद और गध फलो के रसो जैसी है।

मास की गध देने के लिए जल विश्लेपण द्वारा पैदा किए अम्ल को मिलाया जाता है।

कृत्रिम खाद्य-पदार्थ वनाने का मूल आधार प्रोटीन और उसके लिए सवसे अच्छा पदार्थ सोयावीन माना गया है। प्रोटीन का वहुत वडा किन्तु अपेक्षित क्षेत्र है समुद्री सीवाल 'काई'। जापान मे प्राचीनकाल से इसका प्रयोग खाने मे होता रहा है पर अव उसका उपयोग वढ रहा है। एक-एक सीवाल से दो हजार से चार हजार पोण्ड प्रोटीन प्राप्त होता हैं। जवकि एक एकड मक्का खिलाने पर मवेशी द्वारा ७७ पोण्ड प्रोटीन प्राप्त होता है। खनिज तेलो से भी प्रोटीन निकालने के प्रयोग एक अग्रेजी पेट्रोलियम कम्पनी ने शुरू किए हैं।

कम्पनी के अधिकारी का दावा है कि भूतैल से बनी प्रोटीन किसी भी प्राकृतिक यानी मुर्गी, मछली, पौधे या इससे बनी प्रोटीन से मूलरूप से भिन्न नही है। इनमे लायसिन बहुत अधिक मात्रा मे होता है जो तृण जाति के अनाजो का एक महत्वपूर्ण परिपूरक है जो पाचक भी होता है। प्रतिवर्ष चार करोड टन भूतैल से ६ लाख टन शुद्ध प्रोटीन प्राप्त किया जा सकता है। केवल इसी स्रोत से ससार भर मे निर्माण कीजानेवाले प्रोटीन की मात्रा को दुगुना किया जा सकता है। इस प्रोटीन के निकलने से भूतैल के गुणो मे कमी नही होती।

इन कृत्रिम खाद्य-पदार्थों के पोषक तत्वो मे कोई खास अन्तर नही होता। कृत्रिम खाद्य-पदार्थों मे इच्छानुसार पोषक तत्वो का अनुपात कम अधिक किया जा सकता है। मनचाहा स्वाद भी दिया जा सकता है। प्रयोगो से ज्ञात हुआ है कि सोयाबीन के स्वरूपो मे प्रोटीन की गुणवत्ता दूध की अपेक्षा ८० प्रतिशत अधिक होती है। इसे बच्चे रुचि से लेते हैं और उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर नही होता। बडी उम्रवालो के लिए भी सोयाबीन के सरूप स्वास्थ्य और शक्ति दोनो के लिए अनुकूल है। इसमे हृदय की बीमारी का कारण माने जानेवाला कालेस्टल नही पाया जाता है जो घी मे होता है।

प्राकृतिक रूप से बननेवाले खाद्य-पदार्थों का दिन प्रतिदिन मूल्य बढता जा रहा है। कारखानो मे तैयार होनेवाले पदार्थ खेतो मे निर्माण होनेवाले पदार्थों से सस्ते होगे। विज्ञान के उपयोग मे उन्हे बिना खराब हुए अधिक दिन सुरक्षित रखा जा सकता है। उन्हे रग, सुगन्ध और स्वाद रुचि के अनुसार दिया जा सकता है। मक्खन, मलाई, दूध, मास के नाम पर खोपरे का तेल, सोयाबीन, समुद्री घास और एलमिनल के लवण आदि तत्वो का उपयोग सरलता से किया जा सकता है।

हमे इन प्रयोगो के हर पहलू का गम्भीर अध्ययन करना है। कृत्रिम खाद्य वस्तुओ के निर्माण से पैदा होनेवाली समस्याओ का समाधान भी ढूढना होगा। लेकिन प्राणी को बचाकर खाद्य की समस्या विज्ञान सुलझाता है तो करणीय कार्य है। विशेषकर जिनका नैतिकता मे विश्वास है, उनके लिए इस प्रयोग मे दिलचस्पी लेना आवश्यक कर्तव्य हो जाता है। आशा है इस दिशा मे हमारे वैज्ञानिक और उद्योगपति आगे बढेंगे।

●

भोजन के लिए सबसे अच्छी चटनी भूख है। —सुकरात

शाकाहारी सिद्धान्त का इतिहास

—ज्योफ्री एल० रुड

[जनरल सेक्रेटरी : इण्टरनेशनल वेजीटेरियन यूनियन व द वेजीटेरियन सोसायटी, ग्रेट ब्रिटेन]

जहातक लिखित आलेख सम्वन्धित हैं, ऐतिहासिक शाकाहारी सिद्धान्त समय की अस्पष्टता तक जाता है और विश्व के सर्वाधिक असाधारण बौद्धिको और सुधारको ने सिद्धान्तरूप मे मास रहित पथ्य का प्रतिपादन किया है।

अलक्जैंड्रिया के विलमेट के अनुसार प्राचीन मिश्र के पुजारियो ने मास-खाद्य का त्याग कर दिया था। ब्राह्मण, जैन और जरथुसियन धर्म भी जिनकी उत्पत्ति की तिथि अज्ञात है, की भी यही मान्यता है।

पश्चिमी ससार मे शाकाहारियो का प्रथम समूह निश्चितरूप से पैथागोरस के अनुयायियो से वना, जिसने ईसा पूर्व छठी शताव्दी के ग्रीस को अद्वितीय आकुलता दी। हावर्ड विलियम्स की 'एथिक्स आफ डाइट' मे विद्वतापूर्ण शाकाहारी साहित्य की खोज से ईसा पूर्व आठवी शताव्दी मे मास रहित पथ्य का मूल्याकन ज्ञापित किया।

ईसा पूर्व पाचवी शताव्दी मे एम्पीडोकल्स ने पैथागोरस की परम्पराओ को बनाए रखा।

प्लेटो के दर्शन को पैथागोरस के दर्शन की अगली शृ खला माना जा सकता है।

ईसा पूर्व तीसरी शताव्दी मे वुद्धधर्म के अनुयायी भारतीय सम्राट अशोक ने अपने राज्य मे मनुष्यो और पशुओ के लिए समान चिकित्सा की व्यवस्था

करवादी थी। ईसा के समय तक अनेक धार्मिक संस्थाओ और समूहो ने तपस्वी जीवन अपना कर मासाहार का त्याग किया था, प्लोटिनस, अपोलोनियस, पोरफयरी, सेनेका, ओविड, डायोजेनिस, सुकरात, प्लूटार्क आदि विशिष्ट व्यक्तियो को महत्वपूर्ण शाकाहारियो मे माना जाता है। इसके वाद मिल्टन, पोप, शैले, रूसो, थोरो, वाल्तेयर, आइजक, न्यूटन के अनुसार भी मासाहार विकसित विचार प्रक्रिया के लिए अनावश्यक ही नही, वाधक रहा है।

सन् १८४२ मे ई० 'वेजेटेरियन' शब्द के प्रकाश मे आने के वाद पूर्णरूप से मासरहित आहार के प्रसार के लिए सन् १८४७ ई० में मानचेस्टर मे एक धर्म-निरपेक्ष सगठन की स्थापना हुई 'द वेजेटेरियन सोसायटी'। परन्तु इसका श्रेय भी सन् १८०६ मे रेवरेड विलियम्स काउहर्ड द्वारा स्थापित 'वाइवल क्रिश्चियन चर्च, सालफोर्ड' को दिया जाना चाहिए।

द वेजिटेरियन सोसायटी की हीरक जयन्ती के अवसर पर नीस के डी० अनजोड की प्रेरणा से १९०८ ई० मे नीस मे ही प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी संस्था की कान्फ्रेन्स सम्पन्न हुई। १९५० ई० तक 'इन्टरनेशनल वेजिटेरियन यूनियन' का कार्य मानदरूप मे होता रहा पर केलिफोर्निया की श्रीमती क्लेरेन्स गास्वयू की उदारतास्वरूप लन्दन मे इसका स्थायी कार्यालय बना और अफ्रीका, अटर्जेइना, डेन्मार्क, फ्रास, भारत, मलाया, न्यूजीलेंड, अमेरिका, कनाडा, स्विट्जरलेंड आदि अनेक देशों मे इसकी शाखाए स्थापित हुई और अव यह एक नियमित आन्दोलन के रूप मे चल रहा है। 'इन्टरनेशनल वेजिटेरियन यूनियन' को संयुक्तराष्ट्र सघ के महत्वपूर्ण विभाग 'यूनेस्को' और 'एफ० ए० ओ०' से मान्यता प्राप्त है। ●

भूल सुधार

पृष्ठ १४५ पर डा० वी० एन० जाई का महत्वपूर्ण लेख ''स्वास्थ्यवर्द्धन के प्रति आधुनिक पथ्याचरण'' छपा है। टाइप की अशुद्धि के कारण नाम जाई के स्थान पर 'वाई' छप गया है, तथा ब्लाक छपना छूट गया है। पाठक भूल सुधार करने की कृपा करें। ●

अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी संघ

अवलोकन

—डब्लू० ए० सिब्ली

१६०८ ई० मे इन्टरनेशनल शाकाहारी यूनियन की प्रथम बैठक जोर्जेस आजोऊ के प्रस्ताव पर ड्रेसडन मे हुई थी। 'वेजिटेरियन सोसायटी' इगलेण्ड के सचिव अल्वर्ट ब्रोडवेंट द्वारा सचालित इस बैठक मे फ्रास, नार्वे, हालैण्ड और जर्मनी के प्रतिनिधि उपस्थित थे। १६१० ई० मे ब्रुसेल्स मे हुई तीसरी काग्रेस मे प्रति तीसरे वर्ष अधिवेशन आयोजित करने का निश्चय किया गया। इसी के फलस्वरूप १६१३ ई० मे हेग मे अधिवेशन सम्पन्न हुआ। पर सन् १६१४-१८ ई० के प्रथम महायुद्ध के काल मे इसकी कोई गतिविधि नही रही। यू कहना उपयुक्त होगा, युद्ध के कारण दो भागो मे विभाजित हो गई यूरोपीय सभ्यता, जिसका अब तक जुडाव नही हो पाया है, युद्ध और युद्धातर परिणामो से त्रस्त रही और दस वर्ष तक इस सस्था का कोई कार्य नही हो पाया। स्वीडन के प्रबुद्ध शाकाहारी जे० एल० सेक्शन के प्रधान आतिथ्य मे १६२३ मे स्टाकहोम मे फिर काग्रेस हुई। १६२७ ई० मे लन्दन मे, १६२६ मे चेकोस्लोविया मे, १६३२ ई० मे हैम्वर्ग मे, १६३५ ई० डेन्मार्क और १६३८ ई० मे नार्वे मे हुए अधिवेशनो से यूरोप मे यह आन्दोलन फिर फैला।

दूसरे महायुद्ध के कारण पुन नौ वर्षो का व्यवधान आया। "मजदाज' आन्दोलन की नेता श्रीमती गी-क्यू से प्राप्त वडे अनुदान के फलस्वरूप इसके प्रधान कार्यालय की और पूर्ण-कालिक सचिव की व्यवस्था हुई। जोन हनवर्थ वाकर के प्रयत्नो से इस सस्था को सयुक्त राष्ट्रसघ और खाद्य एव कृषि सगठन से मान्यता मिली।

प्रश्न उठ सकता है कि आखिर अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी संघ क्या उपलब्ध करना चाहता है ? निसन्देह वह एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहता है जिसमे वे लोग परस्पर जुडते है

- जो जन्म अथवा स्थान की सुविधा के कारण अनायास ही मित्र नही बन जाते है।
- बहुधा वे भिन्न भाषा-भाषी व विभिन्न राष्ट्रो के वासी होते है।
- किन्तु जो एक लक्ष्य के लिए जूझे हुए हैं।
- जिनकी आशा, भय व भावनाओ मे एकरूपता है।

इसका प्रमुख कार्य है शाकाहारी आचरण, जानकारी व आदर्शो के विस्तार को सम्भव बनाना। इस आन्दोलन ने निश्चय ही कुछ महान सुधारो को पोषित किया है और यह उन सगठित प्रयासो का निरन्तर गवाह रहा है जो अच्छे स्वास्थ्य, आरोग्य, अविचल सन्तोष, करुणा एव शान्ति के लिए किये जाते रहे है। इसकी प्रमुख उपयोगिता मे से एक है, अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री को और अन्तर्जातीय सम्बन्धो को प्रगाढ बनाना।

अमेरिका में शाकाहार

—डेनियल पी० हॉफमेन

यदि शाकाहार का अर्थ है—शाक-सब्जियो, फलो आदि का प्रमुख उपयोग किया जाना, तो कहा जा सकता है कि अमेरिका गति से इस दिशा मे बढ़ रहा है। यद्यपि मास यहाँ का प्रमुख खाद्य है फिर भी अमेरिकी स्वेच्छा से कई दिन मास का प्रयोग नही करते।

डॉ० डी० इ० लेन व डॉ० एम० एस० रोज ने विकल्प के रूप मे 'लेक्टो-ओवुलो-वेजीटेरियन' आहार प्रस्तुत करने के लिए काफी श्रम किया है। यह पूर्णत 'वेगन' आहार है। 'अमेरिकन मेडीकल' जरनल व धर्म सम्बन्धी पत्रिकाओ मे वैज्ञानिक शोधकर्ताओ की इस सन्दर्भ की खोजो का विवरण प्रकाशित किया जाता है। अत डॉक्टर लेन का शिशु आहार व बालको के लिए दुग्धाहार जो सोयाबीन के आटे से व अन्य अन्न से प्राप्त किया जाता है औषधिक व्यवसाय मे बहुत प्रचारित है।

इसी प्रकार एक विशिष्ट प्रयोग का हवाला 'रीडर्स डाइजेस्ट' मे दिया गया है। जिसके अन्तर्गत कृत्रिम मास बनाये जाने की व्यवस्था है। कई स्वास्थ्यप्रद आहार के निर्माता 'नट रोस्ट' आदि बनाते हैं, जिसे मास की ही तरह परोसा जा सकता है। शाकाहार की पाक-विधियो का साहित्य बडी तादाद मे बिकता है।

यह दर्शाता है कि अमेरिका के लोग सब्जियो के सलाद, फलाहार आदि की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं और मास का उपयोग कम होता जा रहा है।

शाकाहार इतना विस्तार पा चुका है कि मास-विक्रेता अपने उत्पादनो के लिए अधिक विज्ञापन व प्रलोभन देने को बाध्य हो रहे हैं ।

यूँ तो अमेरिका मे एक शाकाहारी सघ शुरू मे लगभग १५ वर्ष तक न्यूयार्क मे कार्य करता रहा, किन्तु व्यस्थितरूप से आयरलेण्ड की श्रीमती मागरेट कजिन ने श्री मेनवेक के महयोग से १६३२ मे शाकाहारी सघ की विधिवत स्थापना की । श्री जूल्स एच० क्लजेस, श्री हेनरी राफ्यू, मेटा फरीरा आदि अमेरिका मे शाकाहार प्रचार हेतु सक्रिय हैं । रेवरेड विलियम मेटकाम इस आन्दोलन के सस्थापक के रूप मे जाने जाते हैं ।

तव का वोया वीज अव पल्लवित पुष्पित होकर देश भर मे अपनी सुरभि फैला रहा है । अमेरिक के लोग अव स्वास्थ्य-सन्दर्भ मे काफी जागरूक हो चुके हैं ।

●

कनाडा में शाकाहार

—इवा एम० वड

टोरेण्टो वेजिटेरियन असोसिएशन १६४५ मे गठित हुआ । यह गठन प्रो० आर्थर एफ० स्टीवेन्सन के आवास पर एकत्रित शाकाहारियो के मध्य सम्पन्न हुआ । केफेटोरिया व रेस्त्राओ मे आयोजित होनेवाली इसकी वैठको मे शाकाहार के समर्थक विभिन्न पहलुओ पर चर्चा करते हैं । १६४६ मे कनाडियन वेजिटेरियन यूनियन की स्थापना हुई ।'

कनाडियन व अमेरिकन शाकाहार समर्थको मे पारस्परिक मेलजोल है । इनके वीच विस्तृत पत्राचार होता है । कनाडियन नियमित रूप से अमेरिकन नेचरल हाइजीन सोसायटी के सम्मेलनो मे भाग लेते है । प्रख्यात आहार-शास्त्रज्ञो के सारगभित प्रवचनो से कनाडावासी लाभान्वित होते हैं ।

पत्र-पत्रिकाओ मे शाकाहार के प्रति लोगो की रुझान उनके लिखे पत्रो से झलकती है । जिन क्षेत्रो मे व्यवस्थित शाकाहारी सघ नही है वहा व्यापक प्रचार किया जाता है व पूछ-परख करनेवालो को साहित्य आदि भेजा जाता है । स्वास्थ्यप्रद वस्तुआ के स्टोर्स हैं ।

कनाडियन वेजिटेरियन यूनियन के सदस्य विश्व भर मे अपने मित्रो, परिचितो के साथ मिलकर शाकाहार के विस्तार मे सलग्न हैं । वे इसे निर्दयता, युद्ध व अन्याय को रोकने तथा वन्धुत्व व शाति की प्रतिस्थापना के लिए आवश्यक कदम मानते हैं ।

ग्रेट ब्रिटेन में शाकाहार

—जेम्स हो

[सेक्रेट्री, वेजीटेरियन सोसायटी, इगलेंड]

१८०९ ई० के लगभग मांचेस्टर मे शाकाहारी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। यद्यपि प्रारम्भिक आधार धार्मिक और आचारिक ही रहे, परन्तु कुछ समय पश्चात् शाकाहारी आन्दोलन के समर्थकों ने इसे स्वास्थ्य और अर्थ-सबधी आधारो पर विकास दिया। इसका सारा श्रेय १८०९ मे स्थापित बाइबल क्रिश्चियन चर्च को दिया जाता है। १८४७ ई० और १८८८ ई० से शाकाहारी आन्दोलन की दो सस्थाएं अपने-अपने ढग से कार्य कर रही है। ७ जनवरी १८८८ ई० को "वेजिटेरियन" पत्रिका का पहला अक प्रकाशित हुआ, जिसकी घोषणा थी—

"इस पत्र का नाम ही खानपान के आदर्श की घोषणा का सूचक है पर इसका क्षेत्र मात्र पथ्याचार के सुधार के सिद्धान्तो की घोषणा तक ही सीमित नहीं होगा। यह उन आवश्यक स्थितियो की भी सर्जना करता रहेगा, जिनसे आदर्श की प्राप्ति हो। पहले शारीरिक फिर मानसिक और तब आध्यात्मिक जीवन की।" यह पत्र अपने लेखो गभीर विचारो, रोचक वार्ताओ के माध्यम से शाकाहार का प्रचार करता रहा है।

ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध दैनिक समाचार-पत्र 'मिरर" ने शाकाहार के आन्दोलन पर निम्न शब्दो मे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की—

"कुलीन परिवारो के सदस्यो में शाकाहारी सिद्धान्त इस तरह लोकप्रिय हो गया है कि कोई भी शानदार भोजन अलग भोजन सूची "फेड डिसेज" के बिना पूरा नही होता।"

स्काटलेण्ड

स्काटिश शाकाहारी सघ की स्थापना १८९२ मे हुई। श्री अरनाल्ड एफ हिल्स ने इसमे बहुत सहयोग दिया। १८९७ मे जान पी० एलन ने श्री एच० एस० बाथगेट व श्री डुगाल्ड सेम्पल के सहयोग से इसमे अद्वितीय अभिवृद्धि-की।

आयरलेण्ड

यहाँ शाकाहार प्रचार का कार्य बहुत जटिल था। ऐसे अधिकारी जो समय दे सकें, अनुभवी व उत्साही हो मिल पाना मुश्किल था, किन्तु अब वहा यह आन्दोलन जोर पकड चुका है। जेम्स दम्पति द्वारा भारत मे डा० एनी बिसेण्ट के साथ १९१५ मे कार्य करने के पूर्व डबलिन मे इनकी संघर्षमय शुरूआत की गई व बेलफास्ट मे इसके प्रसार का श्रेय श्री विलियम डी० काजिन्स को दिया जाता है।

अब तो ब्रिटेन मे शाकाहारी प्रचार आधुनिकतम साधनो द्वारा किया जाता है। जिनमे टी० वी० भी सम्मिलित है। लोगो मे इसके बारे मे जानने की उत्सुकता है व इस बावत प्रयोग करने की तत्परता भी है। कई रेस्टरा व आहार सस्थान खुल चुके हैं। इसके लिए विभिन्न समितिया कार्यरत है।

जापान में शाकाहारी आन्दोलन

—डा० मसाकाजु टाडा

[डायरेक्टर साटो इन्स्टीट्यूट,
अध्यक्ष थर्ड डेमोक्रेटिक यूनियन
उपाध्यक्ष इन्टरनेशनल वेजीटेरियन
यूनियन]

शाकाहारी सिद्धान्त अप्राकृत हो गई सभ्यता का उपचार है। 'जीने के लिए सघर्ष' मुक्त-उद्योगी समाज का नारा रहा है और सुदूर पूर्व मे पिछले अस्सी वर्षो से मुक्त-उद्योग के लिए जापान अगली पात मे रहा है—विशेप रूप से द्वितीय महायुद्ध के वाद से। पच्चीस वर्षो मे इस तेजी से वह एक आर्थिक शक्ति हो गया है कि उसके अपने ही लोग कुछ समय पूर्व तक भी औद्योगिक और प्रकृति पर दूपण से जो परिवर्तन होगा उस पक्ष के प्रभावो पर गहराई से नही सोच पाए हैं।

जापान अव जागृत हो रहा है। वह 'जीवन के लिए सघर्ष' के नारे के स्थान पर 'जीवन के लिए सतुलन' के नारे की स्थापना को १९८० की सभ्यता का लक्ष्य मान कर उठ रहा है।

यूरोप मासाहार का प्रभाव केन्द्र रहा है और एशिया की तथाकथित प्रगति का अगुआ होने के कारण जापान ने भी यूरोप की आदतो का अनुकरण किया है। पहले जापानी मुख्य रूप से शाकाहारी थे और अमेरिकन एडमिरल पैरी के पहुचने तक अधिक मात्रा मे शाक-सब्जी की कृपि मे प्रचुरता से स्व-निर्भर थे। उसी शताब्दी मे जापान यूरोप और उत्तरी अमेरिका के लोगो के मासाहार के तरीको की नकल करनेवाले देश मे वदल गया। मगर तव भी

जीवन्त दर्शन के दो स्वरूप देश मे अपना सह-अस्तित्व बनाए हुए हैं—एक शहरवासियो मे दिखाई देता है जो सामान्यत सतही-छलपूर्ण तरीको से आर्थिक लाभ के पिछलग्गू होते हैं, दूसरा चरवाही जीवन मे विशेष रूप से स्त्री जाति मे दिखाई देता है जहा शान्त गृह-स्वामी शाकाहारी होते हैं। इस कारण शहरी क्षेत्र मे किसी विदेशी पर्यटक को शाकाहारी आवास अथवा आहार प्रतिष्ठान प्राप्त करने मे कठिनाई हो सकती है, परन्तु ग्रामीण जिलो मे जापानी पद्धति के अतिथि-घर और सराय प्राप्त कर लेना बहुत सहज है।

जापान मे शाकाहारी सिद्धान्त (धार्मिक और आचारिक भी) का व्यापक स्तर पर साधारण जन मे तो थोडा ही झुकाव है। मगर बौद्धिको द्वारा मानसिक, पोषणिक और चिकित्सा विज्ञान के लिए विशेष रूप से उपचारात्मक गुणो के लिए इसकी शोध की-जाती है। ऐसे अनेको स्वास्थ्यालय हैं जहा शाकाहारी सुविधाएँ चिकित्सको द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा के आधार पर उपलब्ध कराई जाती हैं।

★

एक महत्वपूर्ण सूचना—

रोनबी [स्वीडन] मे

२२ वां अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी सम्मेलन

२२ वा अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी सम्मेलन २८ जुलाई १९७३ से ४ अगस्त १९७३ तक रोनबी (स्वीडन) मे सम्पन्न होगा। लन्दन के हीथरो हवाई-अड्डे से कोपनहेगन तक आने-जाने की हवाई-यात्रा रियायती टिकट पर होगी और कोपनहेगन से रोनबी स्टेशन तक दोनो ओर की रेल-यात्रा भी। विदेशी मुद्रा की कठिनाइयो को ध्यान मे रखते हुए एक विशेष कोष की स्थापना की जा रही है, जिसका उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय कान्सिल से सम्बद्ध शाकाहारी सस्थाओ के अधिकारिक प्रतिनिधियो के लिए ही किया जाएगा ताकि व २२ वें अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे भाग ले सकें।

—'टोरेण्टो वेजिटेरियन एसोसियेशन के प्रपत्र से'

नीदरलेण्ड [हालेण्ड] में शाकाहारी समाज

—श्रीमती डब्ल्यू० आइकब्रूम ब्रुकमेन

[मानद् सचिव—नीदरलेण्ड शाकाहारी सघ]

●

एक करोड, तीस लाख की आवादी वाले इस देश मे शाकाहारी होना कोई कठिन काम नही है। हालेण्ड मे दूध की वनी वस्तुएँ, फल और शाक-सब्जिया प्रचुरता से उपलब्ध है। वहा के अधिकाश चिकित्सक भी यह स्वीकार करते हैं दूध आदि के शाकाहारी पथ्य से स्वास्थ्य को किसी भी प्रकार का खतरा नही होता।

इस देश मे वारह हजार शाकाहारी हैं। डच शाकाहारी समाज की सदस्य सख्या भी दो हजार पाचसौ हैं। इनमे अनेक ऐसे भी है जो दूध की वनी किसी भी वस्तु अथवा अण्डे का भी उपयोग नही करते। इसके अतिरिक्त लगभग अस्सी शाकाहारी लोगो का एक और समूह है जो स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है और एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी करता है।

हालैण्ड के पूर्वी भाग मे कस्वे के करीव खूवसूरत जगली वातावरण मे वृद्धो के लिए एक सुन्दर आवासगृह भी है, जिसमे अस्सी और नव्वे वर्प की आयु के वृद्ध लोग रहते है। हर एक के लिए अलग फ्लेट है। भोजन केन्द्रीय रसोई घर मे वनता है। सभी एक-दूसरे के प्रति सद्भाव रखते हैं। छोटे-छोटे कार्य भी करते है। ये सव सामाजिक कार्यों मे भी भाग लेते हैं। १८९४ ई० मे स्थापित इस सस्था ने १९६८ ई० मे वृद्धो के लिए नये आवासगृह का निर्माण करवाया।

इसी सस्था के तत्वावधान मे सन् १९७१ मे हालेण्ड मे २१वी शाकाहारी काग्रेस सम्पन्न हुई, जिसमे २७ देशो के तीन सौ प्रतिनिधियो ने भाग लिया। यह सस्था अपनी मासिक पत्रिका द्वारा शाकाहारी सिद्धान्त का प्रसार करती है। स्वास्थ्य, आचार और आर्थिक पक्षो से सम्वन्धित गम्भीर लेख नियमित रूप से प्रकाशित किए जाते है।

यह सस्था अनेक कार्यो के अतिरिक्त सुरक्षा-विभाग से भी व्यापक पत्राचार करती है ताकि सेना से सम्वन्धित लोगो को जो अपने अन्तर की आवाज मानते हैं, शाकाहार नियमित मिलता रहे। हालैण्ड का शाकाहारी सगठन पशुओ से चीर-फाड विरोधी, पशु-सरक्षण, प्राकृतिक जीवन सम्वन्धी अनेक सगठनो के सम्वन्धित है।

—De Nederlandse Vegetariersbond II
President Kennedylaan 146
Amsterdam 1010 Holland

विटामिन—एक विश्लेषण :—

विटामिन वे पदार्थ हैं जिनकी मानवशरीर को कम मात्रा मे आवश्यकता होती है, किन्तु ये अत्यावश्यक होते है। इनके बिना मानव-शरीर सुचारुरूप से काम नही कर सकता।

विटामिन के प्रकार—विटामिन 'ए'—आँखो के लिए वहुत जरूरी होता है।

विटामिन 'वी' कम्पलैक्स—मासपेशियो, नसो, भूख तथा पाचन शक्ति पर नियन्त्रण रखता है।

विटामिन 'सी'—छूत के रोगो का सामना करने की शक्ति देता है।

विटामिन 'डी' दातो और हड्डियो को मजवूत बनाने मे सहायक होता है।

विटामिन 'ए' आदि विशेषरूप से धारण करनेवाले पदार्थ—

विटामिन 'ए'—दूध और दूध से बनी चीजें, पालक, गाजर, आम, पपीता, टमाटर, आदि।

विटामिन 'वी' कम्पलैक्स—गिरियाँ, हरी फलियाँ (मटर), सेम, आलू, डवलरोटी, हरी मूग, वाजरा, सेला चावल दूध आदि।

विटामिन 'सी'—ताजे फल और सब्जी, आँवला, मौसम्मी, (नीवू और सन्तरा), पत्तेवाली सब्जियाँ, (फूलगोभी बन्दगोभी, मूली के पत्ते), टमाटर, सहिजन की पत्तियाँ।

विटामिन 'डी'—सूरज की किरणें, दूध और दूध की बनी चीजें,

—हिन्दुस्तान १२ अप्रेल, १९७१

यूरोपीय देशों में शाकाहार

इटली :

इटली मे शाकाहारी सिद्धान्त का आरम्भ पैथागोरस के काल मे ही हो जाता है। मध्ययुग मे असीसी के सन्त फ्रासिस ने स्वय मासाहार से परहेज किया ही, साथ ही भोजन के लिए पशुओ की हत्या रुकवाने का भी महत्वपूर्ण कार्य किया।

फासिस्ट हिंसा के समय मे गाधी के उदाहरण की प्रेरणा से पुन अहिंसा और शाकाहार का आन्दोलन शुरू हुआ। फासिस्ट आतक से मुक्ति के वाद इटली मे सभाओ और साहित्य द्वारा हिंसा के विपरीत वातावरण वना और 'ए नानवायलेंट इटली' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। गाधीजी के निर्वाण दिवस ३० जनवरी १९५२ को पेरागिया मे अहिंसा के समर्थको की अन्तर्राष्ट्रीय वैठक हुई और परिणामस्वरूप 'सेन्टर आफ इन्टर नेशनल को-आर्डीनेशन फार नान वायलेन्स' की स्थापना हुई, और इसी केन्द्र द्वारा आयोजित-प्रेरित वैठक के परिणाम स्वरूप १४ सितम्वर १९५२ ई० मे 'इटालियन वैजिटेरियन सोसायटी' की स्थापना हुई। यह सोसायटी निम्न मूल आधारो पर कार्य करती है —

शाकाहारी सिद्धान्त के अभ्यास के लिए आधारभूत कारणो की खोज और परीक्षण।

२ वच्चो को शिक्षा—आधारभूत कारणो की खोज और परीक्षण – यह सभा शाकाहार को सभी जीवित प्राणियो के प्रति अपने प्रेम और भावना की अभिव्यक्ति मानती है। इसका दैनन्दिन अभ्याम और निर्वाह ही व्यक्ति को आन्तरिक प्रकाश की ओर ले जाता है और मानवीय विचार और कर्म के इस दर्शन की प्रतीति करवाता है।

मासाहार की सार्वजनीन आदत के परित्याग और अहिंमा और पशुमात्र के प्रति प्यार की भावना जागृत करने यह सोसायटी अप्रत्यक्ष रूप से प्रारम्भ से ही कार्य करना चाहती है। यह सस्था वच्चो के लिए एक ऐसा केन्द्र वनाना चाहती है जहा वच्चो को इन सव वातो का क्रियात्मक शिक्षण दिया जा सके।

३ सूचनाओ और सलाह का आदान-प्रदान—

इस सभा ने शाकाहार की सूची। उनके चयन, उनके उपयोग, विधि आदि के सम्बन्ध मे परिपत्र भी प्रकाशित किए हैं, जिसके परिणामस्वरूप अनेक व्यावसायिक सस्थानो ने भी शाक-सब्जियो का उत्पादन वढाने की ओर ध्यान दिया है। शाकाहारी सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार और अभ्यास की अन्य सस्थाओ के भी सम्पर्क मे यह सस्था है।

डेन्मार्क :

कोपेनहेगन के चिकित्सक डा० माइकेल लार्सन ने १८९६ मे डेनिस वेजिटेरियन सोसायटी की स्थापना की। पेशेवर चिकित्सको और मासाहारियो के विरोध के बावजूद इस सस्था को सफलता मिली और १९०७ मे इसकी ओर से मासिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ, जिसे कुछ काल वाद प्रसिद्धि मिली। एक समय, अन्तर्राष्ट्रीय वेजिटेरियन युनियन के मानद् सचिव श्री ओलफ इजिरोड ने वर्षो तक भाषण मालाओ प्रचार-पत्रो और पकवान के प्रदर्शनो से शाकाहार के आन्दोलन को गतिशील बनाये रखा। डा० मिक्वल हिंडहेडे ने भी शाकाहार का प्रवल प्रचार किया। डा० क्रिस्टीन नाल्फी ने तो किसी भी प्रकार पके हुए भोजन को अस्वीकारते हुए कच्चे भोजन की पैरवी की। इसके अनेक व्यक्ति अनुयायी हुए, पर पके हुए भोजन को पूरी तरह अस्वीकार किये जाने के कारण यह आन्दोलन अधिक नही वढ सका पर कुल मिलाकर साधारण व्यक्ति की शाकाहार के प्रति रुचि वढी।

हॉलैण्ड :

वोर्ड आफ सेण्ट्रल इन्स्टीट्यूट के अध्यक्ष श्री जी० वान नेडरवीन के श दो मे हालैंड मे शाकाहार को राष्ट्रीय एव अर्न्तराष्ट्रीय कार्य माना जाता है। यही कारण है कि हालैंड के शाकाहारी ससार के सभी शाकाहारियो से समन्वय और सम्वन्ध वनाए रखने का प्रयत्न करते हैं।

वर्तमान उच्च अधिकारियो की भी यही धारणा है कि दुग्ध-शाकाहार के रूप मे कच्चे फलो का आहार पर्याप्त पथ्य होता है।

कुछ वर्ष पूर्व केन्द्रीय सस्थान की स्थापना से यहा के शाकाहारी प्रसन्न हैं। जहा कि शाकाहार सम्वन्धी विपयो का अध्ययन किया जाता है और अनुभवो का आदान-प्रदान व समन्वय किया जाता है और दूसरे देशो के साथ मिलकर इस क्षेत्र मे अधिक कार्य करने और मूलभूत समस्याओ पर विचार

और उनका हल निकालने की उत्सुकता को क्रियान्वित रूप देने का यत्न किया जाता है। हालैण्ड के शाकाहारी मानते है कि इस तरह शाकाहारी सिद्धान्त को वैज्ञानिक आधार दिया जा सकता है।

नार्वे :

नार्वे की शाकाहारी गतिविधियो के विषय मे 'अमेरिकन मेडीकल जर्नल' के लन्दन स्थित सवाददाता ने इस प्रकार लिखा है—कुछ वर्ष पूर्व बच्चो को भोजन देने का नया तरीका प्रस्तुत किया गया। प्रयोग के रूप मे ओसलो के स्कूल मे सामान्य प्रकार का गर्म भोजन देने से अलग घरेलू भोजन मे अभाव रहनेवाले तत्वो को पूरा करनेवाला चुनिन्दा खाद्य-पदार्थों से बना नाश्ता बच्चों को दिया गया। पशु-प्रोटीन के अभाव की पूर्ति बकरी के दूध, मक्खन से की गई, जिसके खनिज पदार्थ और प्रोटीन प्राप्त हुए। विटामिन 'बी', नमक की पूर्ति के लिए पूर्ण रूप से गेहू की रोटी दी गई। रक्त रोग जो कि उतरी देशो मे मामान्य रूप से होता है, से बचाव स्वरूप आधा सेब और सन्तरा दिया गया। विटामिन 'ए' और 'डी' के लिए मक्खन, और गाजर-चुकन्दर भी दिए गए।"

यह प्रयोग नितान्त सफल रहा। यह 'ओस्लोनास्ता' इगलेण्ड मे भी दिया गया जो पूर्णरूपेण सन्तोपजनक पाया गया—'छोटा बच्चा दिशा दिखाएगा' की कहावत के अनुसार आशा की जाती है कि इस प्रकार के प्रयोग और अभ्यास घरो मे भी नियमित होगे और बच्चे और बूढे दोनो ही स्वस्थ रहेगे।

अर्जेण्टाइना :

ब्यूनस आयर्स अर्जेण्टाइना मे शाकाहारी सिद्धान्त का सचालन शाकाहारी सगठनो के सम्मिलित सघ द्वारा सम्पन्न होता है। ब्यूनस आयर्स के प्राकृतिक सस्थान के लगभग एक हजार सदस्य हैं। ये सभी सदस्य क्रियाशील है। इसका अपना सभागृह है। प्राकृतिक विधि-विधान के लिए भी स्थान है। पाठ्यक्रम द्वारा शाकाहारी पथ्य के निदेशक प्रशिक्षित किए जाते हैं। शाकाहार सम्बन्धी पुस्तको का अच्छा पुस्तकालय है। ब्यूनस आयर्स के पास मेरलो नगर के निकट खेलकूद का क्लब है। इनका शाकाहारी भोजन, स्नानागार से युक्त एक हेल्थ-हाउस भी बन रहा है। इस सस्थान का सहकारी आधार पर कृषि-फार्म भी है जो अदूषित धान प्राप्त करता है।

'युनियन नेचरलिस्टा अरजेंटाइना' (यू० एन० ए०) सस्थान शाकाहार सम्बन्धी पत्रिका का प्रकाशन भी करता है। उक्त निर्माण कार्य मे इस सस्थान को अनेक चिकित्सको, विचारको का सहयोग प्राप्त है। सुप्रसिद्ध चिकित्सक डा० अर्तुरो केपडिविला सक्रिय रूप से सलग्न हैं।

इजराइल :

इजराइल मे शनै शनै किन्तु दृढतापूर्वक शाकाहारी पद्धति का जीवन अपनी जडे जमा रहा है। इजराइली स्वस्थ रहना चाहते हैं और लगभग प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ रहने हेतु साहित्य का अध्ययन करता है। वहा के प्राकृतिक चिकित्सक ट्यूमर, पथरी आदि कई जटिल रोगो के निदान मे पर्याप्त सफलता पा चुके हैं। और ये शाकाहार के श्रेष्ठ प्रचारक हैं।

सौभाग्य से यहा की जलवायु फल और शाक-सब्जी प्रचुर मात्रा मे उत्पन्न करने के लिए बहुत अनुकूल है और इसीलिए इन्हे लोग अधिक पसन्द करते हैं, उपयोग मे लाते हैं। मास का आयात किया जाता है परन्तु उसके प्रति लोगो की रुझान नही है, क्योकि उसके निर्माण मे हत्या का आधार लिया जाता है। इजराइलियो को इस बात का फख्र है कि दो हजार वर्ष पूर्व उनके पुरखे विशुद्ध शाकाहारी थे।

इजराइलियो का बर्मा व भारत के प्रति सद्भावना पूर्ण मेलजोल है। भारतीय अहिंसक सस्कृति के प्रति उनमे काफी सम्मान की भावना है। इस पारस्परिकता का इजरायिलियो पर काफी प्रभाव पडा है।

पृष्ठ ११ का शेष —

"हमारी जिज्ञासा के इस विस्तार द्वारा सम्भवत हम अन्वेषित करेंगे कि यह कैसे है कि अन्याय नगरो मे अपनी जडें जमाता है—यदि आप भी एक ऐसे शहर का मनन करे जो दाह से पीडित हो रहा है" जिसके व्यक्ति सादगी से अलग हो चुके हैं "जीवन की रीति जैसी कि हमने निरूपित करली हैं, ऐसा लगता है, वे सन्तुष्ट नही होगे, मगर पलग, मेज, साज-सज्जा का हर दिखाऊ सामान मास-भोज्य पदार्थ अधिक होने चाहिए हमे शूकर-समूहो की "ऐसे शहर के लिए" आवश्यकता रहेगी—और बडी मात्रा मे सभी प्रकार के पशुओ की भी—व उनके लिए जो उन्हे खाने की इच्छा रख सकते हो—तब पतन और ध्वस ·····" ★
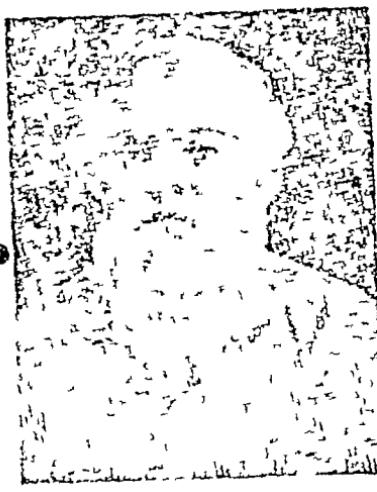
(सुकरात और ग्लोकोन के बीच एक महत्वपूर्ण सवाद)

सुकरात की दृष्टि मे

शाकाहार

—प्लेटो

(गम्भीर दार्शनिक, विशिष्ट प्रतिभा, अपने महान्-शिक्षक सुकरात का व्याख्याता, अपनी दूसरी पुस्तक 'रिपब्लिक' मे सामान्य समुदाय द्वारा अपनाए गए सर्वोत्तम पथ्य के अपने विचार विकसित करता है ४२८-३४७ वी-सी)
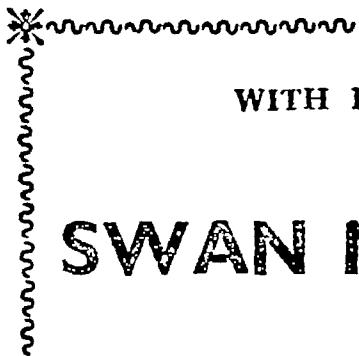
महान् दार्शनिक 'सुकरात'

'मेरा अनुमान है, कभी-मनुष्य गेहूँ और जौ पर जीवित रहेगे—भोजन की रोटिया पकाते हुए और आटे के लोदो को गू थते हुए और इन शानदार रोटियो को घास की चटाइयो या साफ पत्तियो पर फैलाते हुए और अपने को हरे पेड के खुरदरे ''विछौने अथवा महदी शाखाओ पर विश्रामते हुए वे स्वय को और अपने वच्चो को आनदित करेंगे, अपना पेय पीते हुए, मालाए गू थते हुए और देवताओ की प्रशसाए गाते हुए, एक-दूसरे के साथ का आनद लेते हुए और अपने साधनो से परे वच्चे पैदा न करते हुए, गरीवी के भय और युद्ध से नीतिज्ञ वनाते हुए हम उनके सामने मिठाई का आहार भी रखेंगे, मैं अजीर-सेम-मटर-दानो की कल्पना करता हू, वे महदी के वेर भून सकते हैं और जगली पेड के फलो के साथ पेय पीते हुए और दृढ़ स्वास्थ्य मे दिन विताते हुए वे सम्पूर्ण सम्भावनाओ मे अग्रगामी उम्र जिएगे और मरते हुए, अपने वच्चो को एक ऐसा जीवन वसीयत करेंगे जिसमे उनकी अपनी इच्छा पुन रूपित होगी।"

सुकरात आगे निर्देशित करते है कि नया आदर्श गणराज्य भी किस तरह अन्याय और हिंसा मे डूबा औ' पतन मे गिरेगा—''जैसे ही आवश्यकताओ की सीमाओ का उल्लघन किया जाता है, मांस को पथ्य वनाता है और धन-सग्रह सर्वोच्च प्रयत्न का लक्ष्य होता है।"

[शेष पृ० ३१० पर देखिए—]
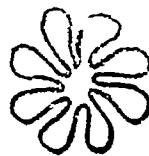
शाकाहार प्रचार के रचनात्मक पहलू

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'
[जैन साहित्य के प्रसिद्ध लेखक व सपादक]

※

कुछ दिनो पूर्व देहली मे एक मित्र के साथ वातचीत चल रही थी, तभी उनके एक दूसरे मित्र आगये और वोले "चलो ! अमुक होटल मे टमाटर का जूस पीकर आयें !"

जो सज्जन मेरे पास वैठे थे, जरा हसे और फिर हाथ जोडकर वोले—"वस, आप ही पधारिए ! कल से हमने तो शपथ खाली है !"

"क्यो ? किसी मुनि-महाराज का उपदेश असर कर गया ? या जेव वात क्या है ?"

"वस भाई साहव ! जव से जूस वनाने की भट्टी देखी है, तव से कलेजा काप गया। कान पकड़ लिया वडे होटलो का चम्मच भी छूना पाप है।" फिर अपनी वात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने वताया—"कल ही एक मित्र के साथ उधर चला गया था, टमाटर जूस मगाया, पिया, वड़ा स्वादिष्ट लगा, कुछ देर वैठकर चलने को हुए तो होटल के मेनेजर, जो मेरे मित्र भी थे,उन्होने वैठा लिया, फिर उनके साथ घूमते हुए कुछ ऐसी जगह पर चले गए जहा जूस वन रहा था, सामने हड्डियो का ढेर लगा था और एक वडे तपेले मे हड्डियां उवल रही थी। हमने पूछा—यह क्या वन रहा है ?"

मैनेजर ने जरा झेंपते हुए कहा—"कुछ नही ! चलो इधर !" हमने खोज की, तो पता चला कि वही हड्डियो का उवला रस टमाटर जूस के नाम पर दिया जाता है और अपने को शाकाहारी माननेवाले धनी लोग वहा आकर वडी शान के साथ 'टोमाटो जूस' पीते हैं।

हाई स्टेन्डर्ड कहे जाने वाले होटलो रेस्तराओ मे शाकाहारी भोजन वैसे ही कम उपलव्ध होता है, और जो शाकाहारी पेय व भोजन के नाम पर मिलता है वह भी शाकाहारी होता है या नही ? भगवान ही जाने ! पर शाकाहारी लोग वहा जाकर वेवकूफ अवश्य वन जाते हैं।

शाकाहार प्रचार की बात देश-विदेश मे काफी जोरो से चल रही है, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सगठन भी वने हुए हैं, प्रचार भी काफी किया जाता है और लाखो करोडो रुपये खर्च भी होते हैं—फिर भी शाकाहार के स्थान पर

मांसाहार वढता जा रहा है—शुद्ध शाकाहारी व्यक्ति कुछ जान वूझ कर और वहुत कुछ अनजाने मासाहार का स्वाद लेते रहते है—फिर शाकाहार का प्रचार कैसे होगा ?

मासाहार की वढती हुई प्रवृत्ति को रोकने के लिए हमे अत्यन्त व्यावहारिक दृष्टि से सोचना चाहिए मासाहारियो के सामने उसका दूसरा विकल्प भी तो रखना चाहिए। वडे-वडे शहरो मे जहा शुद्ध शाकाहार के लिए होटल, ढावा या वासा टटोलना पड़ता है और किसी गली-कूचे मे २-३-४ मजिल की पहाड़ी चढकर जव उस ढावे मे पहुँचते हैं और वहा की प्रत्यक्ष गन्दगी आँखो के सामने आती है तो भोजन खाने से पूर्व ही मिच-मिची आने लगती है। शाकाहारी भोजनालयो मे जो शुद्धता, स्वच्छता और आधुनिक सुविधाए होनी चाहिए वह भाग्य मे ही किसी एकाध भोजनालय मे मिलेगी और वहा जाकर भी आदमी घन्टो क्यू मे वैठा रहेगा तभी शुद्ध शाकाहारी रोटी-दाल चावल की थाली प्राप्त हो सकेगी।

शहरो मे शुद्ध शाकाहारी भोजनालयो की यह स्थिति शाकाहार को प्रोत्साहन देने के लिए पर्याप्त नही है। आज शाकाहार प्रचार के रचनात्मक पहलू पर भी हमे सोचना चाहिए। 'जैन जगत' के इसी अक मे श्रीशादीलालजी जैन व भाऊ साहव (श्री रिपभदासजी राका) ने अपने लेखो मे जिन रचनात्मक उपायो की सूचना की है वे आवश्यक ही नहीं, अत्यन्त आवश्यक है। देश मे जव तक शुद्ध शाकाहारी भोजनालयो की अच्छी व्यवस्था नही होती, शाकाहार को उत्तेजन कैसे मिलेगा ? आज सव से वडी आवश्यकता है कि शाकाहार प्रचार के राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सगठन सगठित होकर इस पहलू पर सोचें, और देश-विदेश मे स्थान-स्थान पर शुद्ध शाकाहारी भोजनालय खोले जाय, व्यक्तिगत रूप मे भी और कोपरेटिव सोसायटी वनाकर भी। व्यापारिक लाभ की दृष्टि से भी यह उद्योग अच्छा चल सकता है और शाकाहार को अधिक उत्तेजन भी मिलेगा। इस दिशा मे वडे-वडे औद्योगिक प्रतिष्ठानो को, धनी लोगो को मिलकर पूंजी का विनियोजन करना चाहिए। वैसे शुद्ध स्वच्छ शाकाहारी भोजनालय यदि आधुनिक सुविधाओं मे सम्पन्न रहे तो हो सकता है, और निश्चित ही होगा कि मासाहार की वढती हुई प्रवृत्ति स्वत कम हो, स्वाद व स्वास्थ्य की दृष्टि से लोग शाकाहार को प्राथमिकता दें और इस ओर अपने आप खिचे आए।

—[दास विल्डिग न० ५, विलोचपुरा, आगरा।]

विज्ञापन-सूची

आर्ट पेपर

कवर पेज

●●